मनोरंजन पुस्तकमाला-२२

संपादक

श्यामसुंदरदास, बी० ए०

प्रकाशक

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

महर्षि सुकरात ।

" निंदतु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवंतु
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव मरणमस्तु युगांतरे वा
न्याय्यात्पथ प्रविचलति पद न धीरा ॥ "

लेखक

बेणी प्रसाद ।

१९१७

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस में मुद्रित ।

मूल्य १)

भूमिका।

सत्य का बल बड़ा प्रबल है। इसका स्वाद जिसने चखा है वह इसके सामने ससार की परवाह नहीं करता। निंदा स्तुति, मान अपमान, हानि लाभ, यहाँ तक कि मृत्यु को भी वह तुच्छ समझता है। लोकनिंदा उसे डरा नहीं सकती, दरिद्रता उसे उदास नहीं कर सकती, राजपुरुषों की लाल आँखें उसे धमका नहीं सकतीं, अपमान, मृत्यु कोई भी उसे अपने सिद्धात से एक इच डिगा नहीं सकता। वह एक अचल चट्टान है, जिस पर सब सासारिक कामनाएँ टकरा टकरा कर छिन्न भिन्न हो जाती हैं। लोहे की लाखों मुद्गरों से उस चट्टान को तोडने की चेष्टा करनेवाले उसके वज्रभेदी शब्द को सुन कर चौंक पड़ते हैं और पत्थर पर लोहे की चोट से जो चिनगारियाँ निकलती हैं, उन अग्निकणों को देख कर भयभीत हो अपने सारे अधविश्वासों के भस्म होने की सूचना पाने लगते हैं, तथा यत्र तत्र उस अद्भुत चट्टान की चर्चा कर विस्मित और भयभीत होते हैं, तथा कई बुद्धिमान जन उसकी दृढता और फौलादीपन की तारीफ भी करते हैं। चट्टान तो जड़ होती है, पर ऐसे सत्यप्रेमी महात्मा चैतन्य चट्टान हैं जिनकी दृढता से प्राणहीन, उत्साहहीन जनसमुदाय के निर्बल अगों में भी दृढता आ जाती है। "तुख्म तासीर, सोहबत असर"।

इनके सत्सग से निर्बल उत्साहहीन युवकों का ठढा रक्त भी गर्म हो जाता है और उत्साह की तरगे उनके हृदय में लहरें मारने लगती हैं, तथा वे इस उत्साहरूपी तरग को और भी फैला कर सब भाइयों को इसमें स्नान कराने के लिये कमर कस कर बाहर निकल पडते हैं । निर्बल, निरुत्साही, आलसी और निरुद्यमी तथा स्वार्थ से पूर्ण लोगों को धोखा दे कर हलुवा पूरी उडानेवाले जन, इस नवीन समुदाय की चेष्टा को पहले तो सदेह की दृष्टि से देखते, फिर उसे अपने स्वार्थ में विघ्नकारी समझ, क्रोध और द्वेष की ज्वाला से अपने सकीर्ण हृदयों को दग्ध करने लगते हैं जिससे पहले तो नाना प्रकार की अयथा निंदा, फिर प्रकट रूप से दुर्वचन कह कर ये लोग उस महापुरुष की बुराई करने लगते हैं। पर तुलसीदास के कथन " विधि वस सत कुसगति परहीं, फनि मनि इव निज गुन अनुसरहीं " के अनुसार चारों ओर की कुसगति के बीच पड़ कर भी ये महात्मा उज्ज्वल मणि की तरह अपने ज्ञानालोक के प्रकाश पर आवरण नहीं आने देते और ज्ञान की ज्योति जिन उलूकों (जो केवल आँख बद किए दिवाभाग में भी ससाररूपी वृक्ष को जकड़े उलटे लटके रहते हैं) को नहीं भाती, वे लाख फटफटाते हैं, हाथ पैर मारते हैं, पर जिसने बरजोरी ज्ञानप्रचार का बीड़ा उठाया है, वह कब इन बातों से सहमता है? तुलसीदास जी ने कहा है कि—

जिमि सिसुतन व्रन होय गुसाई।
मात चिराव कठिन की नाई।

यद्यपि प्रथम दुख पावे, रोवे बाल अधीर ।
व्याधि नास हित जननी, गनै न सो सिसु पीर ॥

इसी प्रकार वे महापुरुष इन बाल अज्ञानियों की करतूत पर जरा भी अपने कर्त्तव्य से नहीं डिगते । बरजोरी ज्ञानाजन की शलाका, उन मूर्खों की दूषित, पीड़ित आँखों में डाल ही देते हैं, रोगी के हाथ पैर मारने, चीं चपड करने और रोने चिल्लाने पर तनिक ध्यान नहीं देते । माता से बढ कर पुत्र का हितेच्छु और कोई नहीं है । सो वह भी अपने बालक के फोडे को बेदर्दी से चिरवाती है, उसके रोने चिल्लाने पर ध्यान नहीं देती, क्योंकि उसकी यह बेदर्दी बालक की पीडा दूर करने के लिये है, उसके भावी सुख के लिये है, उसी प्रकार से महाजन अज्ञानियों के रोने चिल्लाने पर अपने कर्त्तव्य से हटते नहीं, उनके पीडित, मिथ्या-विश्वासरूपी फोडे पर अस्त्र चलाते ही रहते हैं, जिसमें दूषित मल निकल जाय और वे आगे के लिये सुखी हों, पर जैसे रोगी या बालक फोडा चीरनेवाले को यमराज समझता है, वैसे ही उक्त अज्ञानी जन उन महात्माओं को अपना वैरी, महाशत्रु मान बैठते हैं और हर तरह से बाधा पहुँचा कर उन्हें इस बरजोरी के इलाज से रोकना चाहते हैं, पर महात्मा अपनी प्रतिज्ञा से कब डिगनेवाले हैं ? जितनी बाधा उपस्थित होती है उतनी ही दृढता उनमें उस बाधा को अतिक्रम करने की होती है । अत को यह असमान युद्ध जब असह्य हो जाता है, तब अज्ञानी जन उक्त महात्मा का प्राण सहार कर, कटक दूर किया चाहते हैं । इसका परिणाम उलटा होता है । वे

अपने पैर में आप कुल्हाड़ी मारते हैं। एक निस्वार्थी परोपकारी से जो सदा जी जान से उनके भले की चेष्टा किया करता था वे हाथ धो बैठते हैं। पर सत्य का और अच्छे काम का बीज कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होता। वह धीरे धीरे बढ कर उस महान् उद्देश्य को सिद्ध कर ही देता है, जिसके लिये उस माहापुरुष ने चेष्टा की थी। आज ऐसे ही एक महापुरुष के जीवन की चर्चा होनेवाली है जो ढाई हजार वर्ष पहले यूनान देश में वर्तमान था। वह सत्य का सच्चा उपासक था। सत्य की खोज में उसने अपनी सारी जिंदगी बिता दी थी। जैसे कोई उद्भ्रात-प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिये भटकता फिरता है और यत्र तत्र सब से उसका पता पूछा करता है, वैसे ही यह महात्मा अपनी एकमात्र प्रेमिका 'सत्य' के अनुसधान में सुबह से शाम और शाम से सुबह तक घूमता फिरता और सबसे सत्यमयी देवी का पता पूछा करता था, पर शोक कि कहीं भी उसकी इच्छा पूरी नहीं होती थी। उसकी आराध्या देवी का पता बतलाना तो दूर रहा, उस देवी की शकल सूरत, रग रूप तक का किसी को ज्ञान न था। पर उसके हृदय पर तो अपनी प्रेमिका की मूर्त्ति खूब अकित हुई थी और इस मूर्त्ति से जब वह इन लोगों की बतलाई हुई शकल का मुकाबिला करता तो बिलकुल निराश हो जाता था। किसी को भी यह ठीक मालूम नहीं था, पर मजा यह कि सब ही कहते थे कि मैं खूब जानता हूँ कि "सत्य क्या है"। जब इन लोगों की बात चीत से उसे पता लग जाता था कि "इन्हें कुछ मालूम नहीं है" तो बड़ी नम्रभापा

में वह उनसे कहता कि "प्रियवर, आपने मेरी अभिलाषा पूरी नहीं की। 'सत्य क्या है' यह मुझे नहीं बतलाया। शायद आप नहीं जानते हैं। फिर प्रियवर, आप ऐसा क्यों समझे बैठे हैं कि आप जानते हैं ? यह आप को अज्ञानी बनाए रखेगा"। यह कह कर वह आगे चलता और दूसरे से सत्य का पता पूछता। वहा भी यही बात होती। उस महाशय को भी उसकी मूर्खता बतला कर उसे आगे जाना पडता था। इसी काम में उसे रात दिन बीतता था। न खाने की चिंता, न जीविका के लिये कुछ उद्यम ! केवल एक मोटा काथा लादे हुए अपने एक मात्र लक्ष्य 'सत्य' के अनुसधान मे लगा रहता। एक सच्चे प्रेमी की तरह उसकी दशा भी तथैवच हुई। वह दरिद्री हो गया और लोग उसे बुद्धिभ्रष्ट नास्तिक कहने लगे, नास्तिक इस लिये कि वह लोगों के प्रचलित धर्म्मविश्वास पर भी तर्क वितर्क कर "सत्य" निचोड निकालने की चेष्टा करता था। यह सब ब्योरा उसने अपने आत्मदोष मोचन में साफ तौर से कहा है। क्योंकर इस काम में सारा शहर उसका शत्रु हो गया, कैसे भडुवे कवियों ने उसकी नकल उतार कर उसकी चिन्धी उडाई, क्योंकर उसपर नास्तिकपन का आरोप करक उसे विषपान करा कर मार डाला गया—यह सब इस पुस्तक मे आवे ही गा, पर सब से बढ कर अलौकिक उसका 'सत्यप्रेम' और अत समय की उसकी अपने शिष्यों से बात चीत है। कैसी निर्द्वंद्वता से उसने विषपान कर अपने सिद्धात का वास्तविक रूप प्रगट किया है, यह पढ कर मन एक दूसरी ही अलौकिक दुनिया में विचरण करने लगता है। आत्मा

को अमर तो हम भी मानते है, आप भी मानते हैं और करोड़ों हिंदू मानते हैं, पर उसका सच्चा दृष्टात, जीता जागता, नमूना तो सुकरात ही में देखा ! कैसा धर्म्म प्रेम है ! कैसा आत्मा के अमरत्व में अटल विश्वास है ! ! चुपचाप हलाहल विष पान कर जाना और माथे पर बल न पडे ! ! ! अत समय तक अपने मित्रों से उसी आत्मा की अमरता पर बहस करते हुए, शातिपूर्व्वक सो जाना और प्राण त्याग देना, 'सुमन माल जिमि कठ ते गिरत न जानै नाग', मृत्यु क्या हुई मानो हाथी के गले से फूल की माला टूट कर गिर पडी। इसका नाम हम यदि मृत्युजय सुकरात रखें तो कोई अत्युक्ति नहीं। इन्होंने तो गीता के इन श्लोको को प्रत्यक्ष कर दिखलाया—

" वासासि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि सयाति नवानि देही ॥
नैन छिदति शस्त्राणि नैन दहति पावक ।
न चैन क्लेदयन्तापो न शोषयति मारुत ॥
अच्छेद्योऽय, अदाह्योऽय अक्लेद्योऽ शोष्य एव च।
नित्य सर्वगत स्थाणुरचलोऽय सनातन ॥ "

"जैसे पुराने कपड़े को उतार कर मनुष्य नवीन वस्त्र धारण करता है वैसे ही एक शरीर को छोड़ कर मनुष्य दूसरा शरीर धारण करता है। असली मनुष्य जो है (आत्मा) उसे न पानी भिगा सके, न अग्नि जला सके, न वायु सुखा सके। वह दशा

एक रस रहता, सब में व्यापक, अचल है, सनातन है।" पर शोक कि इन श्लोकों को अपना धार्मिक लक्ष्य माननेवाले हम हिंदू मौत से कैसे थरथर कापते हैं और समझते हैं कि इससे बढ कर कोई बुराई नहीं। कैसी ना समझी है। सुकरात ने कहा है कि मौत क्या है, इस पर्दे की ओट में क्या है यह तो कोई भी जानता नहीं, पर सब लोग इससे ऐसा डरते हैं कि "मानों खूब निश्चय जानते हैं कि इससे बढ कर दूसरी कोई बुराई नहीं।" मौत दो चीज हो सकती है। एक तो या अनत घोर निद्रा जिसमें फिर से जागने का नाम नहीं, या एकदम मोक्ष, या असली चीज मरती नहीं केवल आवरण मात्र बदलती है। फिर इतना रोना पीटना क्यों ? इसका इतना भय क्यों। सच पूछिए तो इसीसे डर कर लोग स्वार्थत्याग नहीं कर सकते और किसी महान उद्देश्य को पूर्ण करने की चेष्टा न कर " खाओ, पीओ, मौज करो " इसी में लगे रहते हैं। इस झूठे भय ने हमें कायर, निस्तेज और अधर्म्मी बना दिया है। यदि इस जीवनी को पढ कर हमारा मृत्युभय कुछ भी कम हुआ या कुछ भी हमें सत्य से प्रीति हुई तो लेखक का परिश्रम सुफल होगा। इत्यलम् ।

विनीत

ग्रंथकार।

अध्याय सूची ।





महर्षि सुकरात ।

पहला अध्याय ।

सुकरात के समय में यूनान की अवस्था ।

महर्षि सुकरात की जीवनी वर्णन करने के पहले उनके देश की तत्कालीन अवस्था का कुछ दिग्दर्शन करा देना उपयुक्त होगा। सुकरात ने जिस समय जन्म ग्रहण किया था उन दिनों यूनान में प्रजातन्त्र राज्य का चढ़ता जमाना था। थोड़े ही दिन हुए थे कि यह अत्याचारी शासकों के पंजे से छूट चुका था और स्वभावतः इन दिनों लोगों की स्फूर्ति सब बातों की ओर हो रही थी। आधुनिक भारतवर्ष की तरह वहाँ भी उन दिनों नाना प्रकार के देव देवी माने जाते थे और पंडे पुजेरियों का जमाना था। मृत्यु के पश्चात् प्राणी कहाँ जाता है ? सृष्टि किस प्रकार से हुई और कैसे नाश होगी ? आत्मा और परमात्मा क्या हैं ?—इन गूढ़ तत्त्वों के प्रश्नों का समाधान सब लोग लोकमत के आधार पर, सर्वसाधारण की रुचि देख कर करते थे। लोगों की रुचि स्वाभाविक ही क्षणिक वर्तमान इन्द्रिय-सुख की ओर होती है और वे ही पण्डित या पंडे पुजेरी अपना काम साध लेते हैं जो सर्व-

साधारण की इस रुचि के अनुसार गूढ़ पारमार्थिक तत्त्वों की व्याख्या करते हैं, अर्थात् कामी और विलासप्रिय लोगों को यह उपदेश दे कर कि " अमुक देव देवियों पर विश्वास करने, उनकी आराधना करने अथवा अमुक अमुक प्रकार से दान पुण्य करने से ऐसे लोक की प्राप्ति होगी जहाँ सुंदर युवती अप्सराएँ सदा सेवा को तय्यार रहेंगी, शरीर सदा युवा और आधि व्याधि तथा नाश रहित रहेगा, बड़े बड़े सुंदर बाग पुष्पों से सुगंधित रहेंगे, शीतल मंद सुगंध पवन सदा चला करेगी " वे अपने बतलाए हुए दार्शनिक-तत्त्वों पर सहज ही विश्वास करा लेते हैं। यदि साधारण लोग शूर वीर और राज्य फैलाने के इच्छुक हुए तो उन्हें यह तत्त्वज्ञान बतलाया जाता है कि " अमुक अमुक कर्मों से ऐसे लोक प्राप्त होंगे जहाँ देवताओं के शरीर मिलेंगे और इंद्र का राज्य मिलेगा, जहाँ प्रबल दैत्यों को जीत कर अखंड राज्य और श्री की प्राप्ति होगी" इत्यादि। काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, और मात्सर्य मे से जिस ओर साधारण लोगों का अधिक झुकाव देखा, वैसा ही ज्ञान बतला दिया-यही चतुर, स्वार्थी पुजेरियों की सदा करतूत रही है। उस समय यूनान देश की धार्मिक अवस्था का भी यही हाल था। यहा के लोग शूर वीर और नए राज्यों के इच्छुक थे तथा उनमें कुछ कुछ विलासिता के अंकुर भी उग गए थे, सो इन दिनों इस देश के जनसाधारण का विश्वास यही था कि इस लोक मे शूरता दिखाने और स्वर्ग के नाना प्रकार के देव देवियों को पूजने से सब कामनाएँ सिद्ध होंगी।

मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह अपने आराध्य देवता को अपने ही जैसी शकल सूरतवाला और वैसी ही चित्तवृत्ति-वाला मानना चाहता है, पर हाँ उन बातों को उनमें अपने से बहुत बढा हुआ समझता है। इसी कारण इन दिनों यूनान देश के निवासी भी अपने उपास्य देवताओं को मानवी वृत्तिधारी अलौकिक जीव विशेष मानते थे। मानसिक विचार पर यद्यपि चारों ओर की प्रचलित विश्वासधारा का प्रभाव पडता ही है पर इन्हींमें से कोई विचार जब अपनी अंतिम सीमा तक पहुँच जाता है, तो फिर उस विचार के ध्वंस करने-वाली एक नई विचार-प्रणाली का उदय होता है। यही अवस्था यूनान में हुई थी। प्रचलित विश्वास-समूह से एक पृथक् नवीन विचार-प्रणाली निकली। इन नए विचारवालों ने अपने नए देवता माने, नए सिद्धात गढे और धीरे धीरे सर्वसाधारण की रुचि के अनुसार चल कर कुछ लोगों को अपना चेला मूडा और लोगों के सुधार का बीडा उठाने की धूम मचा दी। ये लोग निरे मूर्ख, दभी और स्वार्थी होते थे तथा अपने को यूनान के युवकों को शिक्षा देनेवाले ठेकेदार मानते थे। लोग इन्हे 'सोफियाइ' कहते थे। प्राचीन विचारवाले इनसे इसलिये बुरा मानते थे कि ये नाना प्रकार के नाटक चेटक रच कर युवकों को अपनी ओर खींचते और उन पर नई विचार-प्रणाली का प्रभाव डाल कर उनकी सरल बुद्धि को विलासिता और आलस्य के गहरे आवर्त मे फँसाने की चेष्टा में रहते और शिक्षक का आसन ग्रहण कर अपनी गुरुआई की दक्षिणा भी वसूल करते थे। धीरे धीरे सर्वसाधारण के शिक्षा-गुरुओं

के आसन पर ये लोग विराजमान होने लगे। यह पहले ही कहा जा चुका है कि यूनान में उन दिनों प्रजातंत्र राज्य था और इसी कारण आधुनिक अमेरिका की तरह यहा कला कौशल, धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक बातों की भी खूब उन्नति और चर्चा रहा करती थी। वास्तव में उन दिनों यूनान मे विद्या और राजनीति की धूम थी। इन्हीं दिनों यहाँ ऐसे ऐसे कवि, नाटककार और कला-कौशल के जाननेवाले उत्पन्न हुए थे, जिनके आदर्श को आज भी समस्त युरोप मानता है। यूनान मे पेरीकिल नाम का एक बडा राजनीति विशारद महापुरुष हुआ था। उसने सब तरह से राजधानी एथेस की उन्नति की थी और इस नगरी को एक विशाल महानगरी बना दिया था। यही एथेंस नगरी आस पास की सारी रियासतों की मुखिया हो गई थी। जैसे पाडवों का इद्रप्रस्थ, पृथ्वीराज की दिल्ली, बौद्ध-राजाओ का पाटलीपुत्र और अगरेजों का आज दिन लडन है वैसे ही सारी विद्या, कला-कौशल और सौंदर्य की रानी यूनान की एथेंस नगरी थी। इन दिनों युरोप भर मे यही एक ऐसी महानगरी थी, जिसकी राजसत्ता और राजानियम को सारे युरोपवासी आदर्श मानते थे। राज्य के शासन का भार एक साधारण सभा के अधिकार में था। प्रत्येक नागरिक इस सभा का सभासद हो सकता था, केवल शर्त्त यही थी कि वह किसी कारण से अयोग्य न ठहराया गया हो। हरएक सभासद को सभा में हाजिर रहना भी कानून के अनुसार आवश्यक था। यहा प्रतिनिधि चुनने की चाल न थी

और किसी मन्त्रिमडल का संगठन न था। राजसभा के सारे सभासद् राज्य का सब प्रबंध आप ही करते थे। किसी खास मनुष्य पर कोई बड़ी जवाबदेही नहीं रहती थी। इससे एक यह लाभ बड़ा भारी था कि प्रत्येक नगरनिवासी को राज काज से सबंध पडता और यों सब को सहज ही में राजकाज की शिक्षा भी मिल जाती तथा हर एक आदमी अपने को राज्य के भारी से भारी मामले का प्रबंधकर्ता और उत्तरदाता समझता था। सभा में बैठे हुए, पार्लमेंट के मेंबरों की तरह, उसे अपने राज्यप्रबंध, नियम, कानून, विदेशी राज्य से सबंध, मैत्री, शत्रुता, साम, दाम, दंड भेद आदि प्रश्नों पर विचार करना पडता, अपना विचार प्रगट करना तथा दूसरों की दलीलों तथा तर्क वितर्क में स्वयम् भाग लेना पडता था। कभी एक तरफवाले कोई बड़ी शानदार वक्तृता देते तो दूसरे पक्षवाले उसके बाल की खाल उडा कर उसकी मीमांसा की जड उखाड देते थे। दोनों ओर से खूब सरगरमी से बहस चलती थी। सदस्यों को स्वयं आप ही मौके मौके पर इन प्रश्नों की जाँच पडताल करनी पडती थी और दोनों पक्षों की बहस सुन कर मन में मीमांसा करनी पडती थी। न्यायालय का भी यही हाल था। वहाँ जो जूरी लोग बैठते थे वे चिट्ठी डाल कर चुने जाते थे और यों प्रत्येक नगरनिवासी के कभी न कभी न्यायाधीश बनने की बारी आ जाती थी। इस प्रकार से हर एक नागरिक न्यायालय की कार्रवाई में भी खूब निपुण हो जाता था। इस प्रकार से एथेंस-निवासियों को असली काम काज के स्कूल में शिक्षा मिलती थी। हाँ बचपन में बालकों को न्या-

याम और सगीतकला तो अवश्य सिखाई जाती थी, तथा गणित और ज्योतिष की शिक्षा भी दी जाती थी। दार्शनिक शिक्षा के पहले भी कई विद्वान् हो गए थे जिन में अनक्सागोरस, हिराकीटश और मरमेनीडास इत्यादि मुख्य थे। इसके सिवाय सोफियाइ की करतूतों का तो ऊपर वर्णन हो ही चुका है। यद्यपि यूनानियों का राजनैतिक बल इस समय बहुत बढा चढा था, पर तौ भी उन्हें कभी कभी प्रबल शत्रुओं का सामना करना ही पडता था और दो एक मौकों पर हार भी खानी पडी थी जिस कारण लोगों पर ताने मारने का मौका भी कवियों को मिल गया था और कई प्रकार के नाटक रच रच कर इसका खेल भी दिखाया जाता था जिसे सर्वसाधारण बडे चाव से देखते सुनते थे। इन नाटकों के रचयिता सोफियाइयों के तो पूरे कालस्वरूप थे क्योंकि सोफियाइयो का नया दल हर दम पुराने दार्शनिक और प्राचीन धर्म्म विश्वासों की खिल्ली उडाया करता था और लोग अपने अपने विचारों के अनुसार पुरानी बातों की कुछ परवाह न कर नए नए विचार प्रगट करने लग गए थे। यह बात उन पुराने ढग के कवियों को बहुत ही बुरी लगी और वे लोग व्यग्यपूर्ण काव्य और नाटक बना कर सोफियाइयों की मट्टी पलीत करने पर उतारू हुए। इन नए विश्वासियों में से कई लोग अपने को बड़े बड़े दार्शनिक भी प्रगट करते थे, जिनके नए नए विश्वासों के कारण सोफियाइयो की भाँति इनसे भी पुराने विचार के लोग घृणा करते थे। कारण यह था कि सुकरात के जन्म के पहले जिस दर्शन का यूनान में प्रचार था, वह भारतवर्ष

के वैशेषिक दर्शन से बहुत मिलता है। पाच तत्त्वों की बनी सृष्टि और उसकी उत्पत्ति और विनाश तथा इसका मार्ग, इन्हीं सब बातों का विशेष विचार था। कइयो का तो मत है कि उन्होंने ये सारी बातें भारत से सीखी थीं, पर यह भी तो संभव हो सकता है कि जिस अनुभव के बल से भारतवासी इन नतीजों पर पहुँचे उसी अनुभव के बल से यूनानी भी उन्हीं नतीजों पर पहुँचे हों। प्रकृति के नियम तो सब जगह एक ही मे हैं। पर चाहे जो हो सुकरात के समय में इन पुराने विचारों की यूनान मे कदर न रही और एथेंस ऐसी नगरी में जहाँ नित्य नवीन बुद्धि और उद्यम का विकास हो रहा था, यह कब सभव हो सकता था कि लोग पुरानी ही लकीर को पीटते चले जाते और नए विचार की ओर उनका ध्यान न जाता। नतीजा यह हुआ कि इस समय के यूनानवासी सृष्टि-तत्त्व और मानसतत्त्व को छोड़ कर समाज और राज-तत्त्व की मीमासा में अधिक दत्तचित्त होने लगे थे। वहाँ ठीक आधुनिक युरोप जैसी अवस्था का आरभ हो चला था। सृष्टि कैसे बनी और प्रलय कब और क्योंकर होगा? इन पचड़ो को छोड कर, न्याय अन्याय, उचित अनुचित, भला बुरा और हित,अनहित क्या है? इन्हीं बातो का विचार अधिक होने लगा था। पहले के दर्शनिकों को इसका ठीक उत्तर देना कठिन था। हाँ, इनका स्थान इन दिनों सोफियाइयो ने ग्रहण किया था जिनके स्वभाव और जिनकी प्रणाली का ऊपर कुछ कुछ दिग्दर्शन कराया जा चुका है। ये लोग दक्षिणा ले कर प्राचीन, नवीन मनमाने ठकुर सोहाती-मत का

प्रचार करनेवाले थे जिनसे सुकरात को अत्यत घृणा थी। सोफियाइ शिक्षकों की शिक्षा केवल मतलब की होती थी। जिसमे ऐथेसवासी काम चलाऊ वातों में निपुण हो जॉय यँही उनका लक्ष्य था। इस शिक्षा से उनका हित अनहित क्या होगा, ये बाते ठीक हैं या बेठीक इन बातों की उन्हे परवाह नहीं थी। सुकरात के एक शिष्य प्लेटो ने इन शिक्षकों का मुकाबला एक ऐसे आदमी से किया है जिसे किसी सैकड़ों मुँह और हाथ पैरवाले पशु से काम पडा हो और उसे हर दम इसी बात की खोज लगी हो कि उक्त पशु को कौन सी बात अच्छी लगती है और कौन सी बुरी, किस बात से वह भडकता है और किस से शात होता है और इन बातो की जॉच करके उसी के अनुसार वह उस पशु की रखवाली करता हो। यही हालत सोफियाइयों की थी। अजस्र मुख और हाथ पैरवाले जन साधारण किस बात से भडकते और किससे शात रहते हैं इसी का पता लगा कर ये लोग अपनी शिक्षा और उपदेश की प्रणाली स्थिर करते थे। अस्तु, इन दिनों एथेंस माहानगरी में तीन प्रकार के दार्शनिक और तत्त्वजिज्ञासू रहते थे।

(१) पुराने सीधे सादे नाना प्रकार के देवी देवता और एक मुख्य देवता ईश्वर को माननेवाले जिनकी तुलना हम आधुनिक प्रचलित हिंदू धर्म्मावलवियों से कर सकते हैं।

(२) पुराने विश्वासों की धिज्जी उड़ा कर युवको के चचल चित्त के अनुसार नए नए मत गढ़नेवाले और पुराने नए दोनों को मिला जुला कर लोगों की रुचि के अनुसार

काम चलाऊ मत की शिक्षा प्रचार करके दक्षिणा वसूल करने वाले। इन्हीं को सोफियाइ कहते थे।

(३) प्राकृतिक दार्शनिक, जो प्रकृति के प्रत्येक नियम की अपने नए विचार और नई युक्तियों द्वारा व्याख्या करते थे।

महर्षि सुकरात के समय के यूनान देश की अवस्था का थोड़ा सा दिग्दर्शन हो चुका। अब आगे के अध्याय में, उनके प्रारंभिक जीवन और उनकी शिक्षा का ब्योरा लिखा जायगा।

प्रचार करनेवाले थे जिनसे सुकरात को अत्यत घृणा थी। सोफियाइ शिक्षकों की शिक्षा केवळ मवलव की होती थी। जिसमे ऐथेंसवासी काम चलाऊ बातों में निपुण हो जाँय यँही उनका लक्ष्य था। इस शिक्षा से उनका हित अनहित क्या होगा, ये बातें ठीक हैं या बेठीक इन बातों की उन्हें परवाह नहीं थी। सुकरात के एक शिष्य प्लेटो ने इन शिक्षकों का मुकाबला एक ऐसे आदमी से किया है जिसे किसी सैकड़ों मुँह और हाथ पैरवाले पशु से काम पड़ा हो और उसे हर दम इसी बात की खोज लगी हो कि उक्त पशु को कौन सी बात अच्छी लगती है और कौन सी बुरी, किस बात से वह भडकता है और किस से शात होता है और इन बातो की जाँच करके उसी के अनुसार वह उस पशु की रखवाली करता हो। यही हालत सोफियाइयों की थी। अजस्र मुख और हाथ पैरवाले जन साधारण किस बात से भडकते और किससे शात रहते हैं इसी का पता लगा कर ये लोग अपनी शिक्षा और उपदेश की प्रणाली स्थिर करते थे। अस्तु, इन दिनो एथेंस माहानगरी में तीन प्रकार के दार्शनिक और तत्त्वजिज्ञासू रहते थे।

(१) पुराने सीधे सादे नाना प्रकार के देवी देवता और एक मुख्य देवता ईश्वर को माननेवाले जिनकी तुलना हम आधुनिक प्रचलित हिंदू धर्मावलबियों से कर सकते हैं।

(२) पुराने विश्वासों की चिन्धी उड़ा कर युवको के चचल चित्त के अनुसार नए नए मत गढ़नेवाले और पुराने नए दोनों को मिळा जुळा कर ळोगों की रुचि के अनुसार

है और जिस प्रणाली के अनुसार उस समय के यूनानी नागरिक शिक्षित होते थे, वैसी ही शिक्षा तो सुकरात को अवश्य ही मिली थी और शायद इन्हीं राजसभा और न्यायलयों मे बैठ कर उसने पहले पहले तर्क-विद्या भी सीखी होगी, जो कि भविष्य जीवन में उसका मुख्य लक्ष्य और एक मात्र कार्य्य था। प्राचीन पुस्तकों के पढने का भी उसे बहुत शौक था और इसलिये यूनान के प्रसिद्ध प्रसिद्ध माहाकाव्य और दार्शनिक ग्रंथ उसने सब देख डाले थे। उस समय के प्रचलित पदार्थ-विज्ञान, गणित और ज्योतिष-शास्त्र से भी उसने साधारण जानकारी प्राप्त कर ली थी और पुराने दार्शनिक एनक्सागोरस् के सिद्धातों से भी वह पूर्णतया परिचित था, जिसने आत्मा को अमर और जन्मातर ग्रहण करनेवाला माना है। पोटीडिया के युद्ध में अनेक यूनानवासियों की नाई सुकरात ने भी साधारण सिपाहियों की तरह अस्त्र धारण किया था। पोटीडिया एथेंस राजधानी की एक अधीनस्थ रियासत थी और वहांवालों के विद्रोह खडा करने पर एथेसवासी उसके दमनार्थ भेजे गए थे जिनमे हमारा चरित्रनायक भी चालीस वर्ष की उम्र् में हाथ में तलवार ले कर गया था और युद्धभूमि के सारे कष्टों को बड़ी धीरता से सहन कर उसने अपने अन्य साथियों को चकित और विस्मित कर दिया था। जब कि वहाँ अत्यधिक शीत पड़ता था और अन्य सिपाही सब अकड़े जाते थे सुकरात क्षुधा तृष्णा से पीड़ित होने पर भी शीत की कुछ परवाह न कर अपने स्थान पर डटा रहता था और इसी मौके पर अपने एक साथी

दूसरा अध्याय।

सुकरात का जीवन-वृत्तांत।

सांसारिक दृष्टि से देखा जाय तो सुकरात कोई बड़ा धनी या यशस्वी मनुष्य नहीं था। न तो उसका पिता पुश्तैनी जमींदार था और न उसका घराना विशेष प्रसिद्ध था, पर अलौकिक महापुरुष तो प्राय ऐसे ही साधारण तौर पर जन्म ग्रहण करते हैं। सासारिक वैभव के बीच तो इने गिने महात्माओं ने जन्म ग्रहण किया होगा। प्राय ग्रामों मे और दरिद्र या साधारण अवस्था के गृहस्थों के घर ऐसे महापुरुषों का आगमन होता है। सुकरात का जन्म खृष्टाब्द से लगभग ४६९ वर्ष पहले हुआ था। इनका बाप एक सगतराश था जिसे लोग सोफरोनिकस कहते थे और माता फिनारेटी साधरण दाई का काम किया करती थी। सुकरात ने अपनी युवावस्था में कोई ऐसी कृति नहीं दिखाई जो उल्लेख योग्य हो, केवल इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि उस समय यूनान देश सब विषयों में सिरताज हो रहा था और जो यूनान के बड़े बड़े नामी विद्वान् या कारीगर हो गए हैं सबों से सुकरात को बात चीत करने और सग सोहबत करने का मौका मिला था। अस्तु, चालीस वर्ष की उम्र तक जब कि अपने देश की ओर से वह पोटीडिया के युद्ध में गया था, उसकी जीवनी का कोई लिखा इतिहास नहीं मिलता, पर हाँ पहले अध्याय में जैसा बताया जा चुका

है और जिस प्रणाली के अनुसार उस समय के यूनानी नागरिक शिक्षित होते थे, वैसी ही शिक्षा तो सुकरात को अवश्य ही मिली थी और शायद इन्हीं राजसभा और न्यायलयों मे बैठ कर उसने पहले पहले तर्क-विद्या भी सीखी होगी, जो कि भविष्य जीवन मे उसका मुख्य लक्ष्य और एक मात्र कार्य्य था। प्राचीन पुस्तकों के पढ़ने का भी उसे बहुत शौक था और इसलिये यूनान के प्रसिद्ध प्रसिद्ध माहाकाव्य और दार्शनिक ग्रथ उसने सब देख डाले थे। उस समय के प्रचलित पदार्थ-विज्ञान, गणित और ज्योतिष-शास्त्र से भी उसने साधारण जानकारी प्राप्त कर ली थी और पुराने दार्शनिक एनक्सागोरस् के सिद्धातो से भी वह पूर्णतया परिचित था, जिसने आत्मा को अमर और जन्मातर ग्रहण करनेवाला माना है। पोटीडिया के युद्ध में अनेक यूनानवासियों की नाई सुकरात ने भी साधारण सिपाहियों की तरह अस्त्र धारण किया था। पोटीडिया एथेंस राजधानी की एक अधीनस्थ रियासत थी और यहावालो के विद्रोह खड़ा करने पर एथेंसवासी उसके दमनार्थ भेजे गए थे जिनमें हमारा चरित्रनायक भी चालीस वर्ष की उम्र में हाथ में तलवार ले कर गया था और युद्धभूमि के सारे कष्टों को बड़ी धीरता से सहन कर उसने अपने अन्य साथियों को चकित और विस्मित कर दिया था। जब कि वहाँ अत्यधिक शीत पड़ता था और अन्य सिपाही सब अकड़े जाते थे सुकरात क्षुधा तृष्णा से पीड़ित होने पर भी शीत की कुछ परवाह न कर अपने स्थान पर डटा रहता था और इसी मौके पर अपने एक साथी

आलसीबाइडी की उसने बड़ी वीरता से प्राणरक्षा कर एक छोटा सा युद्ध जीता और ऐसा स्वार्थत्याग दिखाया कि उस युद्ध-जय के यश का भागी उसने अपने उसी साथी को बनाया और अपने को केवल उसका एक साधारण सहायक प्रगट किया। ऋषित्व का यह पहला लक्षण है। अपनी ढोल अपने गले मे लटका कर पीटनेवालों को इस चरित्र से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। यदि कोई यथार्थ गुणी है तो समय पर प्रगट हो ही गा और यदि प्रगट न भी हुआ तो इससे क्या ? सच्चे गुणवान् तो अपने गुणों के कारण स्वयम् सतुष्ट रहते हैं, उन की आत्मा प्रमुदित रहती है, उन्हे विज्ञापन की जरूरत भी नहीं और उसकी परवाह भी नहीं। केवल दभियों को विज्ञापन बाजी पसद है। अस्तु सुकरात ने यहाँ अपने को पीछे रख कर अपने साथी को विजयमुकुट पहिनने दिया और हाँ उसी साथी को जो केवल उसीके भुजबल के कारण प्राण बचा सका था। यह तो एक युद्ध की बात हुई। दो वर्ष बाद पुन एक भयकर युद्ध छिड गया जो यूनान के इतिहास में पीलोपोनीसीयाइ युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध में एक अवसर पर एथेंसवासियों को बडी गहरी हार खानी पड़ी थी। इस समय भी सुकरात युद्ध में सम्मिलित था और जब हार खा कर सारी सेना खडबडा कर भागी तो सुकरात और उसका एक साथी लाशी ये ही दोनों ऐसे वीर थे जो घबड़ाए नहीं और बडी शान से तलवार ऊची किए हुए वापस आए। लाशी ने यहाँ तक कहा था कि "यदि सब सिपाही सुकरात की तरह अविचलित रहते तो हम लोग हार कर नहीं, शत्रुओं

को हरा कर घर वापस आते"। इसके सात आठ वर्ष बाद फिर भी एक बार सुकरात युद्ध-क्षेत्र मे गया था जिसमे दोनों ओर के सर्दार मारे गए थे, पर इस मौके पर कोई विशेष उल्लेख योग्य बात उसके विषय में कहीं लिखी नहीं मिली है। यद्यपि सुकरात कई बार युद्ध में सम्मिलित हुआ और उसने वीरता दिखाई पर उसका असली युद्ध-क्षेत्र तो एथेंस था जहाँ तलवार से नहीं वाणीरूपी अस्त्र से वह सर्वदा युद्ध करता रहता था। इसका कुछ आभास तो पहले ही दिया जा चुका है कि सुकरात को तर्क करने की जन्म से बान थी। बिना तर्क की कसौटी पर कसे किसी बात को मान लेना उसके स्वभाव के विरुद्ध था। वह सब के पास जा जा कर उनसे छेड़ छेड़ कर बाते करता और उनकी किसी ऐसी बात पर, जिसे वे सहज बोधगम्य समझे बैठे हैं, तर्क उठा कर प्रश्नोत्तर करना उसका नित्य का काम था। उसकी तर्कप्रणाली ऐसी शुद्ध और निष्पक्ष होती थी की सहज ही विपक्षी की अज्ञानता प्रगट हो जाती थी और वह अपनी बात आप ही बार बार काट रहा है यह भी उसे खूब प्रतीत हो जाता था। उसे यह भी विदित हो जाता था कि जिस बात को वह साधारण जान बैठा था और समझता था कि इसकी व्याख्या तो सरल है और उसे मैं खूब जानता हूँ उसी बात पर सुकरात ने जहाँ जिरह करना आरभ किया तो वह बगले झाँकने लगा और अत को उसे मानना पडा कि वस्तव मे "मैं कुछ भी नहीं जानता। अमुक सिद्धात के सबध में मेरी ठहराई व्याख्या में बहुत से दोष और अयुक्तियाँ है।" यह बात आगे के अध्याय

में यूथीफाइरन की वात चीत में आवेगी और वहीं सुकरात की तर्कप्रणाली का पता भी पाठकों को लग जायगा। इस लिये यहा विस्तार नहीं किया जाता। इस तर्क की वान ने सुकरात के विरुद्ध किस प्रकार से एक शत्रुदल एथेंस में खड़ा कर दिया, जिसने उसे अभियुक्त कर प्राणदड दिलवाया और किस प्रकार से सुकरात ने इन शत्रुओं की पोल खोली, क्योंकर कैदखाने से भाग कर प्राण वचाना उसने अस्वीकार किया और मृत्यु के दो घडी पहले तक कैसी शाति और धीरता के साथ आत्मा और शरीर के सवध तथा मृत्यु और जन्म के विषय में वह अपने शिष्य और मित्रवर्गों से वात चीत करता रहा, यह सब आगे के अध्याय में वर्णन किया हुआ मिलेगा और वही भाग उसकी असली जीवनी है। अव तक जो कुछ लिखा गया है उसे केवल उसके जीवन की भूमिका ही समझना चाहिए। उसके जीवन की विचित्रता—सारे जीवन मे नहीं—मृत्यु के समय ही में हैं, पर हाँ इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि ऐसे पुरुष अवसर पडने पर भी कभी अनुचित, आत्मा के विरुद्ध कार्रवाई नहीं करते जिसके दो एक दृष्टात आगे दे कर सुकरात की तर्कप्रणाली के नमूने का अध्याय लिखा जायगा।

पहले दिखाया जा चुका है कि किस प्रकार से दो मौंको पर युद्ध के समय सुकरात ने धीरता और वीरता दिखलाई थी। उसके पश्चात् सोलह वर्ष तक फिर कोई उल्लेख योग्य वात नहीं मिलती। इसके वाद एक घटना ऐसी हुई थी जिसमें सुकरात के प्राणों पर आ पड़ने पर भी वह अपने सिद्धात से

नहीं डिगा और जिसका हवाला उसने अपने अभियोग के समय अपनी सफाई देते हुए भी दिया था। वह घटना इस प्रकार है। खृष्टीय सन् से ४०६ वर्ष पहले एक युद्ध में एथेंस के जहाजी बेड़े ने किसी प्रबल शत्रु को परास्त किया। युद्ध के शांत होने पर यूनानी सेनापति अपनी ओर के मरे हुए सिपाहियों की लाशों का पता न लगा सके। राजधानी में जब यह खबर पहुँची तो सारे एथेंसवासी क्रोध से ओठ चबाने लगे, क्योंकि यूनानी धर्मशास्त्रानुसार मृतको का अंतिम विहित संस्कार धर्म्म का मुख्य और परम आवश्यक अंग माना जाता था। इसके सिवाय बहुत से घायल सिपाही डूब भी गए थे जिन्हें सरदार लोग बचा न सके। इस संवाद ने एथेंसवासियों का दु:ख तथा क्रोध और भी बढा दिया क्योंकि कितने ही घरों मे लोग अपने प्रिय रिश्तेदारों के शोक से छाती पीट रहे थे और सब यही कर रहे थे कि "हाय! हाय!! हमारे ही अमुक भाइयों को सरदारों ने गफलत से डूबने दिया।" सर्दार लोग फौरन राजधानी मे बुलाए गए और उनका विचार करने के लिये सभा बैठाई गई। अपने कर्तव्य में गफलत करने का अपराध उन लोगों पर लगाया गया। अपनी सफाई में सरदारों ने कहा—"हम लोगों ने अमुक अमुक अधीनस्थ अफसरों को इस कार्य्य के करने की आज्ञा दी थी (इन अधीनस्थ अफसरों में से ही उन पर अभियोग लगाने वाले एक महात्मा थे) पर एकाएक तूफान आ जाने के कारण मुर्दों को उठाने और घायलों के बचाने का प्रबंध न हो सका।" बहस स्थगित रख कर यह तय पाया कि पहले सभा को

निश्चय कर लेना चाहिए कि इन सरदारों का विचार किस रीति पर किया जाय। सभा ने यह प्रस्ताव पास किया कि असामी और फर्य्यादी दोनों ओर की बहस सुन कर मुक्ति या दण्ड देने के लिये आठों सरदारों के लिये एक संग ही वोट (सम्मति) ली जावे। सभा का यह निश्चय बिलकुल अनुचित और कानून के विरुद्ध था। नियमपूर्वक और उचित रीति से अपराध के निर्णय करने की प्रणाली को छोड कर सभा ने इस मौके पर लोगों की रुचि का अधिक ध्यान रखा था क्योंकि असली कानून यह था कि "प्रत्येक अपराधी के दंड या रिहाई की आज्ञा अलग अलग विचार हो कर दी जाय" पर सारे सदस्य इस समय आठों सरदारों पर बहुत नाराज थे इसलिये उन लोगों ने इस कानून पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और वे आठों सरदारों को एक साथ ही दंडित करने का उपाय सोचने लगे। संयोगवश सुकरात भी इस समय इस राजसभा का एक सदस्य था। इसके सिवाय उसने और कभी कोई राजकार्य्य में भाग नहीं लिया था। इस राजसभा में पाँच सौ सदस्य होते थे, जो चिट्ठी डाल कर चुने जाते थे। इस समय एथेंस की प्रजा दस जातियों में विभक्त थी। अस्तु, प्रत्येक जाति में से चिट्ठी डाल डाल कर पचास पचास आदमी चुन लिए जाते थे और ये लोग एक वर्ष तक इस अधिकार पर रहते थे। प्रत्येक जाति के सभासद पैंतीस पैंतीस दिनों तक सभा की कार्रवाई के पूरे उत्तरदाता रहते थे और इन पचासों में दस सभासद बारी बारी से सात सात दिवस के लिये सभापति का आसन ग्रहण करते थे।

जब कोई कानून या प्रस्ताव पेश होने को होता तो पहले सभापति जाँच लेता था कि यह नियमानुकूल है या नहीं। यदि नियम के विरुद्ध होता तो वह पेश नहीं किया जाता था। इनमें से एक सभापति प्रति दिन बड़ी और छोटी दोनों राजसभाओं का केवल एक ही दिन के लिये प्रधान होता था। इस प्रधान को 'अपिस्ता' कहते थे। उसका काम केवल प्रस्ताव को सभा के सामने वाद के लिये उपस्थित करना था। जिस दिन इन आठ सरदारों का मामला पेश हुआ उस दिन सयोगवश सुकरात ही सभापति या 'अपिस्ता' था। यह प्रस्ताव बिल्कुल नियमविरुद्ध था, पर लोग सब सरदारों पर बहुत क्रुद्ध थे, इसलिये किसी ने इसके विरुद्ध आवाज नहीं उठाई। कुछ सभापतियों ने नियम विरुद्ध होने के कारण इस प्रस्ताव के पेश होते समय कुछ चूँ चाँ की थी पर सभासदों की डाँट और धमकी से वे दुम दबा कर बैठ गए, किंतु सुकरात ने न माना। "पकड़ कर जेल में ठूँस दिए जाओगे, मार मार कर तुम्हारी हड्डी चूर चूर कर दी जायगी, गला घोंट कर मार डाले जाओगे" इन सब धमकियों और क्रोधोन्मत्त साधारण सभासदों के दाँत कटकटाने की उसने कुछ भी परवाह न की और प्रस्ताव को वोट के लिये पेश करने से साफ इनकार कर दिया। इसका जिक्र उसने अपने आत्म-दोष-मोचन में किया है, जो आगे आवेगा। पर सुकरात क्या कर सकता था? उसका अधिकार तो केवल उसी दिन भर के लिये था। इसलिये सर्वसम्मति से उस दिन सभा स्थगित कर दी गई और दूसरे दिन जब दूसरा कमजोर

प्रधान या 'अपिस्ता' हुआ तो लोगों की इच्छा पूर्ण हो गई और आठों सरदारों पर अपराध प्रमाणित कर उन्हें प्राणदंड दे दिया गया। यह तो एक घटना हुई। अब दूसरी सुनिए।

दो वर्ष बाद वे ही शत्रु, जिन्हें एथेंसवासियों ने जहाजी लड़ाई मे हराया था और जिनके कारण आठ सरदार फाँसी चढ़े थे, एथेंस पर चढ आए और उन्होंने नगर पर अधिकार कर एथेंस के प्रजातंत्र राज्य का नाश कर दिया और इसके बदले में क्रीटीयस ने (जो पहले सुकरात का साथी भी रह चुका था) स्पारटन जनरेल लाइसैंडर की सहायता से तीस मनुष्यों की राज्यतंत्री सभा कायम कर दी। ये तीसों मनुष्य केवल एक ही वर्ष भर राज्य कर पाए। पीछे से फिर पहले की तरह प्रजातंत्र राज्य स्थापित हो गया। पर इसी साल भर के शासन मे इन तीसों ने मारे अत्याचार और प्रजापीड़न के लोगों के नाकों दम कर दिया था। इन लोगों का जिनसे जिनसे अकस था चाहे वह राजनैतिक मामले के कारण हो, चाहे अपने किसी खास कारण से हो, वे सब एक न एक बहाने से मारे जाने लगे। कई रईसों का धन ही उनका काल हो गया। यह तीसों की मंडली क्या थी, मानों पिशाचमंडली थी। जब जिस को चाहा इसने मारने का आदेश दे दिया और जिससे चाहा जल्लादों का काम लिया, क्योंकि इस पैशाचिक कांड में जितने लिप्त हो सकें उतनों ही को लिप्त कर लेना इसका उद्देश्य था। इसी उद्देश्य से एक दिन उन्होंने अन्य चार नागरिकों के साथ सुकरात को भी बुला भेजा और लीयोन नामक स्थान से सलामी नामक किसी मनुष्य को एथेंस में हत्या करने के लिये

बुला लाने की आज्ञा दी। सुकरात के अन्य चारों साथियों ने तो जान जाने के डर से कुछ नहीं कहा और वे सलीम को लीयोन से ले आए, पर सुकरात ने यह आज्ञा मान्य न की और वह सीधा घर चला गया। अपने आत्म-दोष-मोचन के समय इस बात का हवाला देते हुए उसने कहा था कि "उस मौके पर कुछ बात चीत न कर, अपने काम से मैंने साफ प्रकट कर दिया था कि मैं मृत्यु को तृण बराबर भी नहीं डरता, पर हाँ अधर्म्म से आवश्य बहुत डरता हूँ।" इसके पहले भी वह क्रिटीस और उसकी मडली का बहुत ही विरागभाजन हो चुका था, क्योंकि उन लोगों ने जो पैशाचिक काड करना शुरू किया था उसकी खुले तौर पर सुकरात ने कडी आलोचना आरभ कर दी थी और इस कारण से इन अत्याचारियों ने सुकरात को बुला कर बहुत कुछ डाट डपट की थी और यह भी धमकी दी थी कि "युवकों से बातचीत करोगे, (जैसी कि सुकरात की आदत थी) तो फाँसी पर लटका दिए जाओगे"। पर सुकरात ने इन सब धमकियों की रत्ती भर भी परवाह न की, जिसका परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में इन पैशाचिक शासकों के शासन का अत हो गया और पहले की तरह प्रजातन्त्र राज्य स्थापित हो गया। इधर तो सुकरात यों अन्याय का विरोध कर तथा युद्धक्षेत्र मे वीरता दिखा कर अपना आत्मिक बल दिखा रहा था, उधर अरिस्टोफेन नाम का एक भडुवा कवि सब तरह से उसका अरिष्ट साधन करने में लगा हुआ था। भडुवा कवि पुराने विचार का मनुष्य था और नवीन विचार और तर्क-प्रणाली से कुढता

था। सोफियाइयों पर तथा प्राकृतिक दार्शनिकों पर इसे बड़ी घृणा थी और चूंकि सुकरात सभी विश्वास और विचार के मनुष्यों से प्रत्येक बात पर तर्क वितर्क और जिरह करता रहता था इसलिये अरिस्टोफेन ने उसे सोफियाई और नवीन दार्शनिक दोनों का पैरोकार समझा और एक नाटक रच कर सुकरात की खूब चिद्दी उडाई और उसे उल्लू बनाने की चेष्टा की। उस बिचारे को क्या मालूम कि सुकरात ने अपनी सारी जिंदगी इन्हीं सोफियाई और नवीन दार्शनिकों के विरुद्ध तर्क वितर्क करने और खडन मे बिताई है, उसे तो अपने नाटक के लिये एक पात्र चुनना था जो जरा विख्यात मनुष्य हो, चाहे वह सोफियाई हो या न हो। अत उसने इस काम के लिये बिचारे सुकरात ही को चुना, क्योंकि वह पुराने विचारों पर तर्क वितर्क किया ही करता था और इस कारण बहुत सी युवक मडली उसके सग लगी फिरती थी, तथा उसकी ऊँची नाक, तेज आँखें और ऊँचे सिर से सब लोग परचित थे और साधारण मोटा लबादा ओढे हुए एथेंस के बाजारों में घूमते और लोगों से तर्क वितर्क करते हुए नित्य सब ही लोग उसे देखते थे। इसलिये अरिस्टोफेन को अपने नाटक के लिये यही उपयुक्त पात्र जँचा, और अपने नाटक में उसने सुकरात के मुँह से सब तरह की बेसिर पैर की बेतुकी बातें कहलवाई, जिसे सुन सुन कर नाटक के दर्शकगण हँसते और सुकरात को एक घोर नास्तिक, कगला, हतभाग्य समझते थे। सुकरात के विरुद्ध यों ही एक दल खडा हो गया जो भ्रमपूर्वक उसे कुछ का कुछ समझने लगा और

उस पर जब अभियोग चला था तो उस पर दोषारोपण करनेवालों में इस दल के भी कई मनुष्य थे। सर्वसाधारण मनुष्य यही समझते हैं कि प्रचलित पुराने विश्वासों पर तर्क वितर्क करने वाले सब नास्तिक होते हैं और जब कि सुकरात पुराने विश्वासी–सोफियाइ और नवीन दार्शनिकों से भी तर्क वितर्क करता, उनके माने हुए सिद्धान्तों की जाच पड़ताल करता और सब को मूर्ख बना देता था, तो इस कारण तीनों दलवाले उससे बुरा मानने लग गए थे। ऐसे मनुष्य, सच्चे जिज्ञासू तो बहुत थोड़े होते हैं जो तर्क में लाजवाब होने पर अपनी मूर्खता साफ स्वीकार कर ले, बडे बड़े नामी विद्वान् और शास्त्रियों का मुँह लाल हो जाता है और अपने को अपमानित समझ कर तार्किक से किसी नीच उपाय द्वारा वे बदला लेने की सोचने लगते हैं। यही हाल भारतवर्ष में स्वामी शकराचार्य्य और स्वामी दयानद के साथ भी हो चुका है। इन दोनों को विपक्षियों ने चिढ कर नीच उपाय से मार डाला। इन्होंने सोचा था कि इनके मारने से इनके सिद्धान्तों का प्रचार रुक जायगा, पर इन पुरुषों को इतिहास उस समय क्रोध के आवेश में बिल्कुल भूल गया, नहीं तो उन्हें साफ प्रमाण दिखलाई देता कि इन बातों का उलटा फल होता है और हुआ भी वैसा ही। भगवान् शकराचार्य को विष देनेवाले बौद्धों का अब भारत में नाम निशान भी नहीं है और स्वामी दयानद के अनुयायी उस समय से अब कितने बढ़ गए हैं यह तो सब ही जानते हैं। ये दो दृष्टात यहा इसलिये दिखाए गए हैं कि इस विषय में प्राचीन यूनानी ऋषि सुकरात से इन

भारतीय ऋषियों की जीवनी ज्यों की त्यों मिलती है। अस्तु जब कि सुकरात के कुछ भक्त भी थे तो सहस्रों शत्रु भी खडे हो गए थे, जिन की नासमझी ने अत मे उस महापुरुष का प्राण-सहार कर ही के छोड़ा। यह क्यों कर और कैसे हुआ यही पढ़ने योग्य है और आगे के अध्यायों में आवेगा। इसमें सदेह नहीं कि लोगों का यह सपूर्ण भ्रम था और अरिस्टोफेन ने अपने नाटक में सुकरात का जो चित्र खींचा है वह आदि से अत तक बिलकुल मिथ्या और अपमानजनक है, यहा तक कि इस नाटक का एक दर्शक एक बार क्रोध में आकर उछल पडा था और उसने अरिस्टोफेन को सबोधन करके कहा था कि " छि छि तुमने सुकरात का चित्र बिलकुल उलटा खींचा है। वह कैसा धीर वीर और साहसी पुरुष है यह मैं युद्धभूमि मे स्वय देख चुका हूँ"। अस्तु, यों ही सुकरात के बहुत से भक्त भी थे जिन्होंने उसके अभियोग में उसे निर्दोष ठहराया था। सुकरात के जीवन में उसका अभियोग और उसकी मृत्यु ही प्रधान घटनाएँ हैं जो आगे आवेगी। इसलिये साधारण जीवनवृतात में यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया गया है। इतना यहाँ और कह देना अनुचित न होगा कि सुकरात पूरा वैरागी होने पर भी गृहस्थ था और उसके दो तीन लडके वाले भी थे। उसकी स्त्री बड़ी कर्कशा और हठी थी, पर वह उसीके साथ शातिपूर्वक अपना गुजारा करता था। तात्पर्य्य यह कि उसकी गृहस्थी सुखमय नहीं थी इसलिये उसका अधिक समय बाहरी लोगों से बात चीत, तर्क वितर्क, खडन मडन ही में बीतता था, यहा तक कि अपनी

जीविका की भी उसे कुछ परवाह नहीं थी जिस कारण वह बडी गरीबी से गुजारा करता था। यही कारण उसकी स्त्री के कर्कशा होने का भी कहा जा सकता है क्योंकि निरुद्यमी स्वामी से स्त्री कब प्रसन्न रहती है ? जो हो, यहाँ तो दूसरी ही धुन थी। चाहे एक समय भोजन मिले या न मिले, चाहे घर जाते ही स्त्री सैकड़ों झिडकियाँ सुनावे, लोग नाटक में उसकी चिघ्घी उडावें, फटे मोटे पैबद लगे हुए कपडे हों, पर वह एथेंस नगरी के बाजार, हाट, न्यायालय, स्नानागार, दूकान, राजसभा के बाहरी मैदान तथा सभी पबलिक स्थानों में डटा रहता और किसी न किसी से किसी न किसी विषय पर नित्य तर्क वितर्क करता हुआ दिखाई देता था। उसके सारे तर्क का मूल यही था कि बिना जाँचे किसी विषय में अपने को समझदार मत समझो। मैं भी समझदार नहीं हूँ और अपने को वैसा समझता भी नहीं हूँ। तुम मूर्ख होकर अपने को सर्वज्ञ समझे बैठे हो। यही तुम्हारी बडी भारी गलती है। यदि ज्ञान सीखना है तो 'मैं ज्ञानी हूँ' इस अभिमान को पहले त्याग कर कहो कि 'मैं कुछ नहीं जानता, सीखना चाहता हूँ। तभी ज्ञानार्जन कर सकोगे, नहीं तो जन्म भर मूर्ख बने रहोगे और ऐहिक और पारमार्थिक किसी तत्त्व को भी न समझ सकोगे और मनुष्यजन्म वृथा जायगा। यही बतलाने की मेरी कोशिश है और ईश्वर की ओर से मुझको इसका आदेश है"। ये ही बातें उसने अपने अभियोग के समय स्पष्ट रूप से कही भी हैं। अस्तु, जो हो यूनान देश की एथेंस नगरी में उस समय यह एक अलौ-

किक पुरुष था। उसकी तर्क-प्रणाली का उल्लेख अब आगे के अध्याय में आवेगा, जहाँ एक परिचित एथेंसवासी से वह धर्म्म, अधर्म्म के रूप के विषय में बातचीत करता दिखाया गया है। आगे के अध्यायों में उसका अभियोग, आत्मदोष-मोचन (सफाई), बंदीगृह और मृत्यु की घटना तथा अंत में उसके सिद्धांतों का कुछ निराकरण उसके शिष्यों की बातचीत द्वारा दिखाया गया है। यद्यपि विशेष रोचक नहीं हैं पर मननशील पाठकों के लिये आगे के अध्याय मनन करने योग्य हैं। कई अंगरेजी विद्वानों का यह सिद्धांत है कि अपने अभियोग और मृत्यु के समय सुकरात ने जो जो बातें कहीं हैं वे उसके शिष्य प्लेटो ने पीछे से गढ़ कर रची हैं, स्वयं सुकरात की कही हुई नहीं हैं। चाहे जो हो, वे बातें सुकरात के स्वभाव और सिद्धांत की बोधक तो अवश्य हैं। इसलिये यदि कोई यह सिद्ध करने का प्रयत्न करे कि उक्त बातें ज्यों की त्यों सुकरात के मुँह से नहीं निकलीं तो उन बातों का महत्व कुछ घट नहीं सकता। गीता भगवान् श्रीकृष्ण ने अक्षरश: अर्जुन से यदि न कही हो और भगवान् वेदव्यास ने रच कर भगवान् कृष्ण के सिद्धांतों का उसमें समावेश कर दिया हो तो इससे क्या गीता का महत्व घट जायगा? कदापि नहीं। वही बात यहां भी समझ लेनी चाहिए।

तीसरा अध्याय ।

सुकरात की तर्कप्रणाली ।

स्थान सभाभवन ।

उपस्थित—यूथीफाईरन और सुकरात ।

यूथी०—क्यों जी सुकरात ! आज तुम यहाँ सभाभवन में कहाँ ? रोज तो इलासीयम में रहते थे । मेरी तरह तुम्हारा यहाँ कोई मुकद्दमा तो होगा ही नहीं ।

सुक०—नहीं भाई यूथी ! एथेंसवासी इसे मुकद्दमा नहीं, जुर्म कहते हैं ।

यूथी०—क्या कहा ? क्या कोई तुम पर जुर्म लगा रहा है ? तुम खुद तो किसी पर जुर्म लगा ही नहीं रहे होगे ।

सुक०—बिल्कुल नहीं ।

यूथी०—तब तुम्हीं पर क्या किसी ने जुर्म लगाया है ?

सुक०—जी हाँ ।

यूथी०—किसने ?

सुक०—मैं खुद तो उसे अच्छी तरह जानता भी नहीं, शायद कोई अपरिचित युवा पुरुष होगा । उसका नाम शायद मिलटिस है और उसकी जाति पिथीस है । पिथीस जाति का इस नाम का कोई आदमी तुम्हें याद आता है—वही ऊँची

नाक और लंबे लंबे केशोंवाला एक आदमी है जिसके छोटी सी दाढी भी है।

यूथी०—भाई सुकरात मैं तो नहीं जानता। पर यह तो बतलाओ तुम पर उसने कौन सा जुर्म लगाया है ?

सुक०—मामूली जुर्म नहीं है। एक युवा पुरुष का ऐसी भारी बात पर एक राय कायम कर लेना कोई मामूली बात नहीं है, क्योंकि वह सब से कहता फिरता है कि "नौ जवान किस तरह बिगडते हैं और उन्हें बहकानेवाला कौन है यह मैं खूब जानता हूँ।" वह बडा बुद्धिमान आदमी मालूम पडता है, जो मुझे मूर्ख जान कर भी, न्यायाधीशों के सामने मुझ पर अपने दोस्तों के बहकाने का इलजाम लगाता है। मेरी समझ में तो वही एक ऐसा आदमी है जिसने राजनैतिक सुधार का ठीक ठीक सीधा उपाय निकाला है, अर्थात जिसे युवकों को पूरे लायक बनाने का बडा ख्याल है ठीक जैसे किसान छोटे पौधे के बचाव का पहले उपाय करके तब दूसरी तरफ ध्यान देता है। मैं समझता हूँ कि शायद इसी लिये मिलटिस मेरे ऐसे बूढे कटकों को दूर किया चाहता है, जो कि उसकी राय में युवकों को बहकानेवालों में शामिल है, जब ये कटक दूर हो जायगे तो फिर वह मुझ जैसे भी वयोवृद्ध पुरुषों पर कृपादृष्टि करेगा और यों ही लोगों के परोपकार करने के पुण्य का भागी होगा। जिस ढग से उसने काम करना शुरू किया है, उससे तो यही मालूम होता है।

यूथी०—शायद यह ठीक हो, पर मेरा मन तो इसे स्वीकार

सुक०—इन लोगों के इस तरह हँसी करने का कुछ आश्चर्य मत मानो। मेरी समझ में तो एथेंसवासियों को दूसरे को बुद्धिमान मान लेने में कुछ आपत्ति नहीं होती। वे समझते हैं कि हाँ, अमुक मनुष्य बुद्धिमान है। हो, अपने को क्या, पर वह तभी तक है जब तक वह बुद्धिमान अपनी बुद्धि उन्हें सिखाने नहीं जाता। जहाँ उसने उन्हे अपनी बुद्धि दे कर बुद्धिमान बनाना चाहा कि बस सब इर्षा या, शायद जैसे कि तुम कहते हो, और किसी सबब से उससे कुढने लगते हैं।

यूथी०—मेरी बडी इच्छा है कि इस बारे में एक बार मैं अपने ऊपर इन लोगों का व्यवहार अनुभव करूँ।

सुक०—यह तो होने का नहीं, क्योंकि वे लोग शायद सोचते हों कि यह तो ज्यादा किसी से मिलता जुलता नहीं और न अपनी बुद्धि दूसरे को सिखाना चाहता है, इससे छेड क्यों करें। पर मेरा मामला बेढ़ब है। मुझे सब जानते हैं, क्योंकि एक ही मुहल्ले मे रहने के सबब से उन लोगों से बात चीत किए बिना मुझसे नहीं रहा जाता। जो मिलता है उससे मैं बिना सकोच के दोस्त की तरह बिना कुछ लिए बात चीत करने लगता हूँ। इसका मुझे यहाँ तक शौक है कि अगर मैं इस लायक होता तो अपनी गाँठ से कुछ दे कर लोगों को अपनी बात सुनाया करता, पर जैसे कि तुमको हँसी में ये लोग उड़ाते हैं, ऐसे ही मुझे भी यहाँ अदालत में बुलाकर उल्लू बनाना चाहते हैं तो बनावें, मैं कोई हर्ज नहीं समझता। और कहीं नहीं तो चलो

अदालत ही में हँसी दिल्लगी में दिन बीत जायगा, पर अगर ये लोग वास्तव में कुछ कार्रवाई करना चाहते हैं तो ईश्वर ही जाने क्या का क्या होगा ?

यूथी०—अरे मित्र सुकरात ! कुछ भी नहीं, होना हवाना क्या है ? तुम नाहक फिक्र करते हो ? देखना हम लोग दोनों अपना मुकद्दमा फतह कर के यहाँ से चलेंगे।

सुक०—पर मित्र, मैं यह तो पूछना भूल ही गया, तुम्हारा कौन सा मुकद्दमा है ? तुम आसामी हो कि फर्यादी ?

यूथी०—मैं फर्यादी हूँ !

सुक०—किस की फर्याद है ?

यूथी०—कुछ न पूछो ! ऐसे की फर्याद है कि उसके विरुद्ध फर्याद करना अपने को निरा उल्लू और पागल साबित करना है।

सुक०—क्यों ? क्या उसके पर हैं ? उड़ जायगा।

यूथी०—अजी नहीं, उड़ेगा क्या। मारे बुढ़ापे के अच्छी तरह चल सकता ही नहीं, उड़ना तो दूर रहा।

सुक०—आखिर वह है कौन ?

यूथी०—मेरा बाप है।

सुक०—क्या कहा ? तुम्हारे पिता हैं।

यूथी०—जी हाँ, वे ही हैं।

सुक०—उनसे तुम्हें शिकायत क्या है ? जुर्म क्या है ?

यूथी०—खून का जुर्म है !

सुक०—ओ हो ! ठीक है, लोग बेचारे न्याय अन्याय क्या जानें। सिवाय तुम्हारे शायद ही ऐसा कोई न्यायदर्शी

बुद्धिमान होगा जो ऐसा काम करे, जो तुम आज कर रहे हो।

यूथी०—तुम बहुत ठीक कहते हो।

सुक०—क्या जिस आदमी को तुम्हारे पिता ने मार डाला है वह तुम्हारा कोई रिश्तेदार था? जरूर होगा, नहीं तो किसी ऐसे गैर के लिये तुम अपने सगे बाप को क्यों फँसाने लगे थे?

यूथी०—भाई सुकरात! तुम्हारी बात सुन कर तो मुझे हँसी आती है। अरे, मृत व्यक्ति मेरा रिश्तेदार हो या न हो इससे क्या? तुम्हें तो फकत यही पूछना चाहिए था कि मारनेवाले ने मार कर उचित किया कि अनुचित? यदि उसने उचित किया हो तो उसे छोड देना चाहिए, नहीं तो सगा भी क्यों न हो उसे अवश्य दड दिलवाना चाहिए। जान बूझ कर ऐसे आदमी से सहवास करोगे और उसे न्यायालय के सामने ला कर सत्य और न्याय के ऋण से उऋण नहीं होगे तो तुम भी खून करनेवाले के पाप के भागी बने बिना छूट नहीं सकते। अब की बार तो मृत व्यक्ति मेरे पड़ोस के खेत का एक गरीब रखवाला था। शराब के नशे में वह मेरे एक गुलाम से बिगड़ उठा और उसने उसे मार डाला। मेरे पिता ने इसके बदले में उसके हाथ पैर बाध उसे गडहे मे डाल रखा और 'क्या कर्तव्य है' यह पूछने के लिये धर्माचार्य के पास आदमी भेजा। उधर आदमी भेज कर इसको खूनी आसामी समझ कर उसने उसकी कुछ भी सुध न ली क्योंकि

उसने समझा कि खूनी आसामी है, मर ही जायगा तो क्या हर्ज है और वास्तव में हुआ भी यही। दूत के फिर आने तक भूख और जाड़े के मारे वह विचारा मर ही गया और अब इस अपराध के लिये मैं अपने पिता पर जुर्म लगाता हूँ तो घर के सब लोग मय पिताजी के मुझसे बहुत चिढ़े हुए हैं। वे कहते हैं कि पिता ने उस आदमी को कभी भी मारा नहीं है, और अगर एक बार नहीं सौ बार भी मान लें कि मारा ही हो तो इससे क्या ? क्या वह खूनी, घातक नहीं था और तुम्हें क्या पड़ी है जो ऐसे अदने से आदमी के लिये अपने सगे बाप को खून के जुर्म में फँसा कर नाहक अधर्म क भागी बनते हो। सुना सुकरात, धर्म के विवेक में इन लोगों की बुद्धि की दौड़ देख ली न !

सुक०—अच्छा भाई यूथीफाइरन, यह तो बतलाओ कि तुमने क्या धर्म, अधर्म और दैवी बातों का ठीक ठीक विवेक कर लिया। क्या तुम्हें निश्चय है कि इस मामले में अपने पिता को अपराधी ठहरा कर न्यायालय में घसीटने में तुम खुद तो कोई अधर्म नहीं कर रहे हो ? क्या न्याय अन्याय की जाँच पड़ताल करने में तुम्हारी इतनी पहुँच है ?

यूथी०—वाह जी वाह ! यह तो तुमने खूब कही। अगर इन बातों को मैं सही सही समझता ही नहीं होता तो फिर मैं किस मर्ज की दवा ठहरता। तब और मामूली आदमियों से मुझ में विशेषता ही क्या होती ?

सुक०—बहुत ठीक। तब तो मेरे लिये भी यही उचित है कि मैं तुम्हारा चेला हो जाऊँ और अपना मुकद्दमा शुरू होने के पहले ही मिलटिस को इसी विषय पर बहस करने के लिये ललकारूँ। मैं कहूगा कि मैंने खूब सोच विचार कर देखा कि दैवी बातों का ज्ञान रखना बहुत जरूरी है, और जब तुम मुझसे इसी लिये नाराज हो कि मैं देवताओं के विषय में अप्रतिष्ठाजनक बातें फैलाता हूँ तो इस में मेरा कुछ कसूर नहीं है। मैं यूथीफाइरन का चेला हूँ और अगर यूथीफाइरन को इन बातों का पूरा पंडित मानते हो और उसे पक्का धर्मिष्ठ समझते हो तो मुझे भी वैसा ही समझो। यदि ऐसा नहीं समझते तो मुझ पर जुर्म क्यो लगाते हो, मेरे गुरु पर जुर्म लगाओ, जो अपने बडों को बिगाडता है अथात् मेरे ऐसों को नए नए विचार सिखा कर बहकाता है, और खुद अपने बाप को दुर्वचन कह कर और धमका कर बिगाडता है, अर्थात् अपनी राह पर लाना चाहता है, इत्यादि। मैं ये ही सब बातें कहूँगा जिसमें वे मुझे छोड कर तुम्हें फँसा देवें। अगर उसने बात न सुनी तो फिर अदालत के सामने उसे इसी बात पर बहस करने के लिये फिर दोबारा ललकारूँगा।

यूथी०—तब ही तो मजा आवेगा। मैं भी उसकी वह पोल खोलूँगा कि वह भी याद करेगा, जरा मेरे घर बयाना देकर मजा तो देखे। अपनी बात पीछे, पहले उसीके वह धुर्रे उड़ाऊँगा कि सारी अदालत जान जायगी।

सुक०—अरे यार, इसी लिये तो तुम्हें गुरु मान रहा हूँ।

उसे तुम्हारे जैसे जबरदस्त का सामना तो पडा नहीं है, इसलिये, मुझ ही गरीब का गला घोटने को तय्यार हो गया है। जानता है न कि "यह क्या है ? इसे वहस में नीचा दिखा देते ही हैं, चलो इसीको पापी बना के फँसावें"। सो तुम मुझे जरा पाप और पुण्य का मर्म, इस खून के बारे मे इसका जो सबध है, समझा दो तो अच्छा हो। मैं तो समझता हूँ धर्म सब कामों में एक सा ही है, अर्थात् धर्म का रूप सदा हर हालत मे ज्यो का त्यो रहता है और अधर्म हमेशा हर हालत मे धर्म के विरूद्ध ही रहता है। इसका असली स्वरूप कभी नहीं बदलता। जहाँ पाप होगा वहाँ अधर्म अवश्य ही होगा।

यूथी०—बहुत ठीक कहा। यही तो है ही।

सुक०—अच्छा तो फिर पाप पुण्य का भेद तो जरा समझा दो।

यूथी०—अच्छा, लो सुनो। धर्म यह है कि जिसने कोई अपराध किया हो, चाहे वह कोई हो, अपना सगा बाप ही क्यो न हो, उसे अवश्य दड दिलवाना चाहिए जैसा कि मैं इस समय कर रहा हूँ। अधर्म यह है कि उसे दड न दिलवाना। मैं तुम से यह मुकालते की बात नहीं कहता, इसका पक्का प्रमाण भी दूँगा। पहले कई बार लोगों के सामने इसे साबित कर भी चुका हूँ। वह यह है कि धर्म यह है कि " पापी को छोडना नहीं, चाहे कोई क्यों न हो। अच्छा, जीअस ऐसा धर्मात्मा और न्यायशील देवता तो दूसरा नहीं हुआ है। देखो उसीने अपने पिता क्रोनस को अपने सतानों का भक्षण करने के

अपराध मे वर्धन में डाल दिया था और क्रोनस ने भी इसी लिये अपने पिता को दड दिया था। देखो, यह सब जान सुन कर भी लोग मुझ से ऐसा बुरा मानते हैं कि मैं अपने बाप को दड दिलवाने की कोशिश कर रहा हूँ। देवता के लिये तो यह बात उचित मानी जाय और मेरे लिये ठीक इसके विपरीत। बलिहारी है!

सुक०—बस इसी लिये तो मैं भी अपराधी ठहराया जा रहा हूँ, क्योंकि देवताओं के बारे में जब लोग ऐसी बातें कहते है तो मुझे अच्छा नहीं लगता। ऐसी कहानियों मे सदेह करने ही के कारण मैं पापी समझा जाऊँ तो क्या ताज्जुब है। पर जब तुम्हारे ऐसा समझदार आदमी इन किस्सों को सच्चा मानता ही है तो मुझे क्या चारा है। मुझे भी मानना ही पड़ेगा, क्योंकि मुझे तो इतनी समझ है ही नहीं कि तुम्हारे सामने इन सब बातों के बारे में कुछ कह सकूँ पर मैं तुमसे मित्रभाव से पूछता हूँ कि क्या हकीकत मे तुम इन सब बातों को सच मानते हो ?

यूथी०—हाँ जी, खाली यह तो कुछ भी नहीं है इससे और भी आजीब आजीब बातों का मुझे पता है जिन्हें लोगों ने कभी सुना भी नहीं होगा।

सुक०—तब तो तुम वास्तव में यह मानते हो कि देवताओं में लड़ाई झगडे, दगे फिसाद, मार पीट हुआ करते हैं जैसा कि कवियों ने वर्णन किया है, या जैसा कि मदिरों मे तसवीरें बनी हुई हैं खास कर उस पोशाक पर जो

चित्रकारी बनी हुई है जो कि पथनीअक के त्योहार पर अक्रोपोलिस को ले जाई जाती है।

यूथी०—मानते तो हैं ही, और अभी मैंने कहा भी है कि तुम कहो तो और भी ऐसी ऐसी अद्भुत कहानियाँ सुनाऊँ कि तुम्हारे होश दग हो जाँय।

सुक०—ऐसी बात है? अच्छा फिर किसी वक्त सुन लेंगे। इस समय तो कृपा कर के मैंने जो पूछा है उसीका ठीक ठीक जवाब देते तो अच्छा था। मैंने पूछा था कि "धर्म्म क्या है?" सो तो अभी तक आपने ठीक बतला कर मेरी दिलजमई की नहीं। तुमने फकत यही कहा कि "इस समय जो हम कर रहे हैं—"अपने पिता को खून के लिय सजा दिलवाना" यही धर्म्म है और पुण्य का काम है।

यूथी०—सो तो है ही। तुम बहुत ठीक कहते हो।

सुक०—हो सकता है। पर और भी तो बहुत से काम 'पुण्य' के हैं।

यूथी०—हैं क्यों नहीं?

सुक०—अच्छा, तुम फिर से याद करो, देखो मैं यह नहीं पूछता कि तुम मुझे बहुत से पुण्य कार्य्यों में से दो चार का नाम बतलाओ, पर मैं तो पुण्य का मर्म पूछता हूँ, जिससे कि पुण्य के कुल काम असल में पुण्य कहलाने लगते हैं। मै समझता हूँ कि तुमने अभी कहा है कि पुण्य का एक स्वरूप है। वह जिस में हो वह कार्य्य धर्म्म का है और पाप का एक पृथक् स्वरूप है। वह जिस में हो वह कार्य्य अधर्म्म कहलाता है, क्यों यहीं न कहा था?

यूथी०—हाँ यही कहा था।

सुक०—अच्छा तो हमें इस स्वरूप का मर्म समझा दो और यह बतला दो वह स्वरुप कैसा है, जिसमे कि हम उसे समझ कर उसी के प्रमाण से तुम्हारी और दूसरे आदमियों की भी करतूतों का मुकाबला करके यह निश्चय कर सकें कि इस स्वरूप से अमुक आदमी के कर्म मिलते हैं इसलिये अमुक मनुष्य का कार्य्य धर्म्मानुकूल है या इससे नहीं मिलते इसलिये धर्म्मविरुद्ध है। इसकी प्रमाणिक माप ऐसी ही कुछ होनी तो चाहिए।

यूथी०—हाँ हाँ तो तुम्हारी ऐसी मनशा होगी, तो मैं वह स्वरूप भी बतला दूँगा।

सुक०—मनशा तो है ही।

यूथी०—अच्छा लो, सुनो 'जिन बातों से देवता प्रसन्न हों वह पुण्य है और जिनसे नाराज हों वह पाप है"।

सुक०—वाह ! क्या कही है, यही तो हम चाहते थे। पर हमें इतनी समझ नहीं है कि तुम्हारी बात को सत्य असत्य निश्चित कर सकें। खैर तो तुम इसे खुलासे तौर से सबूत पेश करके प्रमाणित कर ही दोगे। फिर खटका ही किस बात का है।

यूथी०—जरूर, इसमें भी कोई संदेह है ?

सुक०—अच्छा, अब हम लोगों ने जो बातें की हैं उनकी जाँच पड़ताल करनी चाहिए। देवताओं को जो चीजें पसंद हों वे पवित्र हैं और जो मनुष्य उन्हें पसंद हैं वे धर्म्मात्मा हैं और

इसके विरुद्ध जो वस्तुएँ या मनुष्य हैं वे उन्हें नापसद हैं अतएव वे अपवित्र और पापी हैं।

यूथी०—बहुत ठीक।

सुक०—क्यों यही है न। यही न इसका खुलासा है।

यूथी०—हाँ हाँ, यही तो है ही। इस से बढ कर और खुलासा क्या होगा ?

सुक०—अच्छा भाई यूथी, यह भी तो हमही लोग जिक्र कर रहे थे कि देवता लोगों में लडाई झगडा, राग द्वेष और अनबन हुआ करती है।

यूथी०—हाँ कहते तो थे।

सुक०—पर यार यह नहीं पता लगता कि किस तरह की अनबन से इन लोगों में यह राग द्वेष हुआ करता है ? अच्छा देखें शायद इस तरह से इसका कुछ पता लगे। अच्छा अगर हममें तुममें यह झगडा हो जाय कि अमुक सख्या अमुक सख्या से अधिक है अर्थात् चार दो से अधिक है, तो क्या इसके सबब से हम लोगों मे नाराजगी और शत्रुता की नौबत आनी चाहिए। क्या फौरन गिनती कर के हम लोग अपने इस विवाद का फैसला नहीं कर लेंगे ?

यूथी०—अवश्य कर लेंगे।

सुक०—और अगर इसी तरह से किसी चीज के छोटी बडी होने का विवाद उपस्थित हो तो हम लोग उसे नाप कर विवाद तय कर लेंगे। क्यों कर लेंगे न ?

यूथी०—कर ही लेंगे।

सुक०—और यों ही किसी चीज को तौल कर वजन का झगड़ा मिटा सकते हैं न ?

यूथी०—हाँ, सो तो है ही ।

सुक०—तब अब ऐसा कौन सा सवाल रहा जिसमें राय न मिलने के सबब से हमें गुस्सा आ जाय और हम एक दूसरे के दुश्मन बन जाँय। शायद तुम्हें अभी इसका उत्तर न सूझता हो। खैर, तो सुनते जाओ। भला बुरा, उचित अनुचित, श्रेष्ठता नीचता, इन्हीं बातों का पचड़ा है न ? इन्हीं बातों के लिये ही तो हम में, तुममें और गैरों में भी जब एक से दूसरे की राय नहीं मिलती तो झगड़ा फिसाद हुआ करता है ?

यूथी०—हाँ जी, इन बातों से तो अनबन होती ही है।

सुक०—अच्छा तो फिर देवता लोग भी जब लड़ें झगड़ेंगे तो इन्हीं बातो के लिये ही न ?

यूथी०—और नहीं तो क्या ?

सुक०—अच्छा तो तुम कहते हो कि कुछ देवता लोग एक बात को उचित समझते हैं और दूसरे देवता दूसरी बात को धर्म्म समझते हैं। उनमें कुछ जिस बात को उत्तम समझते हैं, दूसरे उसी बात को अधम समझते हैं, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो उनमें इन बातों पर लड़ाई झगड़े कभी न होते।

यूथी०—सो तो है ही।

सुक०—और उनमें से हर एक जिसे अच्छा समझता है उससे प्रेम रखता है और जिसे बुरा समझता है उससे घृणा

करता है। क्यों यही है न ?

यूथी० - बेशक।

सुक०—पर तुम कहते हो कि उनमें से कुछ एक किसी कार्य को उचित समझते हैं और दूसरे उसी को अनुचित मानते हैं, और इसके बारे मे उनमे वाद विवाद, लडाई झगडे सब कुछ हो जाते हैं। क्यों ऐसा ही है न ?

यूथी०—है ही।

सुक०—तब तो तुम्हारे बतलाए हुए नियम के अनुसार वही चीज पवित्र और अपवित्र दोनो ही गुणवाली हुई।

यूथी०—हाँ।

सुक०—तब तो मेरी बात का जवाब नहीं हुआ। मैंने तुमसे यह तो नहीं पूछा कि कौन सी चीज पवित्र अपवित्र दोनों गुणवाली है, लेकिन तुम्हारे कहने से ऐसा मालूम पडता है कि देवताओ को वही बात पसद नापसद दोनों ही है, तो क्या ताज्जुब है कि तुम्हारा यह काम (अपने पिता को जुर्म में फँसाना) जीअस देवता को पसद हो और क्रोनस और उरोनस को नापसद हो, मफ़ेश को पसद हो और हीरी को नापसद हो और इसके अलावे और भी कई देवताओं को जिनकी राय एक नहीं होगी यह कार्य्य अच्छा मालूम हो या दूसरों को बुरा मालूम हो।

यूथी०—वह चाहे जो हो पर इसपर किसी में मतभेद नहीं होगा कि यदि कोई किसी को अन्यायपूर्वक मार डाले तो उसे अवश्य दड देना चाहिए।

सुक० – यह क्यों कर ? क्या रात दिन मनुष्यों मे इसी बात

पर झगडा नहीं होता कि अमुक मनुष्य ने खून किया है, या कोई काम अनुचित किया है, सो उसका यह काम कानून के अनुसार दडनीय है या नहीं।

यूथी०—हाँ यह तो रात दिन अदालतों में हुआ ही करता है। अपराध कर के दड से बचने के लिये लोग झूठ सच कहने और सब कुछ करने कराने के लिये तैयार रहते है।

सुक०—क्या वे लोग यह बात मजूर कर लेते हैं कि "हमने अपराध किया है" और फिर ऐसा कह कर भी यह कहते है कि हमें दड नहीं मिलना चाहिए ?

यूथी०—नही ऐसा तो नहीं कहते।

सुक०—तब वे लोग जैसा कि तुम कहते हो सब कुछ कहने और करने कराने को तैयार नहीं रहते। मैं जहाँ तक समझता हूँ वे अपने मुँह से अपराध स्वीकार करके "हमें दड न हो" ऐसा कहने की हिम्मत नही कर सकते। बात असल में यह है कि लोग अपराध स्वीकार ही नहीं करते। हमने अमुक काम बुरा किया है या अनुचित किया है लोग यह मानते ही नहीं। क्यों यही है न ?

यूथी०—हाँ, हाँ, तुमने बहुत ठीक कहा।

सुक०—तो फिर देवताओं का भी यही हाल है। उचित अनुचित के लिये जब वे आपस में लडते होंगे, तो एक कहता होगा कि यह कार्य्य उचित है दूसरा कहता होगा कि नहीं अनुचित है। बस, इसी बात पर झगडा चलता होगा और यह बात तो असभव है कि अपराध स्वीकार

करके फिर कोई कहे कि हमें दड नहीं मिलना चाहिए, चाहे वह देवता ही क्यों न हो।

यूथी०—हाँ, सो तो ठीक ही है।

सुक०—अच्छा तो झगडनेवाले चाहे देवता हों या मनुष्य, जब झगड़ेंगे तो हर एक अलग अलग बात पर झगडेगा। जब किसी बात पर वे झगडेंगे तो उनमें से कुछ कहेंगे कि यह उचित धर्म्मानुकूल हुआ है, कुछ कहेंगे कि नहीं अनुचित धर्म्म-विरुद्ध हुआ है। क्यों यही न होगा?

यूथी०—हाँ।

सुक०—अच्छा तो फिर अब यह मुझे अच्छी तरह समझा दो। इस बात का तुम्हारे पास क्या प्रमाण है कि अगर "एक मजदूर दूसरे किसी के सेवक को मार डाले और उस सेवक का स्वामी उस मजदूर को कैद करके विद्वानों से उसके दड-विधान की राय पूछने को आदमी भेजे और उसी बीच में वह कैदी मजदूर मर जाय" तो कैद करनेवाले स्वामी को सब देवता अपराधी ठहरावेंगे? तुम किस तरह यह विवेक करते हो कि पुत्र के लिये पिता को ऐसे काम में अपराधी ठहरा कर खून का जुर्म लगाना उचित या न्यायानुकूल है। इसे जरा सोंच समझ के साफ तौर पर मेरे दिल में बैठा दो कि सब देवता अवश्यही तुम्हारे इस कार्य को धर्मानुकूल समझने में सहमत हैं। अगर तुमने मेरी दिलजमई कर दी तो मैं भी कहूगा कि "हाँ देखो तो बुद्धिमानी इसे कहते हैं"।

यूथी०—मै तुम्हें ये सब बातें साफ साफ समझा सकता हूँ, पर बड़ी देर लगेगी।

सुक०—वाह जी ! तुम ने क्या जजों से भी मुझे सुस्त ठहरा लिया ? उन्हे तो तुम यह बात खुलासा करके समझाओगे कि तुम्हारे पिता ने अधर्म किया है और ऐसे काम को सब देवता एक सम्मति से बुरा समझते हैं।

यूथी०—अगर वे मेरी बात मानेंगे तो जरूर समझाऊगा।

सुक०—अगर तुम्हारी बात ठीक होगी तो वे अवश्य ही मानेंगे। पर जब तुम बोल रहे थे तो अपने आप ही मेरे मन में यह प्रश्न उठा कि "मान लो कि यूथी ने खूब साफ तौर से यह बात साबित कर दी कि सब देवता ऐसे काम को अनुचित समझते हैं' तो इससे धर्म अधर्म की मीमासा क्या होगी ? शायद यही एक काम ऐसा है कि जो देवताओं को नापसद हो, पर अभी हम ऊपर देख चुके हैं कि धर्म अधर्म का भेदाभेद इस प्रकार किया नहीं जा सकेगा, क्योंकि यह तो मालूम हो ही चुका है कि जो बात देवताओं को नापसद है वही पसद भी है। इसलिये इस बात की बहस छोड कर, मैं यह मान लेता हूँ कि तमाम देवता एक सम्मति से तुम्हारे पिता के इस काम को अनुचित मान लेगे, और इससे घृणा प्रगट करेंगे। पर इससे क्या हमारे तर्क का मानदड ठीक हो जायगा कि जिस बात से वे सब घृणा करें वह अधर्म है और जिससे वे प्रीति करे वह धर्म है ? जिसे कुछ देवता पसद करें और कुछ नापसद करें

वह क्या होगा? या तो वह धर्म अधर्म दोनों ही होगा या दोनों में से एक भी नहीं होगा? क्या तुम धर्म अधर्म को इसी प्रणाली से स्पष्ट किया चाहते हो?

यूथी०—और नहीं तो क्या?

सुक०—हमें तो कुछ नहीं है पर तुम्ही विचार कर देखो कि इस सूत्र का अवलबन करके तुम मुझे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सब ठीक ठीक समझा सकोगे।

यूथी०—अच्छा ठीक है, मैं यह कहता हूँ कि "जिसे सब देवता चाहते हैं वह धर्म है और सब देवता जिससे नफरत करते हैं वह अधर्म है।"

सुक०—बस, इसी व्याख्यान की जाँच पडताल करनी है न, मै या और लोग जो दावा पेश करे या हम आप ही जो कुछ कहें उसे बिना कुछ पूछ पाछ किए मान लेना है या इस दावे का उलट पलट कर खूब जाच पडताल करनी है, क्यों तुम क्या चाहते हो?

यूथी०—नहीं, नहीं, जाँच पडताल जरूर करेंगे पर इतना कहूँगा कि अब की बार मैंने जो दावा पेश किया है वह बिल्कुल सही है।

सुक०—मित्रवर! यह तो अभी थोडी ही देर मे साफ हुआ जाता है। अच्छा तो अब इस प्रश्न पर जरा ध्यान दो तो। "देवता लोग धर्म (पवित्रता) को पवित्र होने के सबब से चाहते हैं या वे किसी बात को चाहते हैं इस लिये वह पवित्र मानी जानी चाहिए, अर्थात् वह पवित्रता

को चाहते हैं या वह जिसे या जो कुछ चाहें या पसन्द करे वही पवित्र है"।

यूथी०–भाई मैं तुम्हारी बात को ठीक ठीक समझा नहीं।

सुक०–अच्छा मैं और खुलासा किए देता हूँ। हम प्राय यह कहा करते हैं कि अमुक वस्तु चल सकती है, चल रही है। देखी जा सकती है, दिख रही है, इससे तुम समझ तो जरूर जाते होगे कि चल सकती है और चल रही है, देखी जा सकती है और दिख रही है, इसमें क्या फर्क है?

यूथी०—समझ क्यों नहीं जाते हैं, समझते ही हैं।

सुक०—और हम यह भी तो कहते हैं, कि अमुक वस्तु प्यारी है, प्यारी लगने के लायक है या अमुक वस्तु प्यारी लगती है, प्रेम का आकर्षण करती है। तात्पर्य यह है कि कोई चीज प्रेम आकर्षण करने की शक्ति रखती है (पर किसी कारण से लोगों की निगाह उस पर पडी नहीं कि वह प्रेम आकर्षण करती) या कोई वस्तु प्रेम आकर्षण करती है (लोगों की निगाह उस पर पड गई है), इसका फर्क तो समझते हो न?

यूथी०—हाँ क्यों नहीं।

सुक०—अच्छा तो मुझे अब यह बताओ, कि जो चीज चल सकती है वह चल भी रही है ऐसा क्या कह सकते हैं, केवल इसी कारण से कि वह चल सकती है?

यूथी०—नहीं, ऐसा क्योंकर कहा जा सकता है, जब वह चलेगी तभी कहा जायगा कि चल रही है।

सुक०—हाँ, तो अब तुम हमारा अभिप्राय समझ गए न। मैं यह कहता हूँ, कि कोई चीज प्रेम पाने के लायक या चाहने लायक हो सकती है पर वह जब तक किसी के प्रेम को न पावे या उसकी प्रीति का गुण प्रगट न हो तब तक क्या उसे प्रीति कह सकते हैं ?

यूथी०—नहीं कह सकते।

सुक०—अच्छा तो फिर, यहाँ भी वही बात आई। किसी चीज को कोई, प्यारी न होने के कारण प्यार नहीं करता। प्यारी हो तो प्यार करता है या यह कहोगे कि किसी के प्यार करने ही से वह चीज प्यारी कहलावेगी।

यूथी०—प्यारी होगी तभी वह प्यार करेगा, प्यार करने ही से सर्वथा 'प्यारी' थोड़ ही हो जायगी।

सुक०—अच्छा तो फिर पवित्रता के बारे में क्या कहा जाय ? तुम्हारी व्याख्या के अनुसार यह वही वस्तु है जिसे सब ही देवता चाहते हैं ?

यूथी०—हाँ।

सुक०—केवल इसके पवित्र होने ही से या और भी कोई कारण है ?

यूथी०—नहीं, केवल पवित्र होने ही के कारण।

सुक०—तब तो यह पवित्र है इस लिये देवता चाहते हैं, न कि देवता इसे चाहते हैं इसलिये इसे पवित्र मानना चाहिए, ऐसा तो है नहीं ?

यूथी०—हां, मालूम तो ऐसा ही पड़ता है।

सुक०—तब तो जो देवताओं के पसंद आने लायक चीज है

उसीको वे चाहते है और वह है भी ऐसी ही प्रीति की और गुणवाली जिससे देवता उसे चाहते हैं।

यूथी०—बहुत ठीक !

सुक०—सब देवताओं को जो पसद हो वही पवित्र (धर्म्म) नहीं ठहरा, और देवता जो कुछ पसद करें या कर लें उसी को पवित्र नहीं कह सकते, जैसा कि तुमने कहा है, वह तो (पवित्रता) कोई दूसरी ही चीज होगी।

यूथी०—ऐसा क्यों ?

सुक०—क्योंकि यह बात हम लोगों में तय पा चुकी है, कि देवता लोग धर्म को पवित्र होने ही के कारण पसद करते हैं, केवल उनके पसद करने ही से कोई चीज पवित्र नहीं हो सकती। क्यों ऐसा ही है न ?

यूथी०—है तो ऐसा ही।

सुक०—तब तो जो देवताओ के पसद लायक चीज है उसी को वे पसद करते हैं अर्थात् वह चीज अपनी उक्त योग्यता रखने के कारण ही देवताओं को पसद आती है ?

यूथी०—और नहीं तो क्या ? सो तो है ही।

सुक०—तो फिर पवित्रता (धर्म्म) देवताओं को प्रिय नहीं ठहरी और देवताओं को जो कुछ प्रिय है वही धर्म्म नहीं है, जो कि तुम्हारा दावा है। ये दानों वस्तुएँ भिन्न भिन्न हैं।

यूथी०—ऐसा क्यों ?

सुक०—क्योंकि यह बात हम लोगों मे तय पा चुकी है कि किसी वस्तु के पवित्र होने ही के कारण देवतागण उस

को पसद करते हैं, केवल उनके पसद आने ही से कोई वस्तु पवित्र नहीं हो सकती। क्यों ऐसा ही है न ?

यूथी०—हा।

सुक०—और उन्हे कोई वस्तु प्यारी उनके प्यार ही के कारण से है और ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि उन्हे अमुक वस्तु प्रिय है और वे उसे प्यार नहीं करते।

यूथी०—बहुत ठीक।

सुक०—तो फिर मित्रवर! पवित्रता और देवताओं को जो (वस्तु) प्रिग है ये दोनों एक वस्तु नहीं ठहरतीं, भिन्न भिन्न चीजें हैं। यदि देवता पवित्रता ही को प्यार करते होते तो पवित्र जनों को भी अवश्य प्यार करते, क्योंकि उन्हें (पवित्र) जनों की भी पवित्रता प्रिय है, पर जो पवित्र जनों को प्रिय है वह यदि देवताओं को भी प्रिय होती तो उनके प्रिय होने के कारण पवित्रता भी पवित्र होती, पर सो तो है नहीं। यह तो ठीक इसके विपरीत है। दोनों भिन्न भिन्न है, क्योंकि एक तो इस प्रकार की है (जो देवताओं को प्रिय है) अर्थात् प्रिय है क्योंकि प्रीति पाती है, और दूसरी प्रीति पाकर प्रिय होती है। मैंने यह पूछा था कि "पवित्रता क्या है ?" पर तुमने हमें इसका मर्म (तत्त्व) समझाया नहीं, तुम केवल इसका एक गुण वर्णन करके बस चुप रह गए अर्थात यह 'सब देवताओं को प्यारी है"। तुमने यह नहीं बतलाया कि वास्तव में "वह है क्या ?" देवता पसद करें या न करें, या और भी इसमें सत्तर प्रकार के गुण

हाँ हमें इससे क्या मतलब ? हम यह बात साफ किया चाहते हैं कि पवित्रता (धर्म्म) क्या है और अपवित्रता (अधर्म्म) क्या है ?

यूथी०—मैं तुम्हें क्यों कर अपने हिये का मर्म समझाऊँ, कुछ समझ में नहीं आता। जो कुछ हम कहते हैं या जो बात पकडते हैं वह ठहरती नहीं है, चक्र की तरह घूमती रहती है।

सुक०—तुम्हारा दावा या तुम्हारी व्याख्या भी मेरे पुरुषा दाऊदयाल जी (डाएडेलस) की तरह है। यदि यही बात मैंने कही होती या इस प्रकार से उक्त व्याख्या उपस्थित की होती तो तुम मेरी पूरी चिन्धी उडाते और कहते कि हा 'बहुरगी दयालजी के वसधर न हो। इसी लिये घडी घडी रग बदलते हो, एक पर स्थिर नहीं रहते"। पर गनीमत हुई कि यह सब व्याख्या तुम्हारी की हुई है। इसीलिये मसखरी उड़ाने का कोई मौका तो है नहीं। तुम स्वय ही देख रहे हो एक बात स्थिर होने ही नहीं पाती।

यूथी०—वाह ! मसखरी उडाने का मौका नहीं क्या है ? यह तुम्हारी ही करतूत है कि कोई बात तय नहीं होने पाती। तुम दाऊदयाल जी के अवतार हो, यदि मेरी व्याख्या मानी जाय तो फिर कुछ झगडा रहे ही काहे को।

सुक०—वाह यार ! तुमने तो मुझ को दाऊदयाल से भी बढकर कारीगर ठहरा दिया। वे तो अपनी ही बनाई हुई चीजों को घुमाते फिराते थे, पर मैं दूसरों की चीजों

को भी घूमा फिरा, उलट पलट कर सकता हूँ और मजा यह है कि बुद्धिमानी जबरदस्ती मेरे सिर मढ़ी जाती है। मैं तो यही चाहता हूँ कि एक दयाल जी क्या सौ दयालजी क्यों न आवें पर हम लोगों की बातें अचल रहें। खैर जाने भी दो, इन बातों में क्या तत्त्व रखा है। *हमें तो असली बात से मतलब है। मैं अपने भरसक* तुम्हें सहायता पहुँचाने में कसर नहीं रखूंगा जिसमें तुम मुझे किसी न किसी तरह (धर्म्म) समझा सको, क्योंकि मैं देखता हूँ कि तुम्हें इसकी कुछ ऐसी फिक्र नहीं है। नाराज मत हो। धीरे, धीरे। अच्छा यह तो बताओ कि धर्म्म या पवित्रता सब की सब न्यायशील (उचित) अवश्य है न?

यूथी०—जरूर है।

सुक०—अच्छा तो फिर क्या सब न्याय भी पवित्र अवश्य होगा, या सब पवित्रता के न्याय होने पर न्याय का एक भाग पवित्र और दूसरा भाग कुछ और है।

यूथी०—मैं तुम्हारा तात्पर्य नहीं समझा।

सुक०—ऐसा क्यों? क्या उम्र में या बुद्धि मे किसी बात मे तुम मुझ से किसी तरह हीन हो? मैंने ठीक कहा था कि तुम में इतनी ज्यादा बुद्धि है कि तुम इन सब बातों में उसे खर्च करना व्यर्थ समझते हो। मित्रवर, समझने की कोशिश करो, मैं तुमसे पहेली नहीं पूछता हूँ। किसी कवि ने जो बात कही है मेरा तात्पर्य ठीक उसके विपरीत है। कवि ने कहा है "जहाँ भय होगा

वहीं श्रद्धा भी होगी"। पर मैं इस कवि की बात को नहीं मानता। क्यों नहीं मानता, बतलाऊँ ?

यूथी०—हा, हा।

सुक०--मैं इस बात को ठीक नहीं समझता कि जहाँ भय होगा वहाँ श्रद्धा भी होगी। मैं रात दिन देखता हूँ कि बहुत से लोग महामारी, अकाल इत्यादि से डरते हैं, पर उस पर श्रद्धा नहीं रखते, तो फिर जहाँ भय रहा वहाँ श्रद्धा कहाँ रही ? क्यों मैं ठीक कहता हूँ न ?

यूथी०—ठीक।

सुक०—पर हाँ यह अवश्य देखने में आता है कि जहाँ श्रद्धा रहती है वहाँ भय भी रहता है। देखो बड़ों के सामने जिन पर हम श्रद्धा रखते हैं हमें पाप करते भय या लज्जा अवश्य आती है। इसीसे समझ लो, जहाँ श्रद्धा रहती है वहा भय भी रहता है और यह कहना सरासर गलत है कि जहाँ भय होगा वहाँ श्रद्धा भी होगी। पर श्रद्धा हमेशा भय के साथ नहीं रहती क्योंकि भय का घेरा श्रद्धा से अधिक फैला हुआ है। यह भय का एक हिस्सा है, जैसे कि 'ताक' (असमान सख्या) सख्या का एक हिस्सा है, क्योंकि जहा 'ताक' होगा वहाँ सख्या अवश्य ही होगी, पर यह कोई आवश्यक नहीं है कि जहां सख्या हो वहाँ 'ताक' (असमान सख्या) अवश्य हो। अब समझ गए न ?

यूथी०—हा।

सुक०—अच्छा तो फिर मैं भी वही पूछता हूँ, कि जहाँ जहाँ

न्याय (इंसाफ) है वहाँ क्या हमेशा पवित्रता रहती है। अथवा जहाँ हमेशा न्याय है वहाँ पवित्रता हो भी पर ऐसा भी होता है कि जहाँ न्याय है वहाँ हमेशा पवित्रता नहीं रहती क्योंकि पवित्रता तो न्याय का केवल एक हिस्सा मात्र है। क्यों यही बात है न, या और कुछ?

यूथी०—हाँ, ठीक है।

सुक०—अच्छा, तो अब दूसरी बात लो। यदि पवित्रता न्याय का एक हिस्सा है तो हमें यह भी बतलाना पड़ेगा कि वह कौन सा हिस्सा है? मान लो कि यदि तुमने मुझसे अभी पूछा होता कि 'ताक' सख्या का कौन सा भाग है तो हम कहते कि जो सख्या बराबर न हो उसी को 'ताक' कहते हैं। क्यों यही है न?

यूथी०—हाँ।

सुक०—अच्छा तो तुम हमें बतला सकते हो कि न्याय का कौन सा भाग पवित्र है। बतला दो तो बड़ा अच्छा हो, फिर मुझे भी कुछ भय न रहे। मैं बेखटके मेली-टस् से कहूँ कि "अब मैंने यूथीफाइरन से अच्छी तरह सीख लिया है कि पाप और पुण्य क्या है, अब तुम मुझे अन्याय से अपराधी नहीं ठहरा सकते।

यूथी०—अच्छा लो सुनो। पवित्रता और पुण्य न्याय का वह हिस्सा है जो देवताओं के प्रति ध्यान देने अथवा खबर-दारी से सबध रखता है, अर्थात् देवताओं के प्रति हमारा जो कर्त्तव्य है उसके साधन करने से जो सबध

रखता है, और बाकी का हिस्सा वह है जो मनुष्यों के प्रति कर्तव्यसाधन से संबध रखता है।

सुक०—जवाब तो तुमने अच्छा दिया। पर एक छोटी सी बात छूट गई है जिसे मैं पूछ कर और भी तसल्ली कर लिया चाहता हूँ। असल मे मैं ठीक समझा नहीं कि वह 'ध्यान देना' अथवा 'कर्त्तव्यसाधन' क्या है जिसके विषय में तुम कह रहे हो ? यह तो हो ही गा नहीं कि और वस्तुओं के प्रति हम जो ध्यान देते या खबरदारी करते हैं वैसे ही 'ध्यान या खबरदारी या कर्त्तव्य साधन' से देवताओं के सबध मे भी तुम्हर तात्पर्य है। जैसे कि दृष्टात के तौर पर देखो। यह तो हम खूब जानते हैं कि घोडों के प्रति 'कर्तव्य' या उनकी खबरदारी करना घोड़ों का शिक्षक (अश्वपालक) खूब जानता है।

यूथी०—बेशक।

सुक०—क्योंकि 'अश्वविद्या' से तात्पर्य उसी विद्या से है जिस का सबध घोड़ों के पालन, रक्षण या उनके प्रति जो कर्त्तव्य है उन्हे करने से है।

यूथी०—हाँ।

सुक०—और यह भी तो ठीक है न, कि शिकारी के अलावे 'कुत्तों' के प्रति जो कर्त्तव्य है उसे और लोग कम जानते है अर्थात् शिकारी के "इल्म" या आखेट विद्या से तात्पर्य उसी विद्या से है जो 'कुत्तो की खबरदारी करने से सबध रखती है।

यूथी०—यह तो ठीक है।

सुक०—वैसे ही 'चरवाही विद्या' से तात्पर्य्य उसी विद्या से है जिससे चरनेवाले पशुओं की खबरदारी होती है, उन पर मुनासिब ध्यान दिया जाता है, या यों कहो कि उनके प्रति जो कर्तव्य है उसका उचित पालन किया जाता है।

यूथी०—बेशक ऐसा ही है।

सुक०—और तुम्हारा यह कहना है कि 'पवित्रता या पुण्य वह है जिससे देवताओं की खबरदारी (उनके प्रति कर्तव्य-साधन) होती है।

यूथी०—हाँ।

सुक०—अच्छा तो सब तरह की खबरदारी से तात्पर्य तो एक ही है न? क्या इससे यही तात्पर्य है कि जिसके प्रति यह यत्न किया जाता है उसकी भलाई हो, उसे फायदा पहुँचे, जैसे कि यत्न करने से घोड़ों को फायदा पहुँचता है, उनकी नस्ल की तरक्की होती है। साराश यह कि 'अश्व-विद्या' का ठीक उपयोग होने से घोड़ों की सब तरह से उन्नति होती है।

यूथी०—अवश्य होती है।

सुक०—इसी तरह से शिकारी के 'करतब' से कुत्तों को फायदा पहुँचता है, उनकी उन्नति होती है और गाय बैलों को ग्वालों के इल्म से लाभ पहुँचता है। यह बँधी बात है। यह तो है ही नहीं कि जिसके प्रति यत्न किया जाता है उससे उसे हानि पहुँचाने या कष्ट देने का अभिप्राय हो।

यूथी०—नहीं जी, ऐसा क्यों होगा?

सुक०—उसे फायदा पहुँचाने ही से मतलब है न।

यूथी०—निस्सदेह।

सुक०—अच्छा, तो फिर यह भी तुम्हारा कहना है कि पुण्य या धर्म्म का मतलब कि देवताओं की खबरदारी करना है।

यूथी०—बेशक।

सुक०—अच्छा, तो खबरदारी सब की एक ही तरह न होती है? मतलब यह कि जिसकी खबरदारी की जाती है उस से उसको फायदा पहुँचता है, जैसे कि घोड़े की खबरदारी की जाय तो घोड़े को फायदा पहुँचेगा, उसकी तरक्की होगी, अश्वपालक की विद्या का यही काम न है? क्यों मैं ठीक कहता हूँ कि गलत?

यूथी०—ठीक कहते हो।

सुक०—उसी तरह से शिकारी के हुनर से कुत्तों को फायदा पहुँचता है, उनकी तरक्की होती है, और चौपायों को चरवाहे के हुनर से फायदा पहुँचता है। क्यों इसका उपयोग सब जगह एक ही मा लाभकारी साबित होता है न? कहीं ऐसा तो नहीं होता कि इस खबरदारी से, जिसकी खबरदारी की जाती है, उसे किसी तरह का कष्ट हो या नुकसान पहुँचे?

यूथी०—नहीं जी, ऐसा भला क्यों कर हो सकता है?

सुक०—फायदा ही न पहुँचता है?

यूथी०—बेशक।

सुक०—तो क्या 'धर्म्म' वह हुनर है, जिसके द्वारा हम देव-

ताओं की खबरदारी करके उन्हे फायदा पहुँचाते हैं या उनकी तरक्की करते हैं ? तुम क्या यह बात मानते हो कि कोई पुण्य का काम करने से हम किसी देवता को सुधार देते हैं या पहले से उसकी कुछ तरक्की कर देते हैं ?

यूथी०–नहीं, बिलकुल नहीं ।

सुक०–ठीक है, मुझे भी पूरा विश्वास है कि तुम ऐसा नहीं मानते हो । इसीलिये तो मैंने पूछा था कि "देवताओं के प्रति कर्तव्य" से तुम्हारा तात्पर्य्य क्या है ? यह तात्पर्य्य तो हरगिज न होगा ।

यूथी०–बहुत ठीक ! मेरा यह तात्पर्य्य बिलकुल नहीं था ।

सुक०–अच्छा, तो फिर क्या तात्पर्य्य था ? देवताओं के प्रति 'किस प्रकार के कर्तव्य' को पुण्य या धर्म्म कहा जाय ?

यूथी०–यही, जैसा कि गुलामों का अपने मालिक के प्रति कर्तव्य है ।

सुक०–ठीक, मैं समझ गया । अर्थात् यह देवताओं की एक गुलामी है या उनकी सेवा करना है ।

यूथी०–बेशक ।

सुक०–अच्छा, अब तुम मुझे एक बात बतलाओ । जिस हुनर से डाक्टर का काम निकलता है (या यों कहो कि जो हुनर उसकी सेवा करता है) उसका नतीजा क्या है ? क्यों नतीजा तो तदुरुस्ती ही न है ?

यूथी०–बेशक ।

सुक०–अच्छा ! और जो हुनर जहाज बनानेवाले की सेवा

करता है या जिस हुनर से जहाज बनानेवाले
काम निकलता है, उससे क्या पैदा होता है ?

यूथी०–जहाज पैदा होता है या जहाज बनता है, उ
क्या होगा ?

सुक०–उसी प्रकार से मेमार (पेशराज) के हुनर
फल इमारत है। क्यों है न ?

यूथी०–है ही।

सुक०–अच्छा, तो मित्रवर ! अब यह बतलाइए कि देवता
की सेवा करने का जो हुनर है उससे क्या पैदा होता
कौन सा नतीजा निकलता है ? तुम इस बात को जरू
जानते होगे, क्योंकि तुम कह चुके हो कि "मैं औ
से दैवी बातों में ज्याद दखल रखता हूँ"।

यूथी०—बेशक, रखता हूँ।

सुक०–वाह ! वाह ! फिर क्या कहना है, बस लगे हा
बतला ही डालो कि वह कौन सा नतीजा है जिसके पैद
करने या निकालने के लिये देवताओं को हमारी सेव
की जरूरत पड़ती है।

यूथी०–बड़े बड़े उत्तम और श्रेष्ठ नतीजे हैं। इसके बहुत
उत्तम फल हैं।

सुक०–हाँ, ठीक वैसे ही बहुत से श्रेष्ठ फल या नतीजे एक
सेनापति द्वारा भी उपजाए जाते हैं। अर्थात् एक सेना
पति की कार्रवाई द्वारा भी होते हैं, पर सब नतीजों
की सिरताज तो युद्ध में विजय या जीत ही न है ? क्या
मैं ठीक नहीं कहता हूँ ?

यूथी०—ठीक है।

सुक०—वैसे ही मैं कह सकता हूँ कि किसान भी बहुत से उत्तम फलों का कारण होता है, पर सबका सिरताज फल तो यही है कि वह धरती से अन्न पैदा कर देता है।

यूथी०—बहुत ठीक।

सुक०—अच्छा, तो फिर देवताओं की कार्रवाई से जो बहुत से श्रेष्ठ फल पैदा होते हैं उनमें से सब का सिरताज, मुख्य या निचोड़ फल या परिणाम क्या है? अर्थात् इससे कौनसा खास प्रयोजन सिद्ध होता है।

यूथी०—अरे भाई, सुकरात! तुम से तो मैं अभी कह ही चुका हूँ कि इन सब बातों का असली मर्म समझना हँसी खिलवाड़ नहीं है, पर तौ भी मैं तुम्हें एक आम बात बतलाए देता हूँ। वह यह है कि "यदि किसी आदमी को यह निश्चय है कि मनसा, वाचा, कर्म्मणा उसकी प्रार्थना, यज्ञ आहुति, पूजा इत्यादि देवताओं को स्वीकार है, तो उसके येही कर्म 'पवित्र' हुए, इससे यह फल होता है कि सर्वसाधारण की भलाई बनी रहती है, उनकी कुशल-क्षेम रक्षित रहती है, जैसे कि एक विशेष गृहस्थ की इससे भलाई होती है और उस पर दुःख नहीं आता, वह आपत्ति और विपत्ति से बचा रहता है। ठीक इसीसे विपरीत जो क्रिया है वह "अपवित्र' है, जो देवताओं को स्वीकार नहीं है और जिसके करने से नाना प्रकार के दुःख और आपत्तियाँ प्राणियों पर आती हैं।

सुक०—बहुत ठीक, इतने फेर फार करने की क्या जरूरत

थी। तुम चाहते तो दो ही बातों में मेरी बात का जवाब दे देते, पर मैं देखता हूँ कि तुम मुझे सिखाना नहीं चाहते, क्योंकि ठीक उसी मौके पर जब तुम यह बात कहा ही चाहते थे, जो मैं तुम से इतनी देर से पूछ रहा हूँ, तुम चुप कर गए। अगर तुम कहते चलते तो अब तक मैं तुम से सीख लिए होता कि 'पवित्रता' क्या है। अच्छा तो मैं फिर से पूछता हूँ। जिस तरफ तुम मुझे ले चलोगे, जाना पडेगा। खैर, तो तुम यह बतलाओ कि जब तुम 'पवित्र' या 'पवित्रता' कहते हो तो उससे क्या मतलब समझते हो? इससे क्या यज्ञ, प्रार्थना और पूजा की एक विद्या या विधि से मतलब नहीं है?

यूथी०—यही मतलब है।

सुक०—यज्ञ का मतलब यही है कि देवताओं को कुछ देना और प्रार्थना का मतलब है कि उनसे कुछ माँगना। क्या यही है या और कुछ?

यूथी०—यही है।

सुक०—तो क्या तुम्हारे कहने का तात्पर्य यह है कि "देवताओं से माँगने और देने की जो विधि या विद्या है वही पवित्रता या धर्म है?

यूथी०—और क्या? यह तात्पर्य तो है ही। अब इतनी देर में तुम मेरी बात समझे।

सुक०—समझूँगा क्यों नहीं, जब मैं तुम्हारी विद्याबुद्धि से लाभ उठाने की ठान चुका हूँ और उसी तरफ मन

लगाए हुआ हूँ, तो क्या समझूँगा नहीं, खूब समझूँगा। तुम्हारी अदनी बात भी वृथा नहीं जाने दूँगा। अच्छा भाई साहिब, यह तो बतलाओ कि देवताओं की सेवा करना किसे कहते हैं? क्यों, यही न कि उनको कुछ देना या उनसे कुछ माँगना?

यूथी०—यही है।

सुक०—तो उनसे वही माँगना उचित होगा, जिसकी हमें जरूरत हो?

यूथी०—बेशक।

सुक०—और उनको जिस बात की जरूरत हो, वही उनको देना भी उचित होगा? ऐसी चालाकी तो करनी है ही नहीं कि जिस आदमी को जिस चीज की जरूरत नहीं उसे बलात् वह चीज नजर की जाय।

यूथी०—नहीं, ऐसा तो सर्वथा अनुचित है।

सुक०—तो फिर तुम्हारे कहने मुताबिक 'पवित्रता' या 'धर्म' देवता और मनुष्यों के बीच एक प्रकार का व्यापार ठहरा।

यूथी०—खैर, जो चाहो कह लो।

सुक०—नहीं भाई, जो चाहे क्या कह लें। जो यथार्थ होगा, वही कहेंगे, पर यह मेरी समझ में नहीं आता कि हम लोगों से कुछ चीजें पा कर देवताओं को फायदा क्या पहुँचता है? हमें उनसे चीजें मिल कर जो फायदा पहुँचता है वह तो स्पष्ट ही है। जो कुछ अच्छी चीजें हैं, सब उन्हींसे मिली हैं। पर हमारे देने या दान से उन्हें कौन सा फायदा पहुँचता है? क्या उनसे व्यापार करने

मे हमे इतना गहरा मुनाफा है कि हमें सब अच्छी चीजे मिल जाती हैं और बदले में देना कुछ नहीं पड़ता ?

यूथी०—वाह भाई सुकरात ! तुम्हारी भी अजीब समझ है, क्या हमारी भेंट से देवताओं को कुछ फायदा पहुँचता है ?

सुक०—पर वह भेट क्या है, जो हम देवताओं को देते हैं ?

यूथी०—भेंट और क्या होगी। यही भक्ति और श्रद्धा, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ और जो देवताओं को सर्वथा स्वीकार है।

सुक०—अच्छा तो 'पवित्रता' देवताओं को सर्वथा स्वीकार है, पर उससे उनको कुछ फायदा नहीं पहुँचता या वह उनको प्यारी नहीं है ?

यूथी०—वाह ! प्यारी क्यो नहीं है ? इससे बढ कर उन्हें और कोई वस्तु प्यारी नहीं है।

सुक०—अच्छा तो तात्पर्य्य यह निकला कि पवित्रता या धर्म्म वह वस्तु है जो देवताओं को प्यारी है।

यूथी०—बहुत ठीक।

सुक०—अब मैं क्या कहूँ ? अब यदि मैं तुम्हें यह निश्चय करा दूँ कि तुम जो दावा पेश करते हो या जो तर्क की विधि निर्देश करते हो वह एक जगह ठहरती नहीं। कभी इधर कभी उधर जाती रहती है। अब तुम मुझे दाऊदयाल मत कहना, जब कि तुम खुद दाऊदयाल से बढ कर ऐसे चतुर हो कि तुम्हारी युक्तियाँ चक्र की तरह इधर से उधर घूमती रहती हैं। देखो, हम लोग जहाँ से चले थे फिर चक्र की तरह घूम कर वहीं आ पहुँचे।

तुम्हे जरूर याद होगा कि यह बात हम लोगों मे तय पा चुकी है कि " देवताओं को जो वस्तु प्यारी है " और पवित्रता या धर्म्म " ये दोनों एक चीज नहीं हैं। क्यों याद है कि भूल गए ?

यूथी०—खूब याद है।

सुक०—अच्छा ! तो अब तुम फिर वही कह रहे हो, कि 'देवता जिसे प्यार करते हैं' वही 'पवित्र' है। देवता जिसे प्यार करते हों या देवताओं को जो प्रिय हो, ये दोनों चीज तो एक ही न हुई ?

यूथी०—जरूर।

सुक०—तो फिर, या तो हम लोगों का पहला निश्चय गलत था, और यदि गलत नहीं था तो अबका निश्चय गलत है।

यूथी०—ऐसा ही तो मालूम पडता है।

सुक०—तो अब फिर नए सिर से आरंभ करना पडा और 'पवित्रता क्या है' इसकी छान बीन करनी पडी। बिना इसका पूरा पता लगाए मैं हटने का नहीं। मुझे नालायक न समझ कर मेरे प्रश्न को खूब ध्यान दे कर सुनिए और अबकी मुझे इसका यथार्थ मर्म समझा दीजिए, क्योंकि सिवा आपके और इस बात का वेत्ता कोई नहीं है। अस्तु, तुम्हारे ऐसे वेदव्यास को पा कर अब मैं बिना सीखे तुम्हें छोडने का नहीं। यह तो सर्व्वथा असंभव है कि तुम बिना धर्म्म या अधर्म्म का मर्म समझे अपने विचारे बूढे बाप को गुलाम के खून करने का अपराध लगा कर दंड दिलवाना चाहते हो,

से बयान किया है। सच पूछिए तो सुकरात की यह वक्तृता एक प्रकार का उसका आत्मचरित्र है। इसलिये उसके मुकद्मे की और सब छोटी छोटी बातें न लिख कर, उसकी वक्तृता ज्यों की त्यों आगे दी गई है जिससे आप ही सब प्रगट हो जायगा।

अपने अभियोक्ताओं का व्याख्यान समाप्त होने पर जब उसे अपने दोष मोचन के लिये "जो कुछ कहना चाहते हो, कहो" ऐसी आज्ञा हुई तो उसने यों कहना आरभ किया।

हे एथेंस वासियो, मैं कैसे कहूँ कि मुझपर दोष लगाने-वालों के बयान से आप लोगों के चित्त पर क्या असर हुआ है, पर इतना तो मैं कह सकता हूँ कि उनकी चलती फिरती, चाल से भरी हुई बातों से मैं अपने को भूल सा गया हूँ, पर यह न समझिए कि उनकी एक भी बात सच है। पर भाइयो! उन्होंने जितनी झूठी बाते बनाई हैं, उनमे से उन्हें यह कहते सुन कर मुझे बड़ा आश्चर्य्य हो रहा है कि "आप लोग सुकरात से सावधान रहिएगा, यह बात बनाने में बड़ा चतुर है, कहीं आप लोगों को धोखा न दे दे" शोक है कि, इन निर्लज्जों को यह बात कहते तनिक भी लज्जा नहीं आई, क्या लोग नहीं जानते थे कि मेरे जबान हिलाते ही इनकी इस मिथ्या उक्ति की पोल खुल जायगी, और मैं साबित कर दूँगा कि मैं कदापि 'चतुर वक्ता' नहीं हूँ। हाँ यदि 'चतुर वक्ता' से तात्पर्य्य उन लोगों का 'सदा सत्यवादी' से हो तो दूसरी बात है। तब तो मैं उनसे सहमत हूँ, और अपने को उनसे श्रेष्ठ वक्ता कह सकता हूँ। मेरे फर्य्यादियों ने आप लोगों मे 'सिर से पैर' तक झूठ ही झूठ कहा है, पर मैं

आप लोगों से सिवाय सच के कुछ भी न कहूँगा। हाँ, उन की तरह बडे बडे वचन-विन्यास-सयुक्त, बडे श्रम से तय्यार की हुई 'स्पीच' तो मैं नहीं दे सकूँगा पर जो कुछ पहले मुँह में आवेगा, बिना तय्यारी के सीधा निरा सत्य आप लोगों की सेवा में निवेदन करूँगा, क्योंकि मुझे विश्वास है कि मैं हक पर हू, इसलिये आप लोग भी मुझसे अन्यथा की आशा न रखें। भाइयो, अब इस उम्र में आप लोगों के सामने झूठा बयान लेकर उपस्थित होना क्या मुझे शोभा देगा? मैं अब युवा नहीं हूँ कि तरह तरह की बनावटी मिथ्या बातों का जाल रच कर आप लोगों को धोखे में डालूँ। पर हाँ भाइयो, मेरी एक विनती अवश्य है, और मैं कर जोड कर आप लोगों से यह माँगता हूँ कि बयान करते समय जब मैं अपने मामूली ढग से बात करना शुरू करू जैसा कि बाजार हाट में, यार दोस्तों मे बात चीत करने की मुझे आदत है, तो आप लोग कृपा कर के चौंके नहीं और बीच में दखल न देवें। यही मेरी प्रार्थना है।

असल में बात यह है कि सत्तर वर्ष की उम्र मे आज यह पहला अवसर है कि अपराधी रूप से मैं अदालत के सामने खडा किया गया हूँ। इसके पहले अदालत में मैने कभी पैर नहीं रखा। इसलिये यहाँ के अदब कायदे से मैं बिलकुल अनजान हूँ। यदि मैं कोई अजनबी परदेशी होता और अपने देश की रीति के अनुसार बयान करता तो आप लोग जरूर इस बात पर विशेष ख्याल नहीं करते और मुझे अपने देश के कायदे के मुताबिक बोलने के लिये क्षमा करते।

उसी क्षमा का मैं अब भी प्रार्थी हूँ और समझता हूँ कि इस के मिलने का मुझे हक है। आप लोग इस बात का कुछ ख्याल न करें कि मेरे बयान की भाषा कैसी है, ढग क्या है, केवल इतना ध्यान रखें कि बात सत्य है कि नहीं। मेरा मामला न्याययुक्त है या नहीं, क्योंकि यही श्रेष्ठ न्यायाधीशो को उचित भी है, जैसे कि श्रेष्ठ वकीलों को भी सत्य भाषण ही करना चाहिए। हे एथेंसवासी भाइयो! मुझे दो तरह की सफाई पेश करनी पडेगी, क्योंकि मुझ पर अपराध लगानेवाले दो तरह के हैं। एक तो पुराने लोग हैं और दूसरे हाल के नए महाशय हैं। वर्षों से बहुत से लोग मुझे आप लोगों के सामने दोषी ठहरा रहे हैं। इन्होने एक बात भी सच नहीं कही है, और इन्हीं लोगो का मुझे अधिक भय है क्योंकि अनीटस वगैर यद्यपि बहुत बलवान् हैं, पर मैं उनसे वैसा अधिक नहीं डरता। बात यह है कि इन पुराने लोगों से अधिक भय खाने का कारण यह है कि कुछ आज ही नहीं वर्षों से जब आप लोग बच्चे थे, तब से आप लोगों के कोमल हृदयों पर ये लोग इन दोषों का प्रभाव डाल रहे हैं, और तभी से आप लोगों को समझा रहे हैं कि "देखो! सुकरात नाम का एक बुद्धिमान आदमी है, जो दैवी बातों में तरह तरह की तरदाजी गढ़ा करता है, जो पृथिवी की कुल बातों की जिरह के सवालों से जाँच पड़ताल करता और बुरी से बुरी बातों को सब से अच्छी जचवा देना जिसका काम है। भाइयो, ऐसी रिपोर्ट फैलानेवालों ही से मैं अधिक डरता हूँ, क्योंकि इनके श्रोतागण निश्चय कर लेते हैं कि जो मनुष्य

ऐसे सब काम करता है वह ईश्वर को कभी मान ही नहीं सकता, वह जरूर नास्तिक होगा। देवी देवताओं पर तो उसका विश्वास भला काहे को होने लगा। हे भाइयो! ऐसे दोष लगानेवाले, एक दो नहीं बहुत से हैं, और बहुत दिनों से ये लोग मुझ पर दोष लगा रहे हैं, आप लोगों को ये सब बातें सुना रहे हैं, जिसमें आप लोगों के चित्त पर यह बात खूब अंकित हो जाय, और उस समय उनकी बातों का प्रत्युत्तर देनेवाला भी वहाँ कोई उपस्थित न रहे।

सब से बढ कर आश्चर्य की बात तो यह है कि मैं उन लोगों के नाम से बिलकुल अनजान हूँ, और सिवाय भडुवे कवियों के (जो लोग बडी नीच तरह मेरी नकल उतार कर मसखरी उड़ाते हैं) मैं किसी का पता भी नहीं बतला सकता, पर बाकी के और सब लोग कोई तो इर्षा से, और जलन से और कोई सचमुच ही अपने विश्वास के अनुसार मुझे आप लोगों के सामने बुरा बना रहे हैं। इन्हीं शत्रुओं का सामना करना सब से कठिन है, क्योंकि परिचित न होने के कारण ऐसे लोगों को मैं अदालत के सामने बुला कर उनसे जिरह कर ही नहीं सकता। मुझे तो अपने बचाव के लिये यहाँ केवल परछाँही (छाया) से लडना और जवाब सवाल करना पडेगा। सवाल ही करना है, जवाब देनेवाला कोई है ही नहीं। इसलिये आप लोग मेरी बात मान रखिए कि मुझे दो तरह के फर्यादियों का मुकाबला करना है। एक तो मेलीटस वगैर और दूसरे वे ही पुराने महाशय जिनका उल्लेख मैं कर आया हूँ। आपकी मर्जी मुताबिक पहले मैं पुराने फर्यादियों

के मुकावले में अपनी सफाई पेश करूँगा, क्योंकि मुझ पर जुर्म लगाते हुए पहले पहल इन्हीं लोगों को आपने सुना है और नए फर्यादियों से कहीं बढ चढ कर इन लोगों की कोशिश और पैरवी रही है।

अच्छा तो भाई एथेंसवासियो! जो थोड़ा सा अवकाश मुझे दिया गया है उसी बीच में मुझे अपनी सफाई पेश करनी है और बहुत दिनों से मेरे विरुद्ध आप लोगों के मन में जो बातें जमा कर, मेरी तरफ से आप लोगों का मन फेरा गया है, उन बातों का सिलसिलेवार खण्डन करके मुझे अपने को दोषमुक्त करना होगा। मुझे आशा है कि यदि मैं इस काम मे सफल हो सका, तो आपका और मेरा दोनों ही का भला है। मैं यह जानता हूँ कि यह काम कठिन है पर खैर जो हो, भगवान की जब ऐसी ही इच्छा है तो मुझे भी यह आज्ञा शिरोधार्य है और मैं यथासाध्य अपनी सफाई पेश करूँगा। अच्छा तो अब फिर से उसी बात से शुरू करता हूँ कि वे कौन सी बातें हैं जिनकी रिपोर्ट फैला कर आप लोगों का मन मुझसे फेरा गया है, या मेलीटस के सामने कौन कौन सी बातें उपस्थित थीं, जिन बातों पर विचार कर के उसने फर्द जुर्म तैयार कर दिया है।

वह कौन सा कलंक है जो मेरे शत्रुओं ने मुझ पर लगाया है? थोडी देर के लिये मैं मान लेता हूँ कि ये लोग मुझ पर कानून के मुताबिक जुर्म लगा रहे हैं, उस फर्द जुर्म की इबारत यों होगी "सुकरात एक कुकर्मी मनुष्य है, जो स्वर्ग और पाताल की बातों में बेजा दखल देता, बुरी से बुरी बातों

को ऐसे ढग से कहता कि वे उत्तम जँचने लगें, और लोगों को यह सब सिखाता फिरता है"। इसी प्रकार की बात, ये लोग कहते हैं, और अरिस्टोफेन ने अपने नाटक में एक नकल ऐसे ढगों से उतारी भी है, जिसे कि आप लोगों ने भी देखा होगा। सुकरात नाम रख कर एक आदमी को, टोकरे में सुलाया गया और वह कहता जाता था कि "मैं आकाश में चल सकता हूँ"। वह और भी बहुत तरह की मूर्खता की बकवाद करता था जिसका मर्म मैं कुछ भी नहीं समझ सका। शायद ऐसा कोई मनुष्य हो जो उक्त प्रकार की विद्या जानता हो, पर यह मुझे पूरा विश्वास है कि इसी बात के लिये मेलीटस मुझ पर कभी भी अपराध नहीं लगावेगा। पर भाई एथेंसवासियो! बात असल में यह है कि "इन सब बातों से मुझसे कुछ भी सम्बध नहीं है। आप लोगों में से भी बहुतेरे इस बात के गवाह हैं। आप लोगों से मेरी प्रार्थना है, क्योंकि आपमे से बहुतों ने मुझे प्राय बात चीत करते सुना है। आप बतलाइए और अपने सगी साथियों से भी पूछिए, या जो लोग नहीं जानते उन्हें सूचित कर दीजिए कि क्या कभी भी आप लोगों ने मुझे ऐसी बातों का थोडा बहुत या कुछ भी जिक्र करते देखा या सुना है? बस केवल इसी बात से साबित हो जायगा कि मेरे बारे में इस तरह की और भी जो कहानियाँ गढी गई हैं वे सब बनावटी और झूठी हैं। सच पूछिए तो इन में से कोई कहानी भी सत्य नहीं है, और यदि आप लोगों ने यह सुना हो कि मैं लोगों को पढाने या सिखाने की नियत से बुलाता था इसके लिये उनसे रुपया वसूल करता

था, यदि ऐसी कोई बात आप लोगों ने सुनी हो, तो वह भी निरी झूठी है। पर हाँ, यह मैं कह सकता हूँ कि लियोनतीनी के गोरगी, सियस के प्रोडिकस, या एलिस के हिप्पीयस, * जिस तरह लोगों को शिक्षा देते हैं उस प्रकार से शिक्षा देने में मजा तो बडा है। ऊपर मैंने जिन तीन महाशयों के नाम बतलाए हैं, इनमें से कोई भी जब चाहें किसी शहर में जा कर वहाँ के युवकों को समझा बुझा के उनके साथियों से अलग कर सकता है और अपने संग मेल पैदा करके उनसे रुपया वसूल कर सकता है। शायद मैं ठीक कहता हूँ कि परोस के रहनेवाले एक ऐसे महाशय इस ही समय एथेंस में मौजूद हैं।

अभी उसी दिन की बात है कि हिप्पोनीकिस के लडके कैलाश से मेरी मुलाकात हुई। अकेले इसी आदमी ने सूफियों के लिये इतना रुपया खर्च किया है कि और सबों ने मिल कर भी इतना नहीं किया होगा। मैंने उस से कहा "देखो भाई कैलाश! यदि तुम्हारे दोनों लड़के—उसके दो लडके हैं—घोडी के या गाय के बछडे होते तो हम उनके लिये एक शिक्षक नियत कर देते जो उनको स्वाभाविक विद्या में निपुण कर देता तो वह शिक्षक या तो कोई साईस या किसान होता पर ऐसा तो है नहीं, वह तो आदमी है। तो फिर उन्हें शिक्षित करने के लिये तुम किसे नियुक्त करने लगे हो? कौन ऐसा आदमी है जो एक भले रईस आदमी की स्वाभाविक

* ये लोग उस समय के सोफिस्ट सम्प्रदाय के शिक्षक थे।

विद्या का उस्ताद है ? ये तुम्हारे अपने लडके हैं, इसलिये मैं समझता हूँ कि तुमने इस बात का अवश्य विचार कर लिया होगा। तुम्हारी निगाह में वास्तव में ऐसा कोई आदमी है ? यदि है, तो बतलाओ। चलो मैं भी सुन लूँ कि वह कहाँ का रहनेवाला है ? उसका क्या नाम है ? और उसकी फीस क्या है ? उसने जवाब दिया कि "भाई सुकरात ! उसका नाम इमीनस है, वह परोस का निवासी है और फीस उसकी पाच मीनाई (एक युनानी सिक्का जो आज कल के इकसठ रुपए के बराबर होता था) है।" उसकी इस बात से मैंने समझा कि वास्तव मे इमीनस बडा भाग्यवान् है। वह इस फन में ऐसा उस्ताद है और ऐसी चतुरता से सिखा सकता है। यदि मेरे पास ऐसी विद्या होती तो मैं तो बड़े बडे आव भाव दिखाता और मेरे पैर जमीन पर पडते ही नहीं। पर एथेसानिवासी भाइयो ! बात असल मे यह है कि मेरे पास ऐसी विद्या इत्यादि कुछ भी नहीं है।

शायद कोई भाई मुझ से यह पूछे कि "अच्छा भाई सुकरात तो तुम फिर करते क्या हो ? तुम्हारे विरुद्ध यह सब शिकायत आती क्यों हैं ? हो न हो मामूली बातों से जरूर कुछ विलक्षण कार्य तुम करते हो, जिससे तुम्हारे खिलाफ यह पचडा खडा हुआ है, नहीं तो क्या कारण है कि तुम्हारे विरुद्ध ये सब शिकायतें खड़ी होतीं। इसलिये हम पूछते हैं कि तुम असल में क्या करते हो ? जिससे यह सब उपाधियाँ खड़ी हुईं, जिसमें हम लोग भी गलत फैसला न कर बैठें ?"

मैं मानता हूँ, कि आप लोगों के मन मे ऐसे प्रश्नों का उठना मुनासिब है। अस्तु, तो मैं अब बतलाता हूँ कि किस कारण से मेरे विरुद्ध ये सब शिकायतें खड़ी हुईं और मैं बदनाम हो गया। अच्छा तो लीजिए सुनिए। आप यह न समझें कि मैं दिल्लगी या मसखरी कर रहा हूँ। जो कुछ कहता हूँ, अक्षर अक्षर सत्य है। भाइयो! मेरी यह बदनामी केवल एक तरह की बुद्धिमानी के कारण हुई है। यह कोई अद्भुत चीज नहीं, केवल वही बुद्धि है जिसके होने से मनुष्य, मनुष्य पदवी पा सकता है। इसी अर्थ से मैं वास्तव मे 'बुद्धिमान' कहला सकता हूँ। पर उन महाशयों के पास जिनका कि मैं अभी उल्लख कर रहा था, ऐसी बुद्धि अवश्य होगी जिसका दर्जा "मानुपी बुद्धि" से कहीं चढा बढा है या कुछ ऐसा वैसा है जिसका खुलाशा मुझसे हो नहीं सकता, क्योंकि उस असाधारण बुद्धि क बारे में मुझे तो कुछ बोध है नहीं। यदि कोई कहे कि 'मुझे बोध है' तो वह निरा झूठा है और मुझे बदनाम करना चाहता है। भाइयो, यदि मेरी बातें आपको कुछ अहकार भरी मालूम पडती हों तो आप लोग कृपापूर्वक मुझे बीच मे टोकिए मत। मुझे कहने दीजिए। मैं जो कुछ कहता हूँ, अपनी बनाई नहीं कहता। जो जिसने कहा है उसीकी भाषा में मैं आप से कहता हूँ, और उसकी बातों का विश्वास आप लोग भी करते हैं। अपनी बुद्धिमानी की गवाही में मैं डेलफी के देवताओं की गवाही पेश कर सकता हूँ। चेरीफोन को तो आप

जानते ही होंगे। जवानी ही से वह मेरा साथी रहा, साधारण प्रजा के साथ वह देश से निर्वासित हुआ था, और उन्हीं के साथ फिर लौटा भी। आप लोग उसके मिजाज से भी वाकिफ होंगे कि वह जिस काम को हाथ में लेता उसे कैसी तेजी और दृढ़ता के साथ करता था। एक समय वह डल्फी को गया और उसने यह प्रश्न कर ही तो डाला। दोस्तों, फिर मेरी अर्ज है कि आप लोग चिल्लाएँ नहीं। उसने पूछा कि सुकरात से अधिक बुद्धिमान और भी कोई है? जिसके जवाब में वहाँ के पुजारी जी ने कहा कि "नहीं कोई नहीं।" चेरीफोन आप तो मर गया है, पर उसका भाई यहाँ मौजूद है जो मेरी बातों की गवाही देगा। आप कहेंगे कि इन बातों से क्या? भाइयो! मैं आप लोगों को अपनी बदनामी की जड़ कहाँ से शुरू हुई यही बतलाना चाहता हूँ।

जब मैंने यह देववाणी सुनी तो मैं विचारने लगा कि इस प्रकार की स्पष्ट देववाणी से तात्पर्य क्या है? क्योंकि मैं खूब जानता हूँ कि मुझमे 'बुद्धि' जो पदार्थ है उसका लेश मात्र भी नहीं है, तो फिर उनका ऐसा कहना कि "सुकरात ही सब से अधिक बुद्धिमान है" क्या अर्थ रखता है? वे देवता हो कर झूठ तो बोलेंगे नहीं। बहुत दिनों तक मुझे इसका कुछ तात्पर्य्य समझ नहीं पडा। अत को लाचार हो कर बडी अनिच्छा से मैंने इस पहेली को यों सुलझाने की ठानी। जो मनुष्य सब से अधिक बुद्धिमान प्रसिद्ध था, मैं उसके पास यह सोच कर गया कि यहाँ से

मैं देवताओं की गलती साबित कर दूँगा और उन्हें बतलाऊँगा कि "देखो तुम मुझे सब से अधिक बुद्धिमान कहते हो, पर यह मनुष्य मुझ से भी अधिक बुद्धिमान है"। अस्तु मैंने उस आदमी से जिरह के सवाल करने शुरू किए। उसके नाम बतलाने की जरूरत नहीं। वह एक राजनीतिविशारद व्यक्ति था। इसका परिणाम क्या हुआ वह भी सुनिए। जब मैंने उससे बात चीत की तो मालूम हुआ कि यद्यपि बहुत से लोग उसे और वह अपने आप को खुद भी 'बुद्धिमान' समझता है, पर वास्तव में वह बुद्धिमान है नहीं। फिर मैंने उसे यह बात साबित करने की चेष्टा की कि तुम यद्यपि अपने को बुद्धिमान समझे बैठे हो, पर वास्तव मे बुद्धिमान हो नहीं। मेरे ऐसे कहने से वह और उसके इर्द गिर्द जितने लोग खड़े थे सब मेरे शत्रु हो गए। अस्तु, जब मैं वहाँ से चला तो मैंने सोचा कि देखो "मैं इस मनुष्य से जरूर अधिक बुद्धिमान हूँ क्योंकि वास्तव में बात कौन सी ठीक है यह तो हममें से कोई भी नहीं जानता पर न जानने पर भी वह अपने को जानकार समझे बैठा है। मैं जानता ही नहीं और अपने को जानकार समझता भी नहीं। फिर मै दूसरे आदमी के पास गया जो पहले से भी अधिक बुद्धिमान प्रसिद्ध था। यहाँ भी यही परिणाम हुआ, और मैंने इसे और इसके आस पास के लोगों को अपना शत्रु बना लिया। फिर तीसरे, फिर चौथे यों ही एक के बाद दूसरे के पास मैं जाता और परिणाम मे सब मेरे शत्रु होते जाते थे, जिससे मुझे बड़ी चिंता

और कुछ दु ख भी होता, पर मैं क्या करता ? ईश्वर की आज्ञा का मान्य तो सब के ऊपर करना होगा, क्योंकि जहाँ कहीं भी कोई बुद्धिमान सुनाई दे, उसके पास जा कर देववाणी की जाँच करना और उसका तात्पर्य्य समझना तो हो ही गा। अस्तु भाइयो ! मैं अपने सिर की कसम खाकर आप से सच कहता हूँ कि देवताओं की आज्ञा के अनुसार अपनी बुद्धिमानी जाँचने का यह नतीजा हुआ कि बहुत से लोग मेरे शत्रु हो गए और पता यह लगा कि जो अपनी बुद्धीमानी के लिये सब से अधिक प्रसिद्ध है, वही सब से अधिक निर्बुद्ध है, और जो लोग साधारण मनुष्य समझ कर नीची निगाह से देखे जाते हैं वे ही शिक्षक होने के अधिक उपयुक्त पात्र हैं। भाइयो। मैं आप से क्या कहूँ कि उक्त देववाणी की जाँच के लिये मुझे कितना घूमना पड़ा है। पहाड़ ऐसा परिश्रम कर के भी मैंने जाँच करना नहीं छोड़ा। यहाँ से वहाँ भटकते भटकते मुझे क्या क्या कष्ट उठाने पड़े सो मैं ही जानता हूँ। राजपुरुष, कवीश्वर, नाटककार, गायक, मै सभों के पास भटका इस इच्छा से कि कोई तो मुझ से अधिक बुद्धिमान निकलेगा। मैंने कवीश्वरों की कविता, जिस पर कि उन्होंने बड़े परिश्रम किए थे लेकर इस इच्छा से उनसे बात चीत की कि शायद इससे मै कुछ सीख सकूँगा। भाइयो, सच पूछिए तो मुझे कहते लज्जा आती है, पर कहूँगा अवश्य। बात यह है कि इन कवियों की अपेक्षा तो कोई राह चलता आदमी भी उनकी कविता के बारे मे अधिक बुद्धिमत्ता से बात चीत कर सकता है। इससे मुझे यह पता लगा है कि कुछ बुद्धि-

मानी के बल से नहीं केवल किसी तरह की स्वाभाविक शक्ति या दैवी आवेश में आ कर पीर पैगबर या बाणी कथन करने-वालो की तरह ये लोग कविता बनाया करते हैं, जो मनमानी कहते हैं और समझते कुछ नहीं और मजा यह है कि कविता बनाई, उस कविता का मर्म कुछ समझे नहीं और मैं कवि हूँ, इसलिये जगत् ब्रह्माड की सब बातें मेरे ही पेट में है— इस बात के घमड से उनके पैर जमीन पर पड़ते ही नहीं। पर वास्तव में और बातों में वे समान मूर्ख हैं। अस्तु मैं इन से भी विफलमनोरथ हो कर यही सोचता हुआ घर आया कि क्या राजकर्म्मचारी, क्या कवि दोनों ही से मैं अधिक समझदार हूँ।

अत को यह समझ कर मैं कारीगरों के पास गया कि कारीगरी या दस्तकारी के हुनर का तो लेश मात्र भी मुझे ज्ञान नहीं है और ये लोग तरह तरह की चीजें बनाते है। अस्तु यह बहुतसी उम्द उम्द बाते जानते हैं। चलो इनसे तो कुछ बात चीत करे। भाइयो ! यहा भी मैंने धोखा खाया। यह जरूर है कि बहुत सी ऐसी बातें वे जानते हैं जो मैं नहीं जानता और इस बारे में वे मुझसे अधिक बुद्धिमान अवश्य हैं, पर कवियों की तरह इनके सिर पर भी झूठे घमड का भूत सवार है।

सब कोई अपने को भारी से भारी मामले मे भी चतुर समझता है, केवल एक इसी कारण से कि वे अपनी कला में पूरे होशियार हैं, और उनकी इस गलती से उनकी असली बुद्धि पर परदा पड गया है। जो कुछ बुद्धि है भी उस पर भी जग चढ

गया है। अस्तु मैंने अपने मन से पूछा कि "अच्छा मै उनकी मूर्खता या बुद्धि कुछ भी लूँ या नहीं, दोनों लूँ या खुद जैसा हूँ, वैसा ही रहूँ"। मन ने जवाब दिया कि नहीं "जैसे हो वैसे ही रहना अच्छा है"

भाइयो, इस प्रकार के तर्क वितर्क से मैंने बहुतों को अपना कट्टर से कट्टर दुश्मन बना लिया और लोग मेरे नाम पर तरह तरह के कलक फैलाने लगे और कहने लगे कि 'मैं बुद्धिमान * आदमी हूँ।' राह चलते आदमी हमेशा यही विचार ले जाते हैं कि मैं अपने विचार का बुद्धिमान जरूर हूँ और दूसरे लोगों को मूढ बना देना ही मरा काम है, पर मेरे जो दोस्त है वे समझते हैं कि बुद्धिमान केवल देवता ही हैं, और यह जो देववाणी उन्होंने कही है, इससे उनका तात्पर्य यह है कि मनुष्यों की बुद्धि निहायत अदनी चीज है। या यों कहो कि कोई चीज ही नहीं है। इससे यह तात्पर्य नहीं है कि वे मुझे 'बुद्धिमान' बतलाते हों। उन्होंने केवल दृष्टात रूप से मेरा नाम ले कर लोगों को यह जतलाना चाहा कि देखो "तुम लोगों मे वही सब से अधिक बुद्धिमान कहलावेगा जो सुकरात की तरह जानता है कि वास्तव में उसकी अपनी बुद्धि मे कुछ सार नहीं है।" इसीलिये मैं अब तक देशी या विदेशी जो हो उस के पास जाना और उसकी जाँच करना नहीं छोडता, जैसा कि देवताओं की आज्ञा है और जब मुझे पता लगता है कि वह बुद्धिमान नहीं है तो मैं उसे बतला देता हूँ

* 'बुद्धिमान' से तात्पर्य प्थैसयासी 'प्रकृतिवादी दार्शनिकों' से लेते थे।

कि तुम 'बुद्धिमान' नहीं हो और इसी काम में मैं ऐसा उलझा रहता हूँ कि मुझे दम मारने की फुरसत नहीं, और न मैं अपने खास या पबलिक के कोई काम का भी ध्यान रख सकूँ। भगवान कि इस आज्ञा का पालन करने में मैं निहायत दरिद्री हो गया हूँ। सिवाय इसके जो युवक मेरे संग लगे फिरते हैं सब बड़े आदमियों के लड़के हैं, जिन्हें फुरसत बहुत है और लोगों पर जिरह के सवाल होते सुन कर जिन्हें बड़ा मजा आता है। कभी कभी वे आपस में मेरी नकल भी उतारा करते हैं और दूसरों पर भी जिरह के हाथ फेरते हैं। मेरी समझ में उन्हें भी बहुतेरे ऐसे मिल जाते हैं जो जानते तो कुछ नहीं पर अपने को सब से अधिक बुद्धिमान समझ बैठे हैं, और ये लोग जब प्रश्नों का जवाब न दे सकने पर मूर्ख साबित हो जाते हैं तो उन्हें इन युवकों पर बड़ा क्रोध आता है। क्रोध तो अपने ही पर आना चाहिए, सो नहीं उक्त युवकों ही पर और सबसे बढ़ कर मुझ पर उनके क्रोध की मात्रा दूनी हो जाती है। वे कहने लगते हैं कि सुकरात एक नष्ट आदमी है जो युवकों को बिगाड़ा करता है। यदि उनसे कोई पूछता कि "भाई 'सुकरात' करता क्या है? सिखाता क्या है?" तो उनसे इसका ठीक कुछ जवाब तो बन पड़ता नहीं। बस दार्शनिकों के विरुद्ध जो एक बँधी गत चली आती है वे उसे ही कह डालते हैं कि "सुकरात आकाश पाताल की बातों की खोज करता है। लोगों को सिखाता है कि देवताओं को मत मानो और बुरी से बुरी बातों को अच्छी जँचवा देता है" बस यहीं वे कह देते हैं। मैं

समझता हूँ कि वे यह बात मजूर करना नहीं चाहते कि वास्तव में वे कुछ जानते नहीं। इनकी पोल खुल गई है और इनकी मूर्खता सिद्ध हो गई है। वस ये लोग बहुत दिनों से मेरे विरुद्ध आप लोगों के कान भर रहे हैं क्योंकि ये लोग इर्षा और द्वेष से पूर्ण हो मुझ पर बडी कड़ी निगाह रखते हैं। बस इसी बुनियाद पर मेलीटस, आनाइटस और लाइकन ने मुझ पर जुर्म लगाए हैं। मेलीटस तो कवियों की तरफ से मुझसे नाराज है, अनीटस कारीगरों और राजपुरुषों की तरफ से और लाइकन व्याख्यानवालों की तरफ से मुझसे दु खी है। इसी लिये मैंने शुरू ही मे आप से कह दिया है कि वास्तव में मुझे आश्चर्य होगा यदि इस थोडे से समय मे जो मुझे अपने दोष-मोचन करने के लिये मिला है, वर्षों से जमी हुई आप लोगों के दिल पर की इस गर्द को मैं हटाने में समर्थ हो सकूँगा। भाइयो, सच जानिए मैंने आप लोगों से असली बात कही है, कुछ छिपाया नहीं है, छोटी बडी कोई बात भी छोडी नहीं है और बस एक इसी कारण से, सदा स्पष्ट और सत्यवादन से लोग मेरे शत्रु हो गए हैं। यह भी इस बात का प्रमाण है कि मैं सच ही बोलता हूँ, और मेरे विरुद्ध जो दोष लगाए गए हैं उनका यही सच कारण है। चाहे अभी या कभी आप जब चाहें जाँच देखे तो यही सबब निकलेगा।

पुराने फर्य्यादियों ने मुझ पर जो जुर्म लगाए हैं, उनकी सफाई के लिये मैंने जो कुछ कहा है वही काफी होगा। अब मैं दूसरे फर्य्यादी हमारे नवीन देशहितैषी (जैसा कि वे अपने

को कहते हैं।) मेलीटस, और अन्य नवीन फर्य्यादियों ने जो जुर्म मुझ पर लगाए हैं उनकी सफाई आरंभ करता हूँ। मान लीजिए ये लोग नए फर्य्यादी है और इनका फर्दजुर्म यों है कि 'सुकरात एक कुकर्मी मनुष्य है, जो युवकों को बिगाड़ता है, सारा शहर जिन देवताओं को मानता है वह उन्हे नहीं मानता, अपने मनमाने नए नए देवताओं को मानता है।" यही जुर्म है। अच्छा तो इस जुर्म की हर एक बात को अलग अलग ले कर जॉच कीजिए। प्रथम मेलीटस कहता है कि मैं युवकों को बिगाड़ कर अधर्म्म करता हूँ,—पर भाई एथेंसवासियो मैं नहीं, खुद मेलीटस ही अधर्म्म कर रहा है, क्योंकि लोगों को बिना समझे बूझे अदालत के सामने धर घसीटना वह दिल्लगी समझता है, और जिस बात पर कभी क्षण भर के लिये भी उसने सोचने का कष्ट नहीं उठाया है उस बात का यों ही झूठ मूठ वह अपने को सब से बड़ा पैरोकार जतलाता है। अच्छा तो अब आप मेरी इन बातों का प्रमाण लीजिए।

आइए जनाब मेलीटस! सामने आइए, और बतलाइए कि "क्या यह बात सत्य है कि आप यह उचित समझते हैं कि युवक लोग जहाँ तक होसके श्रेष्ठ हों"?

मेली०— बेशक।

सुक०—अच्छा, अब आप कह डालिए कि "वह कौन है जो इन युवकों को श्रेष्ठ बनाता है? जब आप इस बात के इतने पैरोकार हैं, तो यह जरूर जानते होंगे। आप इसीलिये जुर्म लगा कर मुझे अदालत के सामने लाए हैं कि आप

के बयान के मुताबिक मैं युवकों को बिगाड़नेवाला हूँ। अच्छा तो अब आप यहाँ न्यायाधीशों के सामने कह दीजिए "कि युवकों को सुधारनेवाला कौन है ? क्यों साहब, चुप क्यों हैं ? कहिए ? जब आप कुछ जवाब नहीं देते, तो मानना पड़ेगा कि आप के पास कोई जवाब है नहीं। क्या आप नहीं जानते कि ऐसा करना बड़ी बुरी बात है, बदनामी का सबब है ? क्या आप का चुप रहना इस बात का सबूत नहीं है कि आपने कभी इस बात पर क्षण भर भी सोचने की तकलीफ नहीं की है। आइए, बतलाइए जनाब, युवकों को श्रेष्ठ नागरिक (रईस) कौन बनाता है ?

मेली०—क़ानून।

सुक०—अजी साहब, मेरा यह प्रश्न नहीं है। वह आदमी कौन है ? कौन कानून जाननेवाला है, जो युवकों को सुधार देता है ?

मेली०—ये ही यहाँ के न्यायाधीश (जज) लोग।

सुक०—क्या कहते हो ? क्या ये लोग युवकों को शिक्षा देते और सुधारते हैं ?

मेली०—बेशक।

सुक०—सब के सब या इनमें से कुछ लोग।

मेली०—सब के सब।

सुक०—जय माया की ! वाह क्या अच्छी बात है ! उपकार करनेवालों की इतनी बहुतायत है ! अच्छा और यहाँ के श्रोतागण भी उन्हें सुधारते ही हैं न ?

मेली०—जरूर सुधारते हैं।
सुक०—और राजसभा के सभासदगण।
मेली०—हाँ वे भी।
सुक०—अच्छा तो, क्या साधारण सभासद सब युवकों को बिगाडते हैं, या वे भी युवकों को सुधारते हैं।
मेली०—वे भी युवकों को सुधारते हैं।
सुक०—तो तात्पर्य्य यह कि सिवाय मेरे और सारे एथेंसवासी युवकों के सुधारने में लगे हुए हैं, उनको बिगाडनेवाला एक मैं ही हूँ। क्या तुम्हारा यह मतलब है ?
मेली०—और नहीं तो क्या ? यही मतलब तो है ही !
सुक०—तब तो मैं बड़ा हतभागा ठहरा। अच्छा तो यह बतलाओ कि क्या घोड़ों के बारे में भी ऐसा ही होता है ? क्या एक आदमी उन्हें नुकसान पहुँचाता और बाक़ी सब लोग उन्हें सुधारते हैं, क्यों यह तो नहीं है न ? मामला ठीक इसके विपरीत है। केवल एक ही आदमी या कुछ आदमी—जो सवार या साईस हैं—उन्हें सुधार सकते हैं, और ज्याद आदमी जब घोड़ों को काम में लाते या जब उनका उनसे वास्ता पड़ता तो उनके विगड़ाने ही के कारण बनते हैं। क्यों मेलीटस ऐसा ही है न। घोडे या चाहे और कोई पशु सब की वात यही है न ? अवश्य है, चाहे तुम या आनाइटस हाँ कहो या न कहो। युवकों के बडे भाग्य कहना चाहिए जब कि केवल एक आदमी उनका बिगाडनेवाला और जमाना भर उनका सुधारनेवाला हो। पर मेलीटस, बात असल में यही है, कि तुमने कभी युवकों

के लिये कुछ सोचा नहीं है। यह तुम्हारी बातों ही से साबित हुआ जाता है। तुम्हारे कहने से बहुत साफ प्रगट हो रहा है कि जिस बात के लिये तुम मुझे फँसा रहे हो उसकी तुमने कभी भी कुछ परवाह नहीं की है।

अच्छा मेलीटस, यह तो बतलाओ, बुरे नगरवासी या भले रईसों के सग रहना अच्छा है। बतलाओ जवाब दो। मैं तुमसे कोई मुश्किल बात नहीं पूछ रहा हूँ। क्या बुरे नगरवासी अपने पड़ोसियों का नुकसान और भले रईस पड़ोसियों का उपकार नहीं करते ?

मेली०—जरूर करते हैं।

सुक०—क्या ऐसा भी कोई आदमी है जो अपने साथियों से भलाई के बदले बुराई चाहता हो ? जवाब दो, कानून के पाबद हो कर तुम्हें जवाब देना ही होगा। क्या कोई यह चाहता है कि लोग मेरे सग बुराई किया करें ?

मेली०—कभी नहीं।

सुक०—अच्छा तो तुम मुझ पर, युवकों को जान बूझ कर या अनजाने बिगाड़ने का इलजाम लगाते हो ?

मेली०—जानबूझ कर तुम युवकों को बिगाड़ते हो।

सुक०—क्या कहा ? जब कि तुम मुझसे इतने छोटे हो कर इतनी समझ रखते हो कि बुरे नगरवासी हरदम बुराई किया करते हैं और भले रईस भलाई करते हैं तो क्या मैं इतना बड़ा गदहा होऊँगा कि यह न समझूँगा कि यदि मैं अपने किसी

साथी को दुष्ट बनाऊँगा तो वह किसी न किसी तरह मुझे हानि जरूर पहुँचाएगा। यह सब जान कर भी तुम कहते हो कि जान बूझ कर मैं इतना भारी अपराध कर रहा हूँ। मैं तो क्या, कोई भी यहाँ, तुम्हारी ऐसी बात पर विश्वास नही कर करता। या तो मै युवकों को बिगाडता ही नहीं, और यदि ऐसा करता भी होऊँ तो यह काम मुझसे अनजाने में होता है। अस्तु, तुम दोनों ही तरह से झूठे ठहरते हो। और यदि मैं अनजाने मे इन्हे विगाडता हूँ, तो कानून तुमसे नही कहता कि ऐमे अपराध के लिये जिसमे कि मेरा कुछ हाथ नहीं है, तुम मुझको अभियुक्त करो। हाँ तुम चाहो तो मुझे अकेले मे ले जा कर भला बुरा कह सकते या समझा सकते हो, क्योंकि ज्योंही मुझे मालूम हो जाय कि मैं अनजाने मे एक बुरा काम कर रहा हूँ, तो मैं ऐसे काम से हाथ रोक सकता हूँ। सो तो तुमने किया नहीं, उल्टे मुझको अदालत के सामने ला खड़ा किया, जहाँ कानून लोगों को समझता बूझता नहीं वरन् दण्ड दिया करता है।

भाई एथेंसवासियो, सच तो यह है, जैसा कि मैं पहले से कहता आ रहा हूँ कि मेलीटस ने इन सब बातों पर कभी तनिक भी ध्यान नहीं दिया है। अच्छा तो फिर जनाब मेलीटस साहब ! आप यह बतलाइए कि मैं क्यों कर युवकों को बिगाड़ता हूँ, क्योंकि तुम्हारे फर्दजुर्म के मुताबिक मैं उन्हें नगर के देवताओं

पर से विश्वास हटवा कर, नए नए देवताओं पर विश्वास करना सिखाता हूँ। तुम्हारा यही तात्पर्य न है कि मैं इसी शिक्षा से युवकों को बिगाडता हूँ, क्यों यही है कि नहीं ?

मेली०—बेशक, मेरा यही तात्पर्य है।

सुक०—अच्छा तो अब उन देवताओं के विषय में जिनका हम जिकर कर रहे हैं, तुम जरा मुझे और यहाँ जजों को साफ तौर से समझा तो दो, क्योंकि मैं तुम्हारा तात्पर्य ठीक समझा नहीं। तुम क्या कहते हो कि मैं युवकों का गैर देवताओं पर विश्वास कराता हूँ, और नगर के देवताओं पर नहीं ? तुम क्या मुझे इन्हें अजनबी देव-ताओं पर विश्वास करवाने का अपराध लगाते हो ? यदि तुम्हारा यह तात्पर्य है तो मैं भी कुछ देवताओं पर विश्वास करनेवाला ठहरा, बिलकुल नास्तिक नहीं कहला सकता, या तुम यह कह सकते हो कि मैं बिलकुल किसी देवता पर विश्वास करता ही नहीं और युवकों को भी ऐसा ही सिखाता हूँ।

मेली०—मैं यह कहता हूँ कि तुम किसी देवता पर बिलकुल विश्वास करते ही नहीं।

सुक०—वाह ! वाह ! मेलीटस वाह ! तुमने तो मुझे भौचक्का कर दिया। यह तुम क्या कहते हो ? तुम क्या कहते हो कि और लोगों की तरह मैं चाँद सूरज को देवता नहीं मानता ?

मेली०—हाँ ! हाँ ! न्यायधीश महाशयो ! मैं कसम खा कर

कहता हूँ कि यह नहीं मानता, यह कहता है कि सूरज निरा पत्थर और चाँद मट्टी है।

सुक०—वाह भाई मेलीटस ! तुम क्या यहाँ अनक्सागोरस* पर मुकद्दमा चलाने आए हो? क्या यहा के न्यायाधीशों को इतना हेच और अपढ समझते हो कि ये लोग अनक्सागोरस के सिद्धातों से वाकिफ न होंगे। और युवक लोग मुझसे भला ये बातें सीखने क्यों आवेंगे जब कि एक सिक्का खर्च कर वे बात की बात में थीएटर † मे जाकर सब जान सकते है और मुझे हँसी मे उडा सकते हैं, पर तुम क्या वास्तव में ऐसा ही समझते हो कि मैं देवताओं को बिलकुल मानता ही नहीं?

मेली०—बेशक, ऐसा ही समझता हूँ, तुम पूरे नास्तिक हो।

सुक०—यह तो कोई भी नहीं मानता, और मैं यथार्थ कहता हूँ कि तुम भी मन में अपनी बातें मिथ्या समझते हो। हे एथेंसवासी भाइयो ! मुझे मेलीटस बडा घमडी और दुष्ट आदमी मालूम पडता है, और वह केवल अपनी जवानी के मद में मुझ पर अपराध लगा रहा है। इसकी अवस्था एक ऐसे आदमी की तरह है जो मुझसे परीक्षा के तौर पर ऐसी पहेली पूछ रहा हो जिसका

---

* सुकरात से पहले एक दार्शनिक हो गया है।

† अरिस्टोफेन नाम के एक कवि ने एक नाटक रच कर अनक्सागोरस के सिद्धातों की दिल्लगी उडाई है, जिसका तमाशा यूनानी लोग थीएटर में करते थे।

कोई जवाब न हो। तात्पर्य्य यह कि यह मन में कहता है कि "देखो बचा, सुकरात, तुम बडे बुद्धिमान बनते हो, देखो मैं हँसी मसखरी के तौर पर अपनी बात आप काटता हुआ भी, तुम्हें और यावत् सब श्रोताओं को उल्लू बना रहा हूँ कि नहीं ? क्योंकि वह अपने फर्द जुर्म में अपनी ही बात को आप काटता और कहता है कि 'सुकरात ऐसा दुष्ट आदमी है कि वह देवताओं पर विश्वास नहीं करता, पर देवताओं पर विश्वास करता है भी, पर यह बात कुछ है नहीं ?'" आप कहेंगे कि उसकी बातों का "तुम यह अर्थ कैसे लगाते हो ?" अच्छा सुनिए। हाँ जनाब मेलीटस साहब ! आइए मेरी बातों का जवाब दीजिए और भाई एथेंसवासियो आप लोग मेरी पहली विनती पर ध्यान रखें और मुझे बीच में टोक टाक न करें।

क्यों जी मेलीटस, कहो तो ऐसा भी कोई आदमी है जो मनुष्य सबंधी बातों का रहना मानता हो और मनुष्यों का रहना न मानता हो ? भाइयो ! आप लोग, बाधा न देकर अवश्य इससे इस प्रश्न का उत्तर दिलवाइए। क्या ऐसा भी कोई आदमी है जो अश्वविद्या पर विश्वास करता और अश्वों के होने का विश्वास नहीं करता ? अथवा बशी-वादन को मानता और बशी-वादक का होना नहीं मानाता ? नहीं, ऐसा नहीं है और हो भी नहीं सकता। तुम उत्तर न दो तो भी क्या हुआ, मैं डके की चोट यह न्यायाधीश और तुम से भी कहता हूँ

कि ऐसा हो नहीं सकता। पर मेरे दूसरे प्रश्न का उत्तर तो तुम्हें देना ही पड़ेगा। ऐसा भी कोई आदमी है जो दैवी (देवता सबधी) बातों पर विश्वास करता है और देवताओं के होने का विश्वास नहीं करता ?

मेली०—नहीं, ऐसा नहीं है।

सुक०—खैर गनीमत है कि न्यायाधीशों ने तुमसे इसका उत्तर निकलवाया तो सही। अच्छा, तो तुम कहते हो कि मैं दैवी बातों पर विश्वास करता हूँ–नए पुराने की बात नहीं—उन्हे मानता तो हूँ, और दूसरों को इनमे विश्वास करना सिखाता हूँ। चाहे नए, चाहे पुराने तुम्हारे कहे मुताबिक मैं किसी न किसी तरह के देवता को मानता अवश्य हूँ। यह तुम हलफ उठा कर जजों के सामने कह भी चुके हो। जब कि मैं दैवी बातों पर विश्वास करता हूँ तो परिणाम यही निकलेगा कि देवताओं को भी अवश्य मानता हूँ। क्यों, क्या ऐसा नहीं है ? ऐसा ही है। जब तुम जवाब नहीं देते, तो मानना पडेगा कि तुम मेरी बात मानते हो। अच्छा, तो क्या हम लोग यह नहीं मानते कि दैवी जीव या तो स्वयमेव देवता हैं या देवताओं की सतानें हैं। क्यों यह मानते हो कि नहीं ?

मेली०—मानता हूँ।

सुक०—ठीक है, तो तुम यह मानते हो कि मैं दैवी बातों पर विश्वास करता हूँ। अच्छा तो जब दैवी बातें हैं तो देवता अवश्य हैं। दूसरे शब्दों मे तुम्हारे ही कहने के मुताबिक मैं देवताओं को मानता हूँ, फिर तुम्हारा यह कहना कि

देवताओं को नहीं मानता क्या सिधी साधी बात को पेंचीली बना कर मेरी मसखरी उडाना और मुझे धोखा देना नहीं है ? यदि तुम यह कहो कि यह छोटे देव देवी, बडे देवताओं के जारज या दोगले सतान हैं (चाहे दूसरी माता से या दासियों से हों) जैसा कि कहा जाता है, तो मैं पूछता हूँ कि भला ऐसा भी कोई मनुष्य होगा जो देवताओं के सतानों का होना माने और देवताओं का होना न माने ? क्या कोई यह मानेगा कि गदहे या घोडे के बच्चे तो होते हैं पर गदहे या घोडे नहीं होते ? मुझ पर ऐसा अद्भुत अपराध लगाने से तुम्हारा अभिप्राय क्या है ? तुम मेरी विद्या जाँचना चाहते हो या तुम्हें मुझ पर लगाने लायक और कोई अपराध मिला ही नहीं ? तुम चाहे लाख सिर मारो पर तुम्हारी यह बात कभी कोई अदनी से अदनी समझ रखनेवाला मनुष्य भी नहीं मानेगा कि दैवी बातों पर विश्वास रखना देवताओं पर विश्वास रखना नहीं है ।

पर भाई एथेंसवासियो ! बात असल में यह है कि मेलीटस ने मुझ पर जो अपराध लगाया है उससे अपने को दोषमुक्त करने के लिये मैंने जो कुछ कहा वही बस है। मेरी सचाई का प्रमाण मैंने यथेष्ट दे दिया । पर मैं फिर से आप लोगों को बतलाए देता हूँ कि बहुत से लोग मुझसे नाराज हैं और मेरे सैकडों शत्रु हो गए हैं और शायद यदि मैं अपराधी ठहराया गया तो इसी कारण से ठहराया जाऊँगा । आनाइटस,

छोड देते हैं; पर इस शर्त पर कि तुम इस प्रकार के तर्क वितर्क और जाँच पडताल से बाज आओ, और यदि ऐसी हरकत करते हुए फिर कहीं तुम पाए जाओगे तो निश्चय तुम्हें प्राणदण्ड मिलेगा, यदि इन शर्तों पर आप मुझे रिहाई देना चाहेंगे या चाहें तो मेरा जवाब यह है कि हे ! एथेंसवासी भाइयो, मैं आपलोगों को बड़ी इज्जत और प्यार की निगाह से देखता हूँ, पर परमात्मा की आज्ञा टाल कर आपकी आज्ञा नहीं मान सकता, और जब तक मेरे दम में दम है मैं कभी भी दार्शनिक तर्क वितर्क करना नहीं छोड़ूँगा और आप लोगों से जिरह करके सचाई ढूँढ निकालने से मुँह न मोड़ूँगा और जो मिलेगा उसके आगे इस सचाई को प्रगट करने से बाज नहीं आऊँगा और जैसी कि मेरी आदत है जो मिलेगा उससे कहता रहूँगा कि 'मित्रवर, आप एथेंस वासी हैं, जो विद्या और बुद्धि के लिये भुवन विख्यात हैं, अस्तु आपको क्या केवल धन दौलत, मान इज्जत या नाम के लिये कुल जिंदगी गँवानी उचित है। क्या विद्या बुद्धि, सत्य असत्य या आत्मिक उन्नति का ध्यान आपलोगों को करना बिलकुल उचित नहीं है।' यदि मेरी बात काट कर वह कहेगा कि 'नहीं मैं इन बातों का भी ध्यान रखता हूँ' तो मैं उसे यों छोड़ूँगा नहीं। उससे जवाब सवाल करूँगा, उसकी जाँच पडताल करूँगा और यदि देखूँगा कि वास्तव में उसमें धर्म्म का अंश नहीं है और वह अपने को धर्म्मात्मा समझता है तो उसे

ऐसी परमोत्तम चीज की बेकदरी करने के लिये आवश्यक खरी और चोखी सुनाऊँगा।

छोटे बड़े, देशी विदेशी किसी को भी मैं न छोड़ूँगा। जो मिलेगा उससे छेड़ कर ये बातें करूंगा, पर विशेष कर अपने स्वदेशी भाइयों से तो अवश्य कहूँगा क्योंकि वे मेरे सबसे अधिक नजदीकी हैं। मुझे परमात्मा की ओर से ऐसी आज्ञा है। आप अपना अहोभाग्य समझिए की भगवान ने मुझे यों आपकी सेवा के लिये सन्नद्ध कर दिया, क्योंकि इधर उधर घूमते हुए आप लोगों के पास जा जा कर आपकी आत्मा जिसमें पूर्णता को प्राप्त हो, आप लोगो को आत्मज्ञान हो, यही सुझाना मेरा मुख्य धर्म्म रहा है। मैं निरतर आप लोगों को यही समझाता रहा हूँ कि आत्मा के आगे शरीर की, धन दौलत की कुछ भी परवाह मत कीजिए, क्योंकि धर्म्म, धन और दौलत से नहीं होता। धर्म्म से धन, मान, शारीरिक सुख ये सब प्राप्त होते हैं। क्या भीतर क्या बाहर जितनी अच्छी चीजें मनुष्य की हितकारिणी हैं सब धर्म्म ही से प्राप्त होती हैं। भाइयो! यही मेरी शिक्षा है। यदि इस शिक्षा से मैं युवकों को विगाड़ता हूँ तो वास्तव में बड़ी हानि पहुँचाता हूँ, इसमें संदेह नहीं। शायद कोई यह कहे कि नहीं यह नहीं, मैं और ही कुछ सिखाता हूँ, तो वह सरासर झूठा है। अस्तु भाई एथेंसवासियो सुनिए, चाहे आप आनाइटस की बातें मानें या न मानें, मुझे चाहे छोड़ें या दंड दें मैं अपने जीवन का उद्देश्य

नहीं हूँ और न कभी बदलूगा। एक दफ' क्यों, चाहे सौ दफ. भी इसके लिये मुझे मरना पड़े तो भी अपनी प्रतिज्ञा से एक तिल भी न डिगूँगा।

आप मुझे रोके नहीं। सुनते जाइए। जैसे पहले विनय कर चुका हूँ, उस प्रार्थना को याद रखिए। सुनते जाने से आपके लिये भला ही है। अब मैं आपसे कुछ ऐसी बात कहूँगा जिस से आपका जी चाहेगा कि चिल्ला उठें, पर नहीं आप ऐसा कीजिएगा मत। मै जो हूँ सो आपको बतला ही चुका हूँ, इस अवस्था मे यदि आप मुझे मार ही डालेंगे तो ठीक जानिए कि मुझ से अधिक हानि आप ही की होगी। मेलीटस और आनाइटस की क्या मजाल जो मेरा कुछ कर सके, यह सर्वथा असभव है, क्योंकि मुझे पूरा विश्वास है कि भगवान कभी भी एक भले आदमी को बुरे से कष्ट पहुँचने नहीं देगा। भले ही वे लोग मुझे मार डाले, देश निकाला दे दें या मुझको अपने सामाजिक अधिकारों से रहित कर दे, क्योंकि ये लोग इन्हीं बातों को सब से अधिक बुराई समझते हैं, पर नहीं मैं ऐसा नहीं समझता। मैं तो यह मानता हूँ कि वे जैसा काम इस समय कर रहे हैं उससे बढ कर और कोई दूसरी बुराई हो ही नहीं सकती अर्थात् एक मनुष्य को अन्याय रूप मे प्राण दड दिलवा देना बेकसूर सजा दिलवाना सब से बुरा है। अस्तु भाई एथेंसवासियो, मैं अपने बचाव के लिये हरगिज बहस नहीं कर रहा हूँ जैसा कि आप समझते होंगे, मैं केवल आपको

यह बतला रहा हूँ कि परमात्मा के अपराधी मत बनिए। उसने मुझे आपकी सेवा के अर्थ दान किया है। मुझे मार कर इस दान का अपमान मत कीजिए। मुझे यदि आप मार डालेंगे तो निश्चय जानिए फिर मेरे ऐसा दूसरा आदमी आपको मिलने का नहीं. मानो आपकी नगरी एक बडा उम्दा घोड़ा है जो अपने कद के कारण कुछ सुस्त है, उसे काट कर जगा देने के लिये गोया एक डॉस की तरह परमात्मा ने मुझे आप लोगों में भेजा है, क्योंकि ठीक डॉस की तरह मैं जब मौका मिला तभी आप लोगों के बदन पर बैठ कर आप लोगों को चौंका देता हूँ, आपसे जबर्दस्ती तर्क कर के असली बातें कहलवाता, और आप में से प्रत्येक का तिरस्कार किया करता हूँ। मेरे बदले मेरे ऐसा दूसरा मनुष्य आप को मिलना कठिन है, अस्तु आप यदि मेरी बात मानें तो मुझे न मारें, आप की ठीक वही हालत है जैसे कि जब सोते को सहसा कोई जगाता है तो उसे बड़ा बुरा मालूम पडता है, इसलिये यदि आप आनाइटस की बात मानेंगे तो मुझे एकही बार में मार कर निश्चिन्त हो कर जन्म भर सो सकते हैं, जब तक शायद परमात्मा कृपा कर आप को जगाने के लिये दूसरा कोई मनुष्य न भेजे। आप लोग निश्चय जानिए कि परमात्मा ही ने मुझे आप लोगों में भेजा है, क्योंकि केवल एक शौक वश ऐसा नहीं हो सकता कि मैं अपना खुद का सब सुख चैन और काम काज छोड कर हान सह कर आप की भलाई के लिये

जीतोड परिश्रम किया करूँ और बिना बुलाए सब के पास जा जा कर बाप या भाई की तरह धर्म्म पर ध्यान रखने के लिये आप लोगों को समझाया करूँ। आखिर इसका कुछ न कुछ कारण तो अवश्य है, क्या मुझे इससे कोई निज का लाभ पहुँचा है ? या इसके लिये मुझे किसी ने कभी कुछ टके दिए है ? यह तो आप भी जानते है कि मुझ पर अपराध लगानेवालो ने वेहया होकर सब कुछ मेरे विरुद्ध कहा है पर यह साहस किसी का भी नहीं हुआ कि वह मुझे किसी से कुछ रुपया वसूल करने या माँगने का दोष लगा सके। लाख सिर मारने पर भी वे ऐसा कोई प्रमाण उपस्थित नहीं कर सकते। अधिक क्या कहूँ, मेरी दरिद्रता ही मेरी सचाई का गवाह है।

शायद आप लोगों को यह कुछ अजीब बात मालूम पडती हो कि यों तो मैं सब के पास जा जा कर तर्क बितर्क किया करता हूँ पर पचायत में न तो कभी आता और न कुछ बोलता हूँ। इसका कारण क्या है ? इसका कारण एक दफ नहीं कई दफ कहते हुए आप लोगों ने मुझे सुना होगा। बात यह है कि ईश्वर की तरफ से (वही ईश्वर जिस पर मेलीटस ने फर्द जुर्म में खिल्ली उडाई है) मुझे एक तरह की आवाज आती है। बचपन से यह आवाज सदा मेरे साथ रही और जहाँ जब कोई ऐसा काम मैं करने लगा, जो मुझे करना उचित नहीं था तो इस आवाज ने मुझे रोक दिया। और जो किसी काम को करते

समय यह आवाज नहीं आती तो उसे मैं बेखटके करता हूँ। इस आवाज ने मुझे पंचायत से, राज्यकार्य्य के बखेड़ों से अलग रहने के लिये कहा और कहा तो अच्छा ही किया, क्योंकि मैं ठीक कहता हूँ कि यदि राजकार्य्य में मैं टाँग अड़ाता तो अब तक कब का मेरा सिर धड़ से अलग हो गया होता। बिना किसी की कुछ भलाई किए, बिना किसी की कुछ सेवा किए ही मुझे यह शरीर कब का छोड़ देना पड़ता। भाइयो! मैं सत्य कहता हूँ, आप रंज न हों। ऐसा कौन मनुष्य है जो राज-सभा की बुराई और नियमविरुद्ध बातों के विरुद्ध, सर्वसाधारण मनुष्यों की इच्छा, मनसा और अभिप्राय के विरुद्ध आवाज उठावे और उसकी जान बची रह जाय। यदि उसे थोड़े दिन के लिये भी अपनी जान बचानी है तो उसे अन्याय तथा अधर्म के विरुद्ध खुले तौर पर आवाज न उठा कर निज के तौर पर काम करना चाहिए। मैं आप से यह मुकालते की बात नहीं कहता, जो कुछ कहता हूँ सबका पक्का प्रमाण दूँगा, केवल बातों ही का नहीं, काम का सबूत दे के साबित करूँगा। अच्छा तो सुन लीजिए, आप को भी मालूम हो जाय कि मुझे क्या हो गया है जिसके कारण कोई भी मौत से भय दिखा कर मुझ से अधर्म नहीं करवा सकता, और अपनी बात छोड़ने की अपेक्षा मैं फौरन मरने के लिये तैयार हूँ। शायद मैं जो बात आप से कहा चाहता हूँ वह अदालत में एक साधारण बात समझी जाती हो, पर बात वास्तव में है बिल-

कुल सच। राजसभा मे आज तक यदि कोई जगह मैंने पाई है तो वह साधारण सभासद की है। अरगिनूसाइ के युद्ध के बाद दस सेनापतियों ने इकट्ठे हो कर अपनी सेना की रक्षा नहीं की। इस अपराध पर आप लोगो ने उन पर जुर्म लगा एक साथ अभियोग चलाना चाहा था यह बात आप लोगों को भी पीछे से कानून के विरुद्ध मालूम हुई थी। उस समय मेरी ही जातिवाले एंटीउकिस, सब सभापति थे। उन सब प्रधानों में मे केवल एक अकेले मैंने ही आप लोगों की नियम विरुद्ध कार्रवाई का विरोध किया और सब के विरुद्ध अपनी राय दी थी। साधारण सभासद सब मुझे गिरफ्तार करने और पदच्युत करने को तैयार हो गए, आप लोगों ने भी झुला कर बकना झकना शुरू किया और मुझे सब की राय में राय देने के लिये बडा जोर दिया। पर मैंने सोचा कि अन्याय और अधर्म्म की बात मे आप लोगो का पक्ष लेने की अपेक्षा मौत या कैदखाने के खतरे मे जाना अच्छा है। यह प्रजातत्र राज्य के नाश-होने के पहले की बात है। जब राज्यतत्र का जमाना आया तो तीस की मडली ने अन्य चार मनुष्यों के साथ मुझ को भी राजसभा भवन में बुला भेजा और सलामी से लीयोन नामक एक व्यक्ति को मार डालने के लिये ले आने की आज्ञा दी। उन्हें तो ऐसी ऐसी आज्ञाएँ जारी करने की आदत पड गई थी, जिसमे जहाँ तक हो सके अधिक लोग उनके किए हुए अपराधो में शामिल हो सकें यही उन-

की मनसा थी, पर उस मौके पर भी मैंने केवल बातों से नहीं, वरन् काम से, प्रत्यक्ष दिखा दिया कि मैं मृत्यु से तृण बराबर भी नहीं डरता, पर हाँ मनुष्य या ईश्वर के कानून के विरुद्ध कोई काम करने से अवश्य बहुत डरता हूँ। वह गवर्मेंट अपना सब कुछ प्रताप दिखा कर मुझे अधर्म करने के लिये डरा न सकी और जब हम लोग राजसभा-भवन से बाहर निकले तो मेरे अन्य चारो साथी लीयोन को लिवा लाने के लिये सलामी की ओर चले गए और मैं घर चला आया, और यदि उसके थोड़े ही दिनों बाद बहुत जल्दी उस मडली के शासन का अत न हो गया होता तो बेशक मुझे अपनी करतूत के लिये प्राणो से हाथ धोना पडता। आप में से बहुत से लोग इस बात की शाक्षी भी हैं।

अब आप ही बतलाएँ कि यदि मैं पबलिक मामलों मे दखल दिया करता और एक धार्मिक मनुष्य की तरह हरदम धर्म का पक्ष लेना अपना सर्वोपरि कर्त्तव्य समझता तो क्या अब तक मेरी जान बची रहती ? कदापि नहीं, मैं चाहे और कोई भी क्यों न होता मुझे अवश्य मौत के दरवाजे जाना पड़ता। पर अपनी जिंदगी भर मे जब कभी मुझे पबलिक या प्राइवेट किसी मामले में शामिल होने का मौका पडा है तो आप लोगों ने भी देखा ही होगा कि धर्म अधर्म के विषय में किसी मनुष्य से मैंने रत्तीभर भी रियायत नहीं की है— किसी से भी नहीं–यहाँ तक कि जिन्हें मेरे अभियोक्ता

झूठमूठ मेरे शिष्य वतलाते हैं, उनसे भी नहीं, क्योंकि बात तो असल में यह है कि मैं कभी किसी का गुरु बना ही नहीं, पर हाँ जब मैं अपने कर्त्तव्य मे लगा रहता था, उस समय जवान या बूढा चाहे जो हो मेरी बात अनायास सुन सकता था। इसके लिये कुछ फीस नहीं लगती थी।

मैं तो गरीब अमीर सभी से प्रश्नोत्तर करने को तैयार हूँ और यदि कोई मेरी बातों का जवाब देकर पुन उस विषय पर मेरे विचार सुनना चाहे तो उसे कोई रोक-टोक नहीं है और इसी कारण से मैं, इन मनुष्यों को भला या बुरा बना देता हूँ। ऐसा अभियोग मुझ पर लगाना क्यों कर उचित हो सकता है ? क्योंकि न तो मैने कभी किसी को कुछ सिखाया और न मैं कुछ सिखाने का दावा करता हूँ। ऐसी हालत मे यदि कोई यह हामी भरे कि उसने अकेले मे मुझ से कोई ऐसी बात सुनी या सीख ली है जो सब लोगों ने कभी नहीं सुनी है तो वह सरासर झूठा है।

फिर क्या कारण है कि ये लोग मेरी सगत में खुशी से अपना बहुतसा समय गवाँते हैं ? मैं तो आप से यह कह ही चुका हूँ। मैंने आप से यह बिलकुल सच ही कहा है, कि ये लोग जब ऐसे लोगों पर जिरह के सवाल होते सुनते हैं जो मूर्ख होने पर भी अपने को समझदार समझे बैठे हैं, तो इन्हें बडा मजा आता है, क्योंकि इस विषय की चर्चा के सुनने में वास्तव में एक

विचित्र ही आनद आता है । कोई मूर्ख जब जिरह के सवालों से अपनी मूर्खता आप ही प्रकट कर रहा हो और साथ ही अपने को बुद्धिमान् भी समझ रहा हो तो उसकी उस समय की बातें सुन कर श्रोताओं को बडा आनद आता है, इसमें कोई सदेह नहीं। इसके सिवाय मैं यह भी कहे देता हूँ कि लोगों की समीक्षा करने के लिये मुझे एक दैवी आदेश है। यह आदेश मुझे स्वप्न में दैवाज्ञा द्वारा तथा अन्य द्वार से प्राप्त हुआ है, जिन द्वारों से मनुष्यों को दैवी आज्ञाएँ प्राप्त हुआ करती हैं। वास्तव मे सही बात यह है, यदि सही न होती तो सहज ही खडित हो जाती, क्योंकि यदि वास्तव मे यह बात होती कि मैं युवकों को बिगाडनेवाला होता तो बडे होने पर मुझ को अपना बिगाडनेवाला समझ कर, उनमें से कुछ लोग अवश्य मुझ पर अभियोग लाते और यों अपना बदला चुकाते। यदि सकोचवश वे लोग ऐसा करने से हिचकते तो उनके बाप भाई रिश्ते नातेवाले मेरी बुराई को याद कर कोई तो अवश्य ही मुझसे बदला लेने के लिये खडा होता। देखिए इनमें से कितने महाशय यहाँ उपस्थित भी हैं। वह देखिए मेरी ही उम्र और मेरी ही जाति का क्रटोबोला का पिता क्रटो मौजूद है, अश्विनी का पिता सप्तेश जाति का लाइसेनिया बैठा है, एपी· जेनीस का पिता शीफीयाई जाति का अतिफोन भी मौजूद है। इनके अतिरिक्त ऐसे भी बहुत से लोग हैं जिनके भाइयों ने मेरी सगत में अपना बहुत सा समय

बिताया है। देखिए थीयोजोटीडी का पुत्र और थीयोडोटो का भाई निकोसत्राता मौजूद है। थीयोडोटो मर गया है, वह क्यों चुप है। थीडोडोटो तो अब उसे मना करने के लिये आने ही नहीं लगा, दीमोदोको का पुत्र और थीगी का भाई बैठा है, अरस्तु का पुत्र और प्लेटो का भाई आदिमाती मौजूद है, अनिस्तूदोरो का भ्राता अतुदोरो भी यहाँ मौजूद हैं। इनके सिवाय और भी बहुतेरों का नाम मैं आपको गिना सकता हूँ। उन्हें अपनी स्पीच देते समय मिलीटस को गवाही में जरूर बुलाना चाहिए था, कोई हर्ज नहीं यदि वह उस समय इनकी साक्षी दिलवाना भूल गया हो तो अब सही—मैं चुपचाप खड़ा रहूँगा, तबतक जबान भी नहीं हिलाऊँगा—वह आवे और बतलावे कि उसके ऐसे कोई गवाह हैं? गवाह देना तो दूर रहा आप देखेंगे कि ये सब लोग उलटे मेरी ही बात को पुष्ट करने के लिये (जैसा कि मिलीटस और आनाइटस मुझे कहते हैं) तैयार हैं। अच्छा जाने दीजिए, जो लोग मेरे बिगाड़ने से बिगड़ चुके हैं, वे मेरी हाँ में हाँ मिलावेंगे ऐसा आप कह सकते हैं, पर यह तो बतलाइए क्या कारण है कि उनके नाते रिश्तेवाले भाई बधु ऐसा करने के लिये अग्रसर नहीं होते? महाशयो, कारण सिवा इसके कुछ नहीं है कि वे मुझे सत्य और न्याय का तरफदार और मिलीटस इत्यादि को सरासर मिथ्यावादी जानते हैं।

अस्तु, मित्रो! अब और अधिक मैं क्या कहूँ, इसी

प्रकार की और भी सब बातें होंगी, जो कि अबतक अपने बचाव के लिये मैंने कही हैं। शायद आप में से यहाँ कोई ऐसा हो जिसे यह याद कर लज्जा आती हो कि इस अभियोग से भी एक साधारण अभियोग मे वह किस प्रकार जजों के हाथ पैर जोड कर छुटकारा पाने के लिये गिडगिडाया था और आप लोगों के दिल को मुलायम करने के लिये अपने नाते रिश्तेदार बधु बाधव और छोटे मोटे बच्चों तक को अदालत के सामने ले आया था, और यह देख कर उसकी अक्ल चकरा रही होगी कि सब से भारी आपत्ति में—उसकी समझ के अनुसार—फँसे रहने पर भी, मैंने यह सब कुछ भी नहीं किया। शायद यह बात लक्ष्य कर उन महाशय का दिल मेरे प्रति कठोर हो जाय, सभव है कि वे क्रोध से भर जायँ और मेरे विरुद्ध सम्मति (वोट) दे डालें। यदि आप मे से कोई महाशय ऐसे हों—मैं नहीं समझता कि कोई होंगे—पर शायद कोई हों, तो उनसे मेरा यह कहना युक्तिविरुद्ध न होगा, यदि मैं उनसे कहूँ कि—" मित्रवर मेरे भी नाते रिश्ते, सगे सबधी, बालबचे सब ही हैं, क्योंकि मैं भी माता के गर्भ ही से पैदा हुआ हूँ, कुछ आकाश से नहीं टूट पड़ा—सो भाई एथेंस वासियो ! मेरे भी सगे सबधी हैं, और तीन लड़के भी हैं, एक उनमें से कुछ बडा और दो बच्चे हैं, पर मैं उनमें से किसी को भी यहाँ ला कर आप की दया का उद्रेक करा अपने छुटकारे का यत्न नहीं करूँगा। "

क्यों ऐसा नहीं करता ? भाई साहबो ! आप यह न समझें कि मैं घमंड से ऐसा कर रहा हूँ या आप को हलका करने की इच्छा से ऐसा करता हूँ,—मुझ में मृत्यु के मुख में जाने की हिम्मत है या नहीं यह रही दूसरी बात—पर महाशयो, अपने सम्मान के लिये, आप की महा नगरी और आप के नाम के लिये, इस उम्र मे उस प्रकार का कोई काम करना मैं उचित नहीं समझता। सच चाहे झूठ, जो हो, लोगों को यह विश्वास तो अवश्य हो गया है कि सुकरात अन्य सब लोगों से कुछ विलक्षण ही है। इसलिये यह बड़ी लज्जा की बात होगी यदि आप मे से यहाँ कोई महाशय जो विद्या, बुद्धि, शूरता या और किसी गुण के लिये विख्यात हैं, उक्त प्रकार की मामूली हेय कार्रवाई करे। मैने प्राय देखा है कि अच्छे अच्छे विख्यात सज्जन भी अपने अभियोग के समय तरह तरह के विचित्र काम करते हैं, मानो मृत्यु से बढ कर और कोई भयानक चीज है ही नहीं, और यदि वे उस समय बच गए तो फिर सदा जीते रहेंगे। ऐसे मनुष्य इस महा नगरी की बदनामी के कारण हैं, क्योंकि यदि कोई अजनबी देखे तो यही समझे कि बड़े बड़े योग्य एथेंसवासी जो अपने भाइयों द्वारा न्यायाधीश, राज-सभासद तथा अन्य उच्च राजकर्म में नियुक्त किए जाते हैं, एक औरत से भी कम हिम्मत रखते हैं। भाई, एथेंसवासियो ! आप में से जिनका कुछ भी नाम है, उन्हें यह सब काम नहीं करना चाहिए और न हमें

करने देना चाहिए, वर अपने आचरण द्वारा आप को प्रकट कर देना चाहिए कि जो लोग ऐसी दया उपजाने वाली नाट्यकला कर नगर को कलंकित करते हैं उनके प्रति चुप रहनेवालों की अपेक्षा आप अधिक कठोरता का वर्ताव करेंगे।

अच्छा, नेकनामी और बदनामी की बात जाने दीजिए। यों भी मैं यह बात उचित और धर्म्मानुमोदित नहीं समझता कि दंड से बचने के लिये न्यायाधीशों के हाथ पैर जोड़े जाँय ? उचित तो यह है कि युक्ति से उनके मन का समाधान कर दिया जाय। सभी बातें उनके सामने पेश कर दी जाँय जिसमें वे सारे मामले को यथोपयुक्त न्यायतुला पर तौल सकें। न्यायाधीश यहाँ अपने दोस्तों से दोस्ती अदा करने के लिये नहीं बैठे हैं, न्याय करने के लिये हैं, और वे लोग इस बात की शपथ खा चुके हैं कि यदि चाहेंगे तो किसी पर रिआयत नहीं करेंगे, सब बातें और सब मामले कानून के मुताबिक फैसला करेंगे, फिर क्या यह उचित होगा कि हम लोग आपको शपथ भंग करने के लिये ललचाएँ और आप भी क्यों हमारी बात मानें ? क्योंकि ऐसा करना दोनों के लिये अधर्म्म होगा। इसलिये भाइयो, आप लोग मुझ से ऐसी बातें करने की आशा न करें क्योंकि इन बातों को मैं अनुचित अन्याय्य और अधर्म्म समझता हूँ, और फिर आज इस समय मैं ऐसा करूँ जब कि मिलीटस मुझ पर अधर्म्मी ही होने का अपराध लगा रहा है !

क्योंकि यदि इन कार्रवाइयों से मैं सफल हो गया और हाथ पैर जोड कर, गिडगिडा कर आपकी शपथ भग करवा सका तो भाइयो, यह तो मैं आपको साफ साफ सिखलानेवाला ठहर जाऊँगा कि देवी देवता कोई हैं नहीं, और अपनी रक्षा के बदले उलटे नास्तिकता का अपराध मेरे गले बँध जायगा। पर भाई साहबो यह सत्य से परे है। मैं देवी देवताओं को वैसा ही मानता हूँ जैसा कि कोई भी मेरे अभियोक्ता मानते हैं। और अब मैं आपके और न्यायकर्ता भगवान् के हाथ अपना मामला सौंपता हूँ जिसमें आप लोग अपने और मेरे लिये जैसा उत्तम समझें फैसला कर दें।

(दो सौ बीस वोट उसके पक्ष और २८१ वोट विपक्ष में आए, अस्तु ६१ अधिक सम्मति से वह अपराधी ठहराया गया)

भाई एथेंसवासियो ! आपके फैसले से मैं कुछ बुरा नहीं मानता हूँ। इसमे कइ कारण हैं। मुझे तो बराबर से यह खटका था कि आप मुझे अपराधी ठहरावेंगे, इसलिये इस पर इतना अश्चर्य्य नहीं हुआ जितना वोटों की गिनती पर हो रहा है। मुझे कदापि आशा नहीं थी कि इतने भी लोग मेरी तरफ से वोट देंगे, पर अब यह मालूम हो गया कि केवल तीस भोट और मेरे पक्ष में होते तो मैं बच जाता। अस्तु जो हो, मैं तो यही समझता हूँ कि मिलीटस मेरा कुछ नहीं कर सका, केवल यही नहीं, यदि आनाइटस और लाइकोन ये दोनों भी

मुझ पर अपराध लगाने के लिये अग्रसर न हुए होते तो उसे रुपये में तीन आने वोट भी प्राप्त न होते और एक सहस्र दरहिम * का जुर्माना देना पडता।

खैर, तो वह मेरे लिये मृत्यु दड ठहराता है। खैर, यह भी सही। अब इसके बदले में मैं अपने लिये और कौन से दड का प्रस्ताव करूँ? मेरे योग्य कौन सा दड है? चुपचाप न बैठ कर आराम करना छोडने की ठान कर मैंने जो अपनी जिंदगी बिता दी, उसके लिये मैं कौन से दड का प्रस्ताव करूँ? मैंने किसी भी सासारिक विषय से नाता नहीं जोडा। अन्य लोगों की तरह धन दौलत, नाते रिश्तेदारी, नाम, वैभव, व्याख्यानबाजी, बडे बडे फौजी और राजकर्म्म के ओहदे, 'नाच रग, खेल कूद—यहाँ एथेंस नगरी में सबही कुछ है,—पर मैंने सोचा कि इन बातों में जी लगाने के लिये प्राण धारण करना कोई बुद्धिमानी नहीं है। इसलिये मैं इस रास्ते गया ही नहीं, जहाँ जाने से न तो आपको और न अपने को मैं कुछ फायदा पहुँचा सकता। इसके बदले मैं अलग अलग आपमें से हर एक के पास गया। किसलिये? आपका सब से बडा उपकार करने के लिये—आपको यह समझाने के लिये कि "पहले अपने

* ऐसा कानून था कि जो अभियोक्ता जजों के पाँचवे भाग की सम्मति प्राप्त न कर सकता उसे एक हजार दरहिम जुर्माना देना पडता था तथा और भी कई तरह का लांछन भोगना पडता था।

जिसे मैं निश्चित रूप से बुरा जानता हू ? क्या मैं कैद-खाने में जाने की इच्छा प्रगट करू ? क्यों किस लिये ? कौन ऐसी आफत आई है जो मै निर्दयी जेलरों के अधीन अपनी शेष आयू खोऊँ ? नहीं ऐसा नहीं हो सकता। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि यह सब मैं कुछ भी नहीं करूँगा। मुझे जेलखाने ही में सडना पडेगा, क्योंकि जुर्माना देने के लिये मेरे पास रुपया नहीं है। क्या मैं देशनिकाले के दड का प्रस्ताव करू ? शायद आप लोग इसमे राजी भी हो सकते हैं, पर सोचने की बात है कि अपनी जान को प्यारा समझ कर यदि मै यहाँ से अन्यत्र चला जाऊँ तो बाहर अन्य देशी लोग क्या मुझे जीता छोडेंगे ? क्योंकि जब आप मेरे स्वदेशी भाई मुझसे ऐसे चिढ गए है कि मै आपको भारी पड रहा हू तो विदेश में तो मेरे लिये क्षण भर भी टिकना कठिन होगा। यह तो होने का नहीं। दुर्दशा की पराकाष्ठा हो जायगी। इस नगर से उस नगर, वहाँ से अन्यत्र यों ही सब लोगों से निर्वासित हो होकर मुझे मारे मारे फिरना पडेगा। जान बचाने का खूब मजा आता रहेगा। क्योंकि मुझे पूरा विश्वास है कि जहाँ मै जाऊँगा, नई उम्र के लोग मेरी बात अवश्य ही कान लगा कर सुनेंगे, जैसा कि यहाँ सुनते है। और यदि मैं उन्हें 'दूर दूर' करूगा तो वे अपने बडों को समझा कर मुझे निकाल बाहर करेंगे, यदि मैंने उनसे भद्रता का बर्ताव किया और उन्हें 'दूर दूर' न किया तो इनके आगम का विचार कर उनके

बड़े मुरब्बी मुझे गर्दनिया दे देंगे। यही दुर्दशा होती रहेगी।

अच्छा, आप में से शायद कोई यह कहे कि "अच्छा भाई सुकरात, एक बात हो सकती है। यदि तुम एथेंस नगरी से बाहर चले जाओ और चुपचाप रहो, न किसी को छेड़ो और न किसी से बोलो चालो, तब तो कुछ दुर्दशा नहीं होगी। भाइ साहबो ! यदि ब्रह्माड भर में मेरे लिये सब से कोई कठिन काम है तो वह यही है कि "मैं लोगों को क्योंकर समझा दू कि मैं कदापि ऐसा नहीं कर सकता"। यदि मैं कहूँ कि "मैं चुप नहीं रह सकता क्योंकि इससे परमात्मा की आज्ञा भग का मुझे पाप लगेगा" तो आप मेरी बात सच नहीं मानेंगे, पर यदि फिर मैं यह कहूँ कि जैसा मैं किया करता हूँ अर्थात् धर्म्म, अधर्म्म, न्याय अन्याय इत्यादि दार्शनिक प्रश्नों पर लोगों से प्रश्नोत्तर करना' क्योंकि उससे बढ कर मनुष्य के लिये और कोई श्रेष्ठतर जीवन है ही नहीं, तब तो मेरी बात पर आप और भी विश्वास नहीं करेंगे। पर चाहे आप न माने, सत्य तो यही है। तिस पर से खूबी यह है कि मैं यह भी समझता हूँ कि मैं किसी दड के योग्य नही हूँ। यदि मैं पैसेवाला होता तो चाहे जितनी आप कहते मैं उतनी बडी रकम जुर्माने मे दे देता क्योंकि इससे मेरी कुछ हानि न होती। सो तो है नहीं, ऐसी हालत मे मैं अर्थदड देने मे नितात असमर्थ हूँ, पर हाँ, यदि आप मेरी औकात के भीतर अर्थदड लेना चाहें तो

दे भी सकता हू । शायद मैं एक मीना (आजकल के ६१ रु०) के बराबर दे सकता हू । अस्तु इसी जुरमाने का प्रस्ताव करता हूँ । अच्छा, यहा उपस्थित मित्रगण, प्लेटो, क्रटो, क्रटोवला और अपोलोदार मुझे तीस मीना का अर्थ दड प्रस्ताव करने के लिये कहते हैं, इसके लिये वे जमानत देंगे। अस्तु मैं तीस मीना अर्थदड का प्रस्ताव करता हू । इतने रुपये के लिये इन लोगों की जमानत काफी होगी। (प्राण डद की आज्ञा सुन कर वह जरा नहीं घबराया और पुन वडी शाँति से उसने निम्नलिखित वक्तृता दी ।)

भाई एथेंसवासियो । अपने वहुत जल्दी की । यह आप के लिये अच्छी वात नहीं हुई, क्योंकि सव लोग इसी कारण से आप को धिक्कारेंगे और कहेंगे कि "देखो एथेंस कैसी वाहियात नगरी है और यहाँ के लोग कैसे अधर्म्मी हैं कि उन्होंने सुकरात ऐसे बुद्धिमान् आदमी को यों मार डाला" । चाहे मैं मूर्ख ही क्यों न होऊँ, पर आपको धिक्कारते समय ये मुझे 'बुद्धिमान्' कहेंगे अवश्य, इसमें सदेह नहीं । आपने यदि और जरा धीरज धरा होता तो थोडे दिनों में प्रकृतिमाता आप की इच्छा यों ही पूर्ण कर देती, क्योंकि आप देख ही रहे हैं कि मैं बूढ़ा हो गया हूँ और अब अधिक दिन जीऊँगा नहीं । भाइयो । यह न समझना कि मैं आप सव लोगों के प्रति यह वात कह रहा हूँ । मेरा कहना उन्हीं से है जिन्होंने मेरे प्राण-दड में सम्मति दी है और अव भी मेरा कथन उन्हीं के प्रति है । शायद आप लोग

यह समझते होंगे कि मुझे समझाने की पूरी युक्ति न आई कि जिससे मैं आपको अपने छुटकारे के लिये समझा देता। यदि आप ऐसा समझते हों तब तो दड से बचने के लिय, चाहे मैं जो चाहूँ सो करू या जो चाहूँ सो कह भी सकता हूँ। पर नहीं, मैंने ऐसा नहीं किया। मैं इसलिये मारा पडा हूँ कि मैने उद्दडता और निर्लज्जता का कोई काम नहीं किया है। कुछ पूरी युक्ति नहीं लडा सका ऐसा नहीं है। मैंने आप के सामने उस प्रकार से गिडगिडाया नहीं जैसा कि शायद आप लोगों को पसद होता या उस प्रकार से रोया धोया नहीं और हाथ पैर नहीं जोड़े, जो कि मैं कह चुका हूँ, मेरे योग्य बात नहीं है, और जैसे बर्ताव पाने की आप लोगों को आदत पडी हुई है, क्योंकि और लोग ऐसा करते आए हैं। इसलिये जब मैं अपने बचाव की बातें कर रहा था तो मैंने उचित समझा कि चाहे कैसे ही खतरे का मुकाम क्यों न हो, नामर्दी का काम करना कदापि उचित नहीं है और अब भी मेरा वही विचार है। मैंने तो उचित यही समझा कि जैसा मुनासिब है उसी प्रकार से अपना बचाव करना, जैसा आप समझते हैं वैसा अनुचित बर्ताव कदापि नहीं करना, चाहे प्राण रहें या जाँय। अदालत के सामने या युद्ध में शत्रु के सामने बहुत सी ऐसी बातें हैं जिन्हें मृत्यु से बचने के लिये मनुष्य को कदापि करना मुनासिब नहीं। युद्ध में यदि हम अस्त्र रख कर शत्रु के पैर पर गिर पड़ें तो

सहज ही में प्राण बच सकते हैं। केवल यही क्यों यदि आदमी पूरी बेशर्मी पर कमर बाँध ले तो और भी कई आफत विपद ऐसी हैं जिनसे वह सहज ही मे अपना बचाव कर सकता है। पर भाई साहबो वह मौत से तो बच जायगा पर कहिए क्या अधर्म्म से भी बच सकेगा ? क्योंकि मौत की अपेक्षा अधर्म्म से बचना और भी कठिन है, क्योंकि अधर्म्म की चाल मौत से कहीं अधिक तेज है। अस्तु, मैं तो बूढा हो ही गया हूँ और सुस्त भी हो गया हूँ। इसलिये धीमी चालवाली मृत्यु ने मुझे आन पकडा है, और मेरे अभियोक्तागण अभी युवा और चतुर भी हैं इसलिये उन्हें तेज चालवाले अधर्म्म ने आ ग्रसा है।

अस्तु, मैं तो आप लोगों से दड पाकर मौत के दरवाजे जाता हूँ और वे लोग सत्य से दड पाकर पाप और दुष्टता के दरवाजे की ओर आगे बढे हैं। जैसा मुझे वैसा ही उन्हें भी यथायोग्य पुरस्कार स्वीकार है। शायद इस मौके पर इन बातो का ऐसा ही होना उचित होगा, सो ठीक ही है, तराजू का पलडा बराबर है।

हे एथेंसवासियो। अब मैं आप को कुछ होनी (भविष्यत् वाणी) सुनाऊँगा, क्योंकि आप ने मुझे सजा दी है, मैं मरने चला हूँ और इसी मौके पर मनुष्यों को दैववाणी कथन की शक्ति सबसे अधिक हुआ करती है। सुनिए, मैं आपको—उन लोगों को, जिन्होंने मुझे मृत्युदड दिया है—यह भविष्यत् वाणी कहता हूँ, कि

मुझे आपने जो सजा दी है, मेरे मरते ही उससे सख्त सजा आपको भोगनी पड़ेगी। आपने यह सोच कर यह काम किया है कि शायद आपके जीवन का हिसाब लेने-वाला फिर कोई नहीं रहेगा। पर नहीं, आपका यह सोचना सरासर गलत है। एक दो नहीं, बहुत से ऐसे आदमी उठ खड़े होंगे जिन्हें आप जानते नहीं और न मैंने ही अब तक आपको बतलाया है। ये लोग आपको छेड़ेंगे और आपको अपनी जिंदगी का लेखा उन्हे बतलाना पड़ेगा। ये लोग मुझसे भी कठोर शिक्षक होंगे और आप मुझसे भी अधिक इन पर क्रोधित होंगे, क्योंकि ये लोग युवक होंगे। यह खूब जानिए कि आप इन्हें मार कर इनका मुँह बंद नहीं कर सकेंगे। यदि आप यह समझते हों कि इन्हें मार कर आप अपनी निंदित करतूतों की निंदा करने से रोक सकेंगे तो आपकी सरासर गलती है। इस तरह से जान बचाना सहज नहीं है और यह राह नेक भी नहीं है। निंदकों की जबान बंद करने की अपेक्षा अपने दोषों का सुधार करना अधिक उत्तम है। अस्तु, जिन लोगों ने मुझे दंड दिया है उनसे यही मेरी अंतिम भविष्यत् वाणी है। अच्छा भाइयो, अब आप लोगों से, जिन्होंने मुझे निर्दोष माना है, इस बारे में मैं बात चीत करूँगा। मृत्यु के स्थान को जाने के पहले जब तक ये सब लोग तैय्यारी मे लगे हैं, आइये हम आप से दो दो बातें कर लें। इसलिये मेरी विनती है कि जब तक मैं यहा हूँ,

आप भी यहीं रहे, इसलिये कि जबतक संभव हो हम लोग आपस मे बात चीत करने पावे। प्यारे दोस्तो ! मैं आप को बतलाना चाहता हूँ कि मुझ पर क्या बीती है। भाई, न्यायाधीशो—आपही असली न्यायाधीश हैं—मुझ पर एक अनूठी होनी हो बीती है—बात यह है कि शुरू से आज तक जब कोई काम मैं करने जाता तो मुझे अदर से कोई ताकत अवश्य रोक देती थी, यदि वह काम अनुचित होता। यह दैवी इशारा आज तक बराबर मेरे सग रहा है, कभी इसने मुझे बिसारा नहीं। मामूली से मामूली बातों में भी यह हमेशा मुझे चितावनी देता रहा है। अब आप देख ही रहे हैं कि मुझ पर क्या बीत रही है। वही होने को है जिसे मनुष्य सबसे अधिक विपत्ति समझते हैं, पर उस दैवी चितावनी ने अब की दफ कहीं भी मेरा साथ नहीं छोडा, न तो घर से यहाँ आते समय, या कभी व्याख्यान के बीच, या किसी काम में, जो मैंने यहाँ आकर किया इस दैवी चिह्न ने मुझे कहीं भी नहीं रोका, जब कि और और मौकों पर ऐसा हुआ है कि इसने मुझे बोलते बोलते एकाएक रोक दिया है। पर यहाँ इस मामले मे इसने कभी भी बोलते या कुछ करते तनिक भी मेरा साथ छोड़ा नहीं। इसका कारण मैं क्या समझता हूँ, सो आप सुनिए। बस, यही कि जो बात मुझ पर होने वाली है वह अवश्य अच्छी बात है, और जो लोग मृत्यु को विपत्ति समझते हैं वे अवश्य गलती पर हैं, मुझे

इसका स्पष्ट प्रमाण मिल गया क्योंकि यदि मेरा कुछ बुरा होनेवाला होता तो अवश्य मेरा सदा का दैवी चिह्न मुझे चितावनी देता।

इसके अतिरिक्त यदि दूसरे प्रकार से भी सोचा जाय, तो हमे पता लग जायगा कि मृत्यु अवश्य अच्छी चीज है, क्योंकि मृत्यु असल में दो बात हो सकती है। या तो मनुष्य का अस्तित्व बिल्कुल रहता ही नहीं एकदम शून्य हो जाता है, या साधारण विश्वास के अनुसार वह एक शरीर छोड़ कर दूसरे शरीर में प्रवेश करता है। यदि मृत्यु ऐसी वस्तु है कि सब शून्य हो जाय, यदि वह एक ऐसी महा निद्रा है कि जिसमें सोया फिर कभी नहीं जागता तो वास्तव में इससे बढ कर उत्तम लाभ की बात कोई हो ही नहीं सकती। आपही सोच देखिए कि जिस रात को हमें ऐसी घोर निद्रा आती है कि किसी बात का भान नहीं रहता और किसी स्वप्न देखने की बात भी याद नहीं रहती तो उस रात्रि से और रात्रियों का यदि आप मुकाबला करेंगे तो आप देखेंगे कि उसके ऐसे आनद की रात्रि दूसरी नहीं बीती है, आप तो क्या, स्वय बडे बड़े शहनशाह भी उस रात्रि के सुख की बराबरी दूसरी रात्रियों से नहीं बतला सकेंगे। यदि मृत्यु की निद्रा ऐसी महानिद्रा है तो मेरे हिसाब से तो यह परम लाभ है, क्योंकि अत को अनत काल भी तो रात्रि ही के तुल्य है। और यदि मृत्यु केवल परलोक की यात्रा का आरभ है और जितने

लोग मर गए हैं, सब मौजूद हैं, तो इससे बढ़ कर उत्तम और क्या होगा ? इससे बढ़ कर और उत्तम बात क्या होगी कि मर कर उस लोक में जाना जहा इन अन्यायी मनमाने न्यायाधीशों से छुटकारा मिलेगा और सच्चे न्यायाधीशों के बराबर आसन मिलेगा जिन्होंने ससार में रह कर न्याय और सत्य का प्रचार किया था और जो अब देवलोक में आनद कर रहे हैं ? क्या ही आनद की बात होगी कि परलोक में यहाँ से गए हुए बडे बड़े कवि, शूर और ज्ञानी विज्ञानी ऋषि मुनियों के दर्शन होंगे और उनसे वार्तालाप होगा ! यदि ऐसा है तो मैं, एक दफ क्यों, बार बार मरने को तय्यार हूँ। मुझे तो और भी आनद आवेगा जब वहाँ बड़े बडे न्यायशास्त्र तथा तर्क विद्या के पडित और सच्चे तर्क करनेवालों से मेरी भेंट होगी जो लोग बिचारे यहाँ इसी कारण से मारे गए थे कि मेरी तरह से उनको अन्याय रूप से दड दिया गया था। उन लोगों से मिल कर अपनी बीती सुनाऊँगा और उनकी बीती सुनूगा और यों बैठा बैठा दोनों का मुकाबला करूँगा। बड़ा मजा आवेगा। यहाँ जैसे तर्क से लोगों की जाँच किया करता था, वहाँ भी किया करूँगा और पता लगाया करूँगा कि वहाँ कौन ऐसा है जो अपने को बुद्धिमान समझता है पर बुद्धिमान है नहीं। चाहे कुछ ही हो, ट्राय युद्ध के नायक, या उदेशी अथवा शीशीफा या बहुतेरे ऐसे नर नारियों की तर्क द्वारा जाँच करने के लिये कौन ऐसा प्राणी होगा जो

सर्वस्व अर्पण करने को न तय्यार हो। यह तो निश्चय है कि वहाँ ऐसा करनेवालों को कोई प्राणदड नहीं देता।

क्योंकि, यदि जैसा माना जाता है यह सच है तो वे लोग हम से अधिक आनद में आवश्य रहते हैं क्योंकि उन्हें मौत का खटका नहीं है, वे अमर हैं।

सो भाई न्यायधीशो तुम लोगों को भी उचित है कि जब मौत आवे तो वीरता के साथ उसके सामने जाना, डरना नहीं, और इस बात को सच जानना कि धर्म्मात्मा मनुष्य का परिणाम कभी भी बुरा नहीं हो सकता, इस लोक या परलोक किसी लोक में उसे कष्ट नहीं होगा। उसके भाग्य देवता कभी विमुख नहीं होते, और आज मुझे जो भुगतना पड रहा है वह निरा सयोग नहीं है। मुझे भास गया कि इस समय मेरे मरने ही में मगल है, और इसी कारण से मेरे सदा के मिलनेवाले इशारे ने मुझे कहीं भी रोका टोका नहीं। अस्तु मैं अपने फर्य्यादियों से, या जिन्होंने मुझे मृत्युदड दिया है उन लोगों से, रज होने का कोई कारण नहीं दिखता। पर उन लोगों ने ऐसा समझ कर यह नहीं किया है। उन्होंने तो जान बूझ कर मुझे कष्ट पहुँचाने की नीयत से मृत्युदड दिया है। बस यदि उनका कुछ दोष है तो इतना ही है। तौ भी उनसे मेरी एक विनती यह है सो सुन लीजिये। मित्रो! जब मेरे लड़के बड़े हों, तो उन्हें भी दड देना, और उन्हें उसी तरह से तग करना जैसा कि मैं आपको तग

करता रहा हूँ। यदि धर्म्म के आगे वे लोग धन दौलत या और किसी बात की उलझन में गिरने लगें तो उन्हें अवश्य इस प्रकार से तग करना। यदि वे किसी लायक न होकर अपने को लायक समझने लगे, उचित बातों पर ध्यान न देवें और निरे निकम्मे होकर अपने को महज्जन समझने का गुमान करने लगें तो जरूर उन्हें खरी चोखी सुनाना और डांट डपेट करना, जैसा कि मैं आप लोगों के साथ किया करता था। यदि आपने ऐसा किया तो मैं समझूगा कि मेरी और मेरे मतानों की आपने मुनासिब कदर की है।

अस्तु अब समय आ पहुँचा, और हमारी तुम्हारी जुदाई होगी। मैं तो मौत का मजा चखूँगा, आप जीने का मजा लीजिए। भगवान ही जाने कि मौत अच्छी है या जीवन अच्छा है। इसका ज्ञाता परमात्मा ही है।"

जब सुकरात को प्राणदड की आज्ञा हो चुकी और अदालत मे वह बदीगृह में भेज दिया गया तब अब किस दिन उसे प्राणदड दिया जाय इसकी सलाह होने लगी। दड तो दूसरे ही दिन हो जाता पर एक कारण से रुक गया। बात यह थी कि यूनानी लोग प्रति वर्ष अपनी एक देवी क प्रसन्नार्थ एक जहाज में किसी जगह बहुत सी भेंट पूजा भेजा करते थे और जब तक उक्त स्थान से जहाज लौट कर नहीं आता था, वे सब दिन धर्मोत्सव के माने जाते थे और उन दिनों के बीच किसी अपराधी को प्राणदड की आज्ञा दे देने पर भी जब

तक उत्सव समाप्त नहीं हो जाता था, अपराधी की हत्या नहीं की जाती थी। संयोग से इन्हीं दिनों में यह त्योहार आ पड़ा और सुकरात और दो चार दिन के लिये प्राण धारण कर पाया। इसी बीच में उसके मित्रों ने बंदीगृह के रक्षकों को रिस्वत इत्यादि देकर उसे भगा देना चाहा और एतदर्थ सुकरात को बहुत कुछ समझाया बुझाया। पर इसके ऐसा धर्मवीर पुरुष ऐसी कायरता का काम क्यों करने लगा था। जैसे सारे जीवन मे वैसे ही इस मौके पर भी बडी शांति और धीरता से उसने अपने मित्र क्रुटो का अच्छी तरह से समाधान कर दिया कि ' भागना उसे कदापि उचित नहीं है। उसके लिये मृत्यु ही परम मंगल है ।" बंदीगृह में सुकरात की अपने मित्र के साथ इस विषय पर जो बातचीत हुई है वह भी बडे मार्के की है और हमें इस बात का पता देती है कि—" आत्मा को अमर समझनेवालों का हीया कैसा बलवान् होता है। उनका विश्वास कैसा अचल और अटल होता है और परमात्मा के वे कैसे सच्चे भक्त होते हैं "। सुकरात के इस अलौकिक कथोपकथन का वृत्तांत अगले अध्याय में दिया गया है, जहाँ उसका मित्र क्रुटो उसे भाग जाने की सलाह देने के लिये सबेरे ही सबेरे जा पहुँचा था।

इससे बढ़ कर मेरे लिये अच्छा दिन और कौन सा होगा ? 'यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि'। भगवान् की जो इच्छा ! पर मेरी समझ में तो शायद जहाज आज न आवे।

क्रटो—क्यों ऐसा अनुमान किस लिये है ?

सुक०—ठहरो, बतलाता हूँ। हाँ, तुमने कहा था न कि जहाज आने के दूसरे दिन मैं मारा जाऊँगा।

क्रटो—हाँ, अधिकारी लोग तो ऐसा ही कहते हैं।

सुक०—ठीक है, पर मेरी राय में जहाज आज तो नहीं आता दीखता। कल आवे तो आवे। रात को मैंने एक सपना देखा है। इसी कारण से ऐसा अनुमान है, अभी सोआ सोआ मैं वही सपना देख रहा था। तुमने अच्छा किया जो मुझे जगाया नहीं।

क्रटो—क्या सपना देखा, भाई सुकरात ?

सुक०—सपना यह देखा कि "मानो एक श्वेत-वस्त्र धारिणी देवी मेरे पास आकर खड़ी हो गई और मुझे जगा कर कहने लगी "हे सुकरात ! आज से तीसरे दिन तुम स्वर्ग पहुँचोगे।

क्रटो—स्वप्न भी अद्भुत ही है !

सुक०—चाहे जो हो बात तो साफ है। मेरे लिय कोई उलझन नहीं है।

क्रटो—अर्थ तो स्पष्ट है ही, पर मेरे प्यारे मित्र, एक बार मैं तुमसे फिर विनती करता हूँ कि मेरी बात मान जाओ और अपनी जान बचा लो। चाहे जो हो, मेरे लिय तो तुम्हारा मरना क्या है मानो गजब का एक बड़ा पहाड़

है, क्योंकि तुम्हारे ऐसा परम प्रिय सज्जन मित्र फिर मुझे कहाँ मिलेगा ? त्रिलोक में भी खोजने से तुम्हारे ऐसा बंधु मुझे मिलने का नहीं। इस पर से यदि तुम न बच सके तो लोग यह भी कहेंगे (क्योंकि सब लोग तो हमारे तुम्हारे स्वभाव से परिचित हैं ही नहीं) कि देखो क्रूटो रुपए की लालच कर गया नहीं तो सुकरात को अवश्य बचा लेता। अपने मित्र के आगे रुपए को सर्वस्व समझनेवाले से बढ कर पापी और कौन है ? कोई भी विश्वास नहीं करेगा कि " हम लोगों ने तुम्हें बचाने के लिये कोई बात उठा नहीं रक्खी। तुमने खुद ही भाग कर बचना अस्वीकार किया।

सुक०—अजी महाशय क्रूटो जी, तुम्हें आज फिर क्या हो गया ? जमाना चाहे जो कहे उसकी परवाह क्यों करना ? परवाह तो अच्छे श्रेष्ठ बुद्धिमानों की राय की करनी चाहिए। वे लोग कदापि अन्यथा नहीं कहेंगे, वरंच यही कहेंगे कि " हमने बहुत उचित किया "।

क्रूटो—अजी भाई साहब, आप क्या कहते हैं ! जमाने की परवाह भी करनी पड़ती ही है। देखिए जमाने ही ने आप की यह दशा कर डाली और आपको इस नौबत को पहुँचा दिया। इन लोगों के कान यदि अन्यथा भर दिए जाते हैं, तो ऐसी कोई भारी से भारी आपत्ति नहीं जो ये उक्त अभियुक्त पर न ला सकें। इसलिये जमाने के लोगों की राय को देखना ही पड़ता है।

सुक०—बड़ा अच्छा होता यदि जन साधारण किसी

को बड़ी भारी हानि पहुँचाने की सामर्थ्य रखते होते। इससे एक बड़ा लाभ यह होता कि वे लोग फिर सबसे अधिक उपकार की शक्ति भी रखनेवाले होते। पर बात तो असल में यह है कि उन्हें किसी बात की भी सामर्थ्य नहीं है। किसी मनुष्य को मूर्ख या बुद्धिमान बनाना उनकी शक्ति के बाहर है। वे लोग तो अँधेरे में ढेला मारते हैं।

कृटो—अच्छा जाने भी दो। शायद ऐसा ही होगा। पर मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ, वह साफ बतला दो। कहीं तुम्हें यह डर तो नहीं है कि "यदि तुम भाग गए तो पता लगानेवाले हम लोगों पर तुम्हे भगाने का इलजाम लगावेंगे, और हम लोग बडी आफत में फँस जाँयगे तथा बहुत से द्रव्य की बर्बादी के अतिरिक्त शायद हम लोगों की जायदाद सर्कार से जप्त हो जाय और ऊपर से और भी कोई दड मिले इत्यादि"। यदि इस प्रकार की कोई चिंता और भय तुमको हम लोगों के प्रति है, तो उसको फौरन दूर कर दो, क्योकि हम लोग तो ठाने बैठे हैं कि तुम्हें बचाने के लिये केवल यह क्यों, यदि इससे बढ कर और भी कोई जोखिम का काम होगा तो कर डालेंगे। इस लिये पुन मेरा निवेदन है कि "तुम मेरी बात मान जाओ और भाग कर अपनी जान बचाओ।"

सुक०—हाँ, कृटो, इन बातों की चिंता तो मुझे है ही, इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी बातों की चिंता है।

कृटो—इन बातों की कोई चिंता करो ही मत। मैंने सब ठीक

कर रखा है और ऐसे आदमी ठीक कर रखे हैं जो थोडा सा द्रव्य पाने पर तुम्हें सहज ही मे कैदखाने से निकल जाने देंगे। इन जासूसों का मुझे कोई भय नहीं है, क्योंकि थोडा सा सुवर्ण ही इनका मुँह बद कर देने के लिये पर्याप्त होगा। मेरी सारी जमा पूँजी तुम्हारे लिये हाजिर है। इसीसे सब काम चल जायगा। यदि मेरे द्रव्य से काम निकालने में तुम्हे कुछ आनाकानी हो तो एथेंस में और भी कई ऐसे अजनबी पुरुष हैं जिनकी थैली तुम्हारे चरणों में अर्पण है, जिनमें से थीबीस-निवासी सीमीयस तो जरूरत से ज्याद द्रव्य ले बाहर ही खडा है। इसके अतिरिक्त शिबि तथा अन्य कई लोग भी तुम्हारे लिये थैली का मुँह खोले बैठे हैं। इसलिये मैं फिर कहता हूँ कि इन बातों का कुछ भी विचार न करके अपनी जान बचाने से मुँह न मोडो। इस बात के विचार करने की कोई जरूरत नहीं कि विदेश जाने मे तुम्हारी क्या दशा होगी? जो होगा देखा जायगा। न्यायालय में तुमने विदेश जाने में जिस जिस अडचन के सामना होने का जिक्र किया था, उस का ख्याल करके अब भागने से बिलकुल मत रुको, क्योंकि मुझे खूब मालूम है कि बहुतेरे ऐसे लोग मौजूद हैं जो तुम्हे हाथों हाथ लेंगे। यदि तुम थिसली में जाना पसद करो, तो वहाँ मेरे ऐसे कई मित्र हैं जो तुम्हारा हरदम ख्याल रखेंगे और वहाँ के मनुष्यों से तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देंगे।

अब यदि तुम भाग कर अपनी जान नहीं बचाते, जब कि ऐसा सुयोग उपस्थित है तो मेरी समझ में तो तुम अधर्म्म करते हो, और केवल अपने शत्रुओं के हाथ के खिलौना बना चाहते हो, ताकि वे जिस तरह चाहें तुम्हें मार डालें। यह सब तो है ही, इसके अतिरिक्त अपने बाल बच्चों को राह में बैठा जाने का भी पाप तुम्हारे सिर लगता है। तुम्हारा कर्तव्य तो यह है कि अपने भर सक उन्हें शिक्षित करके 'मनुष्य' बना डालते। सो नहीं। तुम इन्हें बीच धार में छोड कर चले जाते हो। इनकी क्या दशा होगी ? जैसे अनाथ बच्चों की होती है ! यदि तुम्हें इन्हें शिक्षित और मनुष्य बनाने का 'कष्ट सहन करने' की समर्थ्य न थी तो फिर इन्हें पैदा ही किया किस लिये ? अब तो मुझे ऐसा ही मालूम पडता है कि तुम 'सहज पथा' पसद कर रहे हो। यह शूरों का काम नहीं है। जन्म भर शूरों की तरह धर्म्म पर डटे रहने का पाठ पढ़ाते हुए इस समय तुम्हें स्वय ' सहज पथ' के पथिक होना और धर्म्म छोड़ देना क्या शोभा देता है ? मै तो तुम्हारी तरफ या अपनी तरफ जब देखता हूँ, तो मारे शरम के मरा जाता हूँ। लोग यही कहेंगे कि जो कुछ तुम पर बीती है—तुम्हारा अदालत मे अपना जुर्म सुनने के लिये उपस्थित होना (जब कि वहाँ जाने की तुम्हें कोई जरूरत नँ थी), जिस तरह से मुकद्दमा चलाया गया और जो अत को सब से बढकर यह जो अनहोनी घटना (तुमारे प्राणदड की आज्ञा) हुई है,

इन सब का कारण तुम्हारी कायरता है—डरपोकपन है। इस से यही प्रगट होगा कि हम लोग कायर बन कर आफत से डर गए, क्योंकि जब मौका मिलने पर भी हम लोग तुम्हें न बचावें और तुम भी आप अपनी रक्षा न करो तो लोग क्या कहेंगे ? यही न कहेंगे कि हम लोग निरे बोदे और डरपोक हैं। किसी मर्ज की दवा नहीं है। भाई सुकरात, खूब सोच समझ लो, कहीं ऐसा न हो कि दुःख के सिवाय इस से नामधराई भी हो जाय। खूब सोच लो, जब तक समय है, सोच विचार लो। जो कुछ हो आज रात को, अभी ही निश्चय करना पड़ेगा। देर करने से सब मामला बिगड़ जायगा। सुकरात भैय्या, मैं तुम से फिर बार बार कहता हूँ, हाथ जोड़ कर, नाक रगड़ कर कहता हूँ, मेरी बात सुनी अनसुनी मत करो।

सुक०—मेरे प्यारे भाई क्रिटो, धीरज धरो। उतावले मत हो, क्योंकि तुम जो मेरे बचाव की इतनी चिंता कर रहे हो, वह यदि धर्म्म की बात है तो निश्चय बहुत जरूरी बात है। पर यदि इस के विपरीत यह बात अधर्म्म की हुई तब तो और भी अधिक भयकर होगी। इस लिये आओ हम लोग दोनों मिल कर इस बात को खूब विचार लें कि तुम जैसा कहते हो वैसाही कर डालें या नहीं, क्योंकि मैं वही पुराना सुकरात हूँ जो पहले था। सिवाय न्याय विवेक के और कोई युक्ति भी, मैं मानूँगा नहीं, क्योंकि आज तक यही युक्ति सब से सच्ची साबित

हुई है। क्या हुआ जो आज मैं इस आफत में फँस गया। मैं अपनी पुरानी तर्कप्रणाली कभी छोडने का नहीं। इसी न्याय की तर्कप्रणाली को मैं सचाई तक पहुँचने का सच्चा मार्ग जानता हूँ और अब तक इसकी उतनीही कदर करता हूँ जितनी पहले करता था और जब तक इस से बढ कर और कोई चीज मुझे नहीं मिलती मै कदापि तुम्हारी बात मानने का नहीं, चाहे लोग मुझे और भी भयानक भयानक विपत्तियों से क्यों न डरावें, जैसे बच्चों को भूतों से डराया जाता है, चाहे मुझे और भी कोई नया दड, कैदखाना जुर्माना या प्राणदड क्यों न दे दे। अच्छा तो अब किस तरीके से इस बात की जॉच करना मुनासिब होगा। क्या तुमने जो बात पहले कही है अर्थात् जनसाधारण में से कुछ लोगों की राय के मुताबिक इस बात की जाँच करूँ और कुल लोगों की राय की तरफ बिलकुल ध्यान न दूँ? देखो जब मुझे प्राणदड की आज्ञा नहीं मिली थी, उसके पहले क्या हमलोग इसी बुनियाद पर विचार किया करते थे? क्योंकि अब यदि इस बुनियाद पर (जन साधारण लोगों की राय को सर्वस्व समझ कर) विचार करूँ तो यही साबित होगा कि इसके पहले हम लोग निरी कोरी बकवाद किया करते थे, किसी सिद्धात को निश्चय करने के लिये नहीं केवल तर्क वितर्क के शौक से बहस किया करते थे तथा केवल वाहियात मगज खपा कर समय नष्ट करते थे? क्या ऐसी बात थी? यदि

ऐसी थी तो आओ भाई साहब अत समय इस बात की फिर से नियमपूर्वक जाँच कर डालें। कहीं ऐसा तो नहीं है कि इस समय की मेरी हालत ने पहले की जाँच की सचाई को झूठा साबित कर दिया? और हमें सदा का रास्ता छोड़ कर आज एक नया मार्ग पकड़ना पडेगा। जो लोग जरा गभीरतापूर्वक विचारनेवाले थे वे उस समय भी कहते थे कि हम लोगों को उन लोगों की राय की कदर करनी चाहिए जो अपनी राय सोच समझ कर बड़ी उत्तमता से कायम करते हैं, राहचलतू लोगों की राय की कुछ परवाह नहीं करनी चाहिए। अच्छा तो भाइ क्रटो जी, अब आप मुझे ठीक ठीक बतलाइए, क्योंकि तुम्हें तो कल मरना है ही नहीं कि तुम्हारे फैसले की बात में कुछ पक्षपात होगा। अच्छा तो अब खूब सोच समझ के बतलाओ तो सही कि हम लोगों को क्या ससार के लोगों की सभी राय माननी चाहिए या उनकी कुछ राय माननी चाहिए, अथवा सभी लोगों की राय न माननी चाहिए, सिर्फ कुछ लोगों की राय माननी चाहिए? लोगों की राय ही कुछ माननी पडेगी? क्यों मैं ठीक कहता हूँ कि नहीं?

क्रटो—बहुत ठीक कहते हो।

सुक०—और यह बात भी निश्चय है कि हमें अच्छी राय की ही कदर करनी चाहिए, निकम्मी राय की नहीं।

क्रटो—निस्सदेह।

सुक०—अच्छी राय बुद्धिमानों की होती है और निकम्मी मूर्खों की होती है, क्यों ठीक है न ?

क्रटो—बहुत ठीक।

सुक०—अच्छा तो अब यह बतलाओ तो सही कि जब कोई शार्गिद पढता या कोई कसरत सीखता है तो क्या वह अपने उस्ताद या गुरु की सम्मति पर ध्यान देता है या जिसकी तिसकी सब की राय पर नाचता फिरता है ?

क्रटो—वह केवल अपने गुरु की राय पर ध्यान देता है।

सुक०—तो इससे सिद्ध यह हुआ कि उसे इसी एक आदमी—अपने गुरु की की हुई बदनामी से डरना चाहिए, और उसी की की हुई तारीफ का आसरा भी देखना चाहिए, अन्य लोगों का नहीं।

क्रटो—बहुत ठीक।

सुक०—इस शार्गिद को अपने गुरु के बतलाए नियम पर ही आहार, विहार, कसरत इत्यादि सब करना चाहिए, क्योंकि वह उसके लिये क्या उपयुक्त है यह खूब समझता है, दूसरों की आज्ञा उसे नहीं माननी चाहिए। क्यों ठीक है कि नहीं ?

क्रटो—ठीक है।

सुक०—अच्छा तो अब यदि यह शार्गिद इस एक आदमी (अपने गुरु) की आज्ञा न माने और अन्य लोगों की राय पर चलने लगे तो हानि उठायगा या नहीं ?

क्रटो—निस्संदेह हानि उठायगा।

सुक०—अच्छा, किस प्रकार की हानि उठायगा ? किस तरह से इस हानि की ठोकर लगेगी ?

क्रटो—अपने शरीर ही पर उसे इस हानि की ठोकर लगेगी अर्थात् शरीर बेकाम हो जायगा।

सुक०—तुमने ठीक कहा। अच्छा अब और विस्तार न करके यदि थोडे में मैं यह कहूँ कि सब बातों में यही नियम लगता है, तो क्या ठीक नहीं ? इस लिये पाप पुण्य, धर्म्म अधर्म्म, ऊँच नीच, भला बुरा, जिन बातों का इस समय हम विचार करने बैठे हैं, इन बातों मे भी हमें क्या सब लोगों की राय माननी चाहिए और उनसे डरना चाहिए या हमें एक आदमी की राय माननी चाहिए जो इन विषयों का पडित है (यदि ऐसा पंडित मिल जाय) और उससे डरना और शरमाना चाहिए ? क्योंकि यदि हम इस एक आदमी की आज्ञा या राय नहीं मानेंगें तो हमारा वह अग बेकाम हो जायगा जो धर्म्म से उन्नत होता और अधर्म्म से गिर जाता है। मेरा कहना ठीक है या नहीं ?

क्रटो—तुम बहुत उचित कहते हो। तुम्हारा कहना ठीक है।

सुक०—अच्छा तो अब यदि नासमझ आदमियों की बात पर ध्यान दे कर हम अपने उस अग को बेकाम कर दें जो तदुरुस्ती से अच्छा होता और बीमारी से रद्दी हो जाता है, तो क्या फिर हमारा जीवन किसी काम का रह जायगा ? कटे अग से जीना, मरने ही के तुल्य है।

क्रटो—बेशक।

सुक०—वैसे ही अपना धर्म्मरूपी अग कटवा कर क्या जीना अच्छा है। क्या शरीर से बढ़ कर विवेक नहीं है ?

क्रटो—बेशक बढ कर है।

सुक०—तब जन साधारण के बहुत से लोग हमारे बारे में क्या क्या कहेंगे, इसकी परवाह क्यों करे ? हमे तो केवल उसी एक आदमी के कहने की परवाह करनी चाहिए जो धर्म्म अधर्म्म को समझता है, और सर्वोपरि तो एक यह बात है कि 'सत्य विवेक' हमारे विषय में क्या कहता है, उसीकी हमे परवाह करनी चाहिए। शुरू ही में तुमने गलती की जब इस सिद्धात पर विचार करने की ठानी कि "आम लोगों की राय के मुताबिक धर्म्माधर्म्म का विवेक करना चाहिए।" पर हाँ, इतना तो मैं भी कह सकता हूँ कि "आम लोग चाहें तो हमारी जान जरूर ले सकते हैं"।

क्रटो—सो भी क्या कहना होगा ? वह तो सामने ही है।

सुक०—बहुत ठीक कहा। पर भाई साहब, इन सब बातों का निचोड वही निकलेगा जो आज तक निकलता आया है। अच्छा, यह बतलाओ कि हम लोगों की पहली जो राय थी अर्थात् "ससार में जीना तो नेकी से जीना, नहीं तो जीना नहीं" क्या वह राय अब तक वैसी ही है या नहीं ?

क्रटो—वैसी ही है।

सुक०—और नेकी से जीना, प्रतिष्ठा से जीना, धर्म्मपूर्व्वक जीना, सब का अर्थ एक ही है या अलग अलग है ?

क्रटो—एक ही है।

क०—अच्छा तो अब इन्हीं सूत्रों से चल कर हमें जाँचना चाहिए कि एथेंसवासियों की आज्ञा बिना जेल से निकल भागना धर्म्म है या नहीं ? यदि हमारी जाँच से यह बात साबित हो गई कि भाग जाना धर्म्म है, तो भाग चलूगा। यदि विपरीत साबित हुआ तो यहीं रहूँगा। तुम जो स्त्री पुत्र, नेकनामी खुशनामी, घर गृहस्थी की बात कहते हो, मेरी समझ में यह बात हमारे उन्हीं दोस्तों की कल्पना है (अर्थात् आम लोगों की) जो अदनी सी बात पर किसी के प्राण लेने पर उतारू हो जाते हैं और यदि सामर्थ्य रखते होते तो पुन जरा सी बात पर बिना सोंचे समझे उसे जिला भी देते। पर भाई साहब, 'न्याय्य विवेक' जो हमारा गुरु है—राह दिखानेवाला है—हमें यही उपदेश देता है, कि हमें सिवाय उस बात के, जिसका जिक्र मैं अभी कर रहा था और किसी बात पर ध्यान देना नहीं चाहिए। वह कौन सी बात है ? वही बात कि यदि भागने में सहायता देनेवाले आदमी को हम रुपया दें और धन्यवाद दें और खुद भी भागने में बहादुरी दिखावें, तो क्या यह काम उचित और धर्म्म का कहलावेगा ? या वास्तव में ऐसा करने से हमसे महान पाप और अधर्म्म हो जायगा ? यदि यह साबित हुआ कि ऐसा करने से पाप और अधर्म्म होगा तब तो मौत क्या इससे भी बढ कर यदि कोई आफत आती हो तो आवे, हम यहाँ से हटेंगे नहीं और अपने धर्म्म से एक इंच भी डिगेंगे नहीं।

क्रटो—हाँ भाई सुकरात, तुम्हारा कहना है तो ठीक, पर आखिर किया क्या जाय ?

सुक०—किया क्या जाय, यही सोचने के लिये तो इतना विस्तार फैलाया है। अब यदि तुम मेरी बात काट कर अपनी बात साबित कर दो तो मैं मान जाऊँगा । यदि साबित न कर सके तो अब बार बार, भाई साहब, मुझे यह मत कहना कि एथेंसवासियों की आँख में धूल झोंक कर भाग चलो। मेरी तो बडी इच्छा है कि तुम्हारी राय के मुताबिक काम करूँ, क्योंकि मैं यह नहीं चाहता कि तुम मुझे भ्रात समझ बैठो। खैर, तो अब यह बतलाओ कि शुरू मे हमने जो सिद्धात स्थापन किया है, उसे तुम मानते हो ? यदि मानते हो तो उसी के अनुसार मेरे प्रश्नों के जवाब देने का यत्न करो।

क्रटो—हाँ मानता हूँ, और उसी के मुताबिक जवाब देने की कोशिश भी करूँगा।

सुक०—अच्छा यह बतलाओ कि हमें कभी भी जान बूझ कर अधर्म्म नहीं करना चाहिए—या घुमा फिरा कर, इस तरह से नहीं तो उस तरह से अधर्म्म कर लेना चाहिए ? या जैसा कि पहले भी कई बार तय हो चुका है कभी किसी हालत में भी अधर्म्म करना नेक या प्रतिष्ठा का काम नहीं है ? क्या इन्हीं थोड़े से दिनों में हमारे पहले सिद्धातों पर पानी फिर गया ? हमारे बाल पक गए तो क्या हुआ, पहले हम लोग जब बड़े गभीर बन कर तर्क वितर्क किया करते थे, तो क्या यह साबित नहीं हो

जाया करता था कि हमारी समझ बच्चों से कुछ अधिक बढ कर नहीं है। क्यों यही बात असल में सच है या नहीं, चाहे ससार के लोग मानें या न मानें। यदि धर्म्म करते हुए किसी कारण से प्राणदड की सजा मिल जाय या उससे कोई हलकी ही सजा मिले तो क्या इसी कारण से अधर्म्म कर बैठना चाहिए। क्या अधर्म्म करना हर हालत मे पाप नहीं है और इससे लज्जा नहीं उठानी पडती ?

टो—निस्सदेह उठानी पडती है।

क०—तो फिर तात्पर्य्य यह निकला कि हमे कभी भी किसी हालत में पाप नहीं करना चाहिए।

टो—कभी नहीं।

क०—अच्छा तो फिर क्या किसी आदमी की बुराई भी करनी चाहिए ?

टो—नहीं, मेरी समझ में तो नहीं करनी चाहिए।

क०—अच्छा तो बुराई के बदले किसी से बुराई करना क्या उचित है, जैसा कि दुनियाँ करती है ?

टो—कदापि उचित नहीं है।

क०—क्योंकि किसी की बुराई करनी और पाप करना एक ही बात है।

टो—एक ही बात है।

क०—तो तात्पर्य्य यह निकला कि हमे बुराई के बदले बुराई नहीं करनी चाहिए, अथवा किसी आदमी को नुकसान नहीं पहुँचाना चाहिए, चाहे उसने हमारे साथ

कैसी ही बुराई क्यों न की हो अथवा कैसा ही नुकसान हमें क्यों न पहुँचाया हो ? अच्छा इस बात में अपनी राय खूब समझ बूझ कर दो। बे समझे हाँ, हाँ करने से कोई लाभ नहीं है, क्योंकि मुझे विश्वास है कि दुनिया मे विरले ही आदमी इस राय को मानेंगे, और जो लोग इस राय के पक्षपाती हैं और जो इसके विरुद्ध हैं, वे दोनों अवश्य ही एक दूसरे की राय से घृणा करेंगे। इसी लिये कहता हूँ कि मेरी राय में राय मिलाने के पहले, तुमने खूब सोच विचार लिया है कि नहीं ? अच्छा तो अब हम क्या इसी सूत्र से आरभ करें अर्थात् बुराई के बदले बुराई करके किसी से बदला नहीं लेना, और हमें जो नुकसान पहुँचावे उसे नुकसान नहीं पहुँचना ? अथवा तुम मेरे सिद्धात को नहीं मानते और अपनी अलग राय रखते हो ? मैं तो अब तक इसी राय को मानता आया हूँ और अब भी मानता हूँ, पर तुम यदि न मानते हो तो साफ साफ कह दो। यदि मानते हो तो फिर मेरी दूसरे नबर की युक्ति सुनो।

क्रटो—मानता हूँ। तुम कहते चलो।

सुक०—अच्छा तो मेरी दूसरी युक्ति यह है, या यों कहो कि मेरा दूसरा प्रश्न यों है कि किसी आदमी को अपने यथार्थ निश्चित किए हुए सिद्धात के अनुसार चलना चाहिए या उसके विरुद्ध चलना चाहिए ?

क्रटो—नहीं, विरुद्ध नहीं चलना चाहिए।

सुक०—अच्छा तो अब जरा सोचो। देखो, यदि मैं बिना

रियासत की अनुमति के भाग जाऊँ तो क्या मैं उन लोगों को किसी प्रकार की हानि तो नहीं पहुँचा बैठूँगा जिन्हें हानि पहुँचाना मुझे कदापि उचित नहीं है ? इसमे क्या अपने निश्चित किए हुए सिद्धात के अनुसार काम करनेवाला ठहरूँगा या नहीं ?

ो—मैं क्या जवाब दूँ । तुम्हारी बात ठीक समझा ही नहीं ।

ं०—अच्छा तो अब दूसरी तरह से समझाता हूँ । अच्छा, मान लो कि देश का कानून और राज्यसस्था (प्रजा तन्त्र राज्य की सस्था) ठीक उसी समय जब मैं भागने की तय्यारी कर रहा हूँ, आ कर मुझ से यह प्रश्न पूछे कि "कहो जी सुकरात, तुम्हारे मन मे क्या है ? भागने की कोशिश करके तुमने जो हमको (जहाँ तक जो अश हमारा तुम में है, उस अश को) नाश करने (कानून को नष्ट करने) की ठानी है, और सारे शहर को बद-नाम करने की सोची है, इससे तुम्हारा क्या तात्पर्य्य है ? तुम समझते हो कि क्या ऐसी रियासत टिक सकेगी, और नाश नहीं हो जायगी, जहा के कानून का फैसला कोइ चीज नहीं समझा जाता, और जो चाहे सो आदमी इसकी कुछ परवाह न करे मनमानी करता है" ? भाई क्रिटो, यदि कानून आ कर मुझसे ऐसा प्रश्न करे तो मैं उसे क्या जवाब दूगा ? कानून के फैसले को सर्वोपरि समझने के पक्ष में कोई अच्छा वकील मुझसे बहुत कुछ कह सकता है । यदि कोई मुझ

समय उसे यदि यहाँ के कानून न रुचे तो उसे कोई मना करनेवाला नहीं है। अपना माल मता ले कर चाहे जहाँ चला जाय। एथेंस देश का कोई उपनिवेश या किसी अन्य देश में चाहे जहाँ जाय, उसे कोई पूछनेवाला नहीं। क्योंकि यह सब जान बूझ कर जो लोग यहाँ रह जाते है और इसी देश को सदा के लिये अपना घर बना लेते हैं और यहाँ की अदालत और कानून की कार्रवाइयों के अधीन रहने में कोई अडचन नहीं समझते, तो इसस हम यह नतीजा जरूर निकालेंगे कि उन लोगों ने हमारे अधीन–हमारी सत्ता और आज्ञा के अधीन–रहना स्वीकार किया है और इनमें से जो कोई हमारी आज्ञा भग करता है वह एक नहीं, तीनगुने पाप का भागी होता है। एक तो वह हमारी–अपने माता पिता की–– आज्ञा उल्लघन करता है, दूसरे हमने उसे इतने दिनों तक पाल पोस कर बड़ा किया, सो हमारी अवज्ञा करता है, और तीसरे हमारी आज्ञा मानना स्वीकार करके प्रतिज्ञा भग करता है। हमने उसे कुछ जबरदस्ती अपनी आज्ञा नहीं मनवाई थी। उसे इस बात का भी अवसर दे दिया था कि या तो वह हमारी आज्ञा माने या हमें मनवा दे कि हम गलती पर हैं, पर उसने दो मे से एक बात भी नहीं की।" देखो भाई क्रिटो। यदि तुम्हारी सलाह मान ले तो हम लोगों को इन अपराधों का शिकार होना पडेगा, साधारण एथेंसवासियों की अपेक्षा हम पर इन जुर्मों का बोझ और भी अधिक होगा, यदि हम पूछें कि 'क्यों

ऐसा क्यों होगा ?' तो कानून महाशय कहेंगे—और उनका यह कहना अनुचित न होगा—कि "इस लिये कि तुम हमारे साथ प्रतिज्ञाबद्ध हो चुके हो। हमारी इस बात का और भी पुष्ट प्रमाण मौजूद है कि तुम हमसे और इस नगरी से खूब सतुष्ट थे, नहीं तो यहीं घर बार का पसारा क्यों फैलाते ? दूसरे एथेंसवासियों की अपेक्षा तुम अधिक सतुष्ट थे—यह इसी बात से प्रगट हो रहा है कि मेले तमाशे में, सिवाय एक बार के तुम कभी भी घर से बाहर नहीं गए और सिवाय युद्ध-यात्रा के कभी विदेश भ्रमण को भी तुम नहीं निकले, दूसरे नाना प्रकार के देश देशांतर और नए नए आइन कानून के देखने की तुम्हें चाह हुई ही नहीं। तुम तो केवल हमसे और हमारी नगरी से ही राजी रहे। यहाँ तक तुमने हमें अच्छा समझा कि हमारे शासन में रहना पसद किया, यहाँ तक इसे पसद किया कि इसी शासन के अधीन रह कर सतान तक उत्पन्न की। और भी एक बात है। तुम चाहते तो अपने लिये देशनिकाले की सजा भी माँग सकते थे और उस समय यह काम राज्य की अनुमति से हो जाता, जो तुम अब उसके बिना किया चाहते हो। तुमने कहा कि हम देशनिर्व्वासन से प्राणदड को अच्छा समझते हैं और मरने का तुमने बड़ा गौरव बखान किया। अब तुम्हें लज्जा नहीं आती जो भरी सभा में ऐसा कह कर कायरों का सा काम करने पर उतारू हुए हो, और कानून की प्रतिष्ठा कुछ भी नहीं

करते, उलटे उसे नष्ट करने पर उद्यत हुए हो। तुम्हारी दशा इस समय ठीक एक अभागे दास की तरह है जो अपने स्वामी से किए हुए करार और शपथ को भग कर भागने को तैय्यार हो। पहले, हमे यह जवाव दो कि हमारा यह कहना यथार्थ है कि नहीं कि वास्तव में तुमने हमारे शासन के अधीन रहना स्वीकार किया है–केवल बातों सें नहीं–अपने कामों से इस करार को पक्का कर दिया है?" क्यों भाई क्रुटो, कानूनदेव के इस प्रश्न का हम क्या उत्तर देंगे? क्या स्वीकार न करे कि हाँ, हमने करार किया है?

क्रुटो—स्वीकार करना ही पडेगा।

सुक०—तो क्या फिर कानून नहीं कहेगा कि "क्या तुम उस करार को--प्रतिज्ञा को–भग नहीं कर रहे हो? क्या तुमसे किसी ने जबरदस्ती या फुसला कर यह करार करवाया था? क्या हडबडी मे तुम ने यह प्रतिज्ञा कर डाली थी? तुम्हें तो सत्तर बरस का दीर्घ अवकाश मिला था, इस बीच में तुम्हें यदि यह करारनामा अनुचित मालूम पडता या तुम हम से असंतुष्ट होते तो चाहे जहाँ ज़ी चाहता चले जाते, पर तुम्हें कोई देश भी अच्छा न लगा। लेसीडीमन, या क्रीट कहीं भी तुम नहीं गए, यद्यपि तुम्हें कहने की सनक थी कि इन देशों की शासन-प्रणाली बडी अच्छी है। तुम न किसी और रियासत में गए, हेलेन या बारबेरी तुम्हे कोई भी अच्छा न लगा। अंधे, लगडे,

होगे, जिससे साफ प्रगट हो रहा है कि औरों की अपेक्षा तुम हम से कहीं अधिक सतुष्ट थे, हम से—इसी नगरी और यहाँ के कानून से—क्योंकि बिना कानून की नगरी से कौन सतुष्ट हो सकता है। यदि तुम हमारी बात मानोगे—और तुम क्यों न मानोगे—तो एथेंस से भाग कर जगत में अपनी हँसी मत कराओ, क्योंकि जरा सोंच देखो। इस करारनामे को भग करके तुम अपने या अपने हितू बाधवों की क्या भलाई कर लोगे? तुम्हारे भागने से, तुम्हारे बाधवों को भी देश निर्वासन इत्यादि दड के जोखिम में सिर देना पडेगा। उनकी जायदाद की जप्ती भी हो सकती है और वे कैदखाने की हवा भी खा सकते हैं। तुम तो आस पास के किसी नगर में—थीबीस या मीगार में—चले जाओगे, क्यों कि तुम उनकी शासन प्रणाली को अच्छा समझते हो, पर देखो सुकरात, इन प्रजातत्र रियासतों मे तुम्हारा जाना एक बला के समान होगा, क्योंकि जिन्हें कुछ भी अपने नगर की परवाह होगी वे तुम्हारी तरफ भौचके से हो कर देखेंगे और तुम्हें कानून का तोडनेवाला समझेंगे। फिर तो यहाँ के जजों की राय और भी पुष्ट हो जायगी और साफ प्रगट हो जायगा कि उनका फैसला गलत न था, क्योंकि जो कानून को तोड़ने में न हिचके उसे नादान युवकों को बिगाड़ते क्या देर लगती है? इस हालत में तुम क्या करोगे? क्या सारी अच्छी शासनप्रणालीवाली नगरी और सुसभ्य आदमियों का

सग छोड दोगे ? क्यों, ऐसी जिंदगी क्या काबिल जी ने के होगी ? अथवा सुसभ्य आदमियों से मिल कर बात चीत करोगे ? किस विषय पर बात चीत—उन्हीं विषयों पर जिन पर यहाँ करते थे। वही धर्म्म अधर्म्म, न्याय अन्याय, नियम अनियम इन्हीं सब उपयोगी बातों पर तर्क वितर्क करोगे। पर कौन सा मुँह ले कर इन बातों को जवान से निकालोगे ? क्या लज्जा नहीं आवेगी ? शायद यहाँ से पुन भाग कर तुम्हे क्रुटो के मित्रों के पास थेसली जाना पडा, जहाँ के राज्य की कोई व्यवस्था नहीं है जहा खूब अंधेर चलता है, और वहाँ के निवासी भी तुम्हारे भागने की कहानी को हँसी दिल्लगी करते हुए सुनेगे। शायद किसी किसान का वेप बदल कर और चेहरे पर कालिख पोत कर तुम निकल भागोगे, और अपनी आत्मकहानी उन्हें सुनाओगे। इस कहानी को सुन कर शायद कोई यह भी कह बैठे 'क्यों जी सुकरात ! तुम तो बूढे हुए, सत्तर बरस के करीब उमर हो गई, तुम्हें जीने की बडी हवस मालूम पडती है, जो इतने भारी कानून को तोड करके यहाँ भाग आए।' शायद कोई यह भी आवाजा कसे तो क्या होगा ? उस समय क्या चुल्लु भर पानी में डूब मरने का समय नहीं आ जायगा ? तुम्हारी जिंदगी सब लोगों की खुशामद और मुसाहिबी में बीत जायगी। थीसली में पड़े पडे केवल हलुवा पूड़ी उडाना, मानों सैल सपाटा करने वहाँ गए हो, पर भाई साहब ! वह धर्म्म अधर्म्म, न्याय

अन्याय की लवी लवी डींगे जो तुम यहाँ मारा करते थे, उनका क्या होगा ? शायद अपने बच्चों की शिक्षा के लिये तुम अपनी जिंदगी बचना मुनासिब समझते हो, तो क्या अपने बच्चों को थीसली ले जाओगे और वहीं उन्हें लिखाओ पढाओगे ? क्या उनसे उनका देश छुडा दोगे ? मान लो कि यदि तुमने उनसे एथेंस न भी छुडाया तो क्या तुम्हारे जीते रहने से उनकी शिक्षा और अच्छी हो सकेगी ? हाँ ! क्यों नहीं। तुम्हारे दोस्त सब इनकी खबरदारी करेंगे ? अच्छा तो क्या थीसली की यात्रा करोगे तभी तुम्हारे दोस्त इन बच्चों की खबरदारी करेंगे और स्वर्ग की यात्रा करोगे तो खबरदारी नहीं करेंगे ? यदि वे तुम्हारे सच्चे दोस्त हैं तो तब भी तुम्हारे बच्चों की खबरदारी करेंगे। फिर क्यों ऐसा करते हो ? नहीं, यह सब किसी काम की बात नहीं है। हमारा कहना मानो। हमने तुम्हें बच्चे से पाल पोस कर इतना बड़ा किया, हमारी सलाह मान जाओ। न्याय और धर्म्म के आगे, बाल बच्चे, घर गृहस्थी अपनी जान तक की परवाह मत करो क्योंकि तुम्हें परलोक में भी एक अदालत के सामने जाना पडेगा। फिर वहाँ क्या मुँह ले कर अपनी सफाई का बयान दोगे ? यह तो बात साफ जाहिर है कि तुम्हारे इस काम करने से न तो तुम्हारा धर्म्म या पुण्य बढेगा, न तुम्हारे मित्रों को और न मरने के बाद तुम्हें शांति मिलेगी। इस समय तो केवल इतना ही है कि तुम पर अत्याचार हुआ है–कानून द्वारा नहीं–मनुष्यों

द्वारा अत्याचार हुआ है। अब यदि तुम इसके बदले हम पर–कानून पर–अत्याचार कर बैठो और इस तरह बेहया बन कर बुराई के बदले बुराई करने पर कमर कस लो और उन्हे अर्थात् स्वय अपने मित्रों, अपने स्वदेश और कानून को हानि पहुँचा दो और भाग जाओ तो जब तक तुम जीओगे हम तुम से चिढ़े रहेंगे और मरने के बाद हमारे दूसरे भाई साहब—परलोक के कानून—भी तुम्हें दुतकारते ही रहेंगे क्योंकि उन्हें मालूम तो रहेहीगा कि तुमने मर्त्यलोक में उनके भाई—सासारिक कानून—को नष्ट करने में कोई कसर उठा नहीं रखी थी। इस लिये पुन कहते हैं कि "हमारा कहना मान जाओ और क्रुटो के बहकाने में मत आओ।"

सुना भाई क्रुटो ! कानून का व्याख्यान !! मुझे कानून देव का यह व्याख्यान स्पष्ट सुनाई दे रहा है–सरस्वती देवी की बीणा की तरह यह झकार मेरे कानों में गूँज रही है और इस झकार के आगे और कोई शब्द सुनाई ही नहीं देता। इस झकार से मेरे रोम रोम में न्याय और धर्म्म पर दृढ़ रहने का उत्साह समा रहा है और इस महाशब्द के सामने तुम्हारी बातें नक्कार खाने मे तूती की आवाज हैं। कुछ फल निकलने का नहीं। चाहे और भी चेष्टा कर देखो।

क्रुटो—मुझ में तो अब और-कुछ कहने को शक्ति नहीं है।

सुक०—तब चुप रहो। जो होता है होने दो। भगवान की इच्छा योंही है

छठाँ अध्याय ।

सुकरात की स्वर्ग-यात्रा ।

सुकरात की मृत्यु के बाद उसके शिष्य और मित्रगण जब एक जगह इकट्ठे हुए तो उनमें इस प्रकार की बात चीत हुई थी। इन शिष्यों में, फीडो, इशीक्रटस, शिबी, शिमी, अपोलोदोरस, क्रटो, इत्यादि मुख्य थे।

इशीक्रटस—क्यों भाई फीडो, तुम क्या उस दिन, जब सुकरात ने विषपान किया था खुद बंदी गृह में उपस्थित थे या और किसीसे उन के अंत समय की कहानी सुनी है।

फीडो—मैं खुद वहाँ मौजूद था।

इशीक्रटस—तब तो तुमने उस समय के गुरु जी के वाक्यों को कानों से सुना और उनके अंत समय का कृत्य आँखों से देखा होगा। क्या अच्छा हो, यदि तुम वे सब बातें अद्योपांत वर्णन कर दो, क्योंकि इन दिनों हम लोगों में एथेंस को तो कोई बहुत आता जाता है ही नहीं, दूसरे

नोट—चौथे और पाँचवें अध्यायों का शीर्षक भूल से छूट गया है। चौथे का शीर्षक "सुकरात का दोष विमोचन" और पाँचवें का "सुकरात का बंदीगृह" होना चाहिए था।

बहुत दिनों से कोई परदेशी भी यहाँ नहीं आया जिसकी जबानी इन सब बातों का ब्योरेवार हाल मालूम होता। केवल इतना ही पता लगा है कि उन्होंने विषपान कर प्राण त्याग किया। इसके सिवाय और कुछ हाल मालूम नहीं हुआ।

फीडो—तो क्या मुकद्दमे वगैर का कुछ हाल भी तुम लोगों ने नहीं सुना ?

इशी०—हाँ, उसकी खबर तो सुनी थी, पर इस बात का हम लोगों को बडा ताज्जुब है कि मुकद्दमा हो जाने के बाद गुरु जी इतने दिनों तक जीते क्योंकर रहे ?

फीडो—एक घटना के कारण। वह यह थी कि "एथेसवासी हर साल देलोस को जो जहाज भेजा करते हैं, उसकी प्रतिष्ठा (पूजा) मुकद्दमे के पहले दिन हुई थी।

इशी०—यह कैसा जहाज होता है ?

फीडो—तुम नहीं जानते ? इसकी कथा एथेंसवासी यों कहते हैं कि इसी जहाज में थीसीयस सात कुमार और सात कुमारियों को क्रीट देश में ले गया था और यों उसने अपनी और उनकी प्राण रक्षा की थी। उसी दिन से एथेस वासियों ने यह मनौती मानी थी कि 'यदि ये लोग बच जाँयगे तो प्रति वर्ष देलोस की देवी को पूजा भेजी जायगी' तब से आज तक हर साल इस जहाज की प्रतिष्ठा इत्यादि करके देवी के अर्थ पूजा भेजी जाती है। जब तक यह जहाज देवी का प्रसाद ले कर लौट नहीं आता तब तक कोई जघन्य कार्य्य का अनुष्ठान नगर में

नहीं होने पाता और इसी अर्थ यदि इस बीच में किसी को प्राणदंड की आज्ञा हो जाती है तो जहाज के वापस आने तक उस अपराधी की हत्या नहीं की जाती। कभी कभी तो वायु के विमुख हो जाने से जहाज के वापस आने में बहुत देर लग जाती है। जिस दिन से जहाज को सेहरा पहनाया जाता है, उसी दिन से उत्सव के दिन का प्रारंभ समझा जाता है। अब की बार गुरु जी के मुकद्दमे के एक दिन पहले ही जहाज को सेहरा पहनाया गया था। इसी लिये इतने दिनों तक उन्हें बंदीगृह में रहना पड़ा।

इशी —तुम तो हम लोगों को केवल उनकी मृत्यु कहानी सुना दो। मरते समय उन्होंने क्या क्या कहा और कौन कौन से कृत्य किए ? उस समय उनके पास कौन कौन था ? अफसरों ने उनके पास किसी को जाने दिया या नहीं ? मरते समय वे अकेले थे, या उनके पास कोई था ? यह सब सविस्तर बतलाओ।

फीडो—नहीं जी, उस समय उनके पास कई आदमी थे।

इशी०—देखो भाई, इस समय यदि तुम्हें और कुछ काम न हो तो आदि से अंत तक सारी बात वर्णन कर डालो। हम लोगों को सुनने की बड़ी उत्कंठा है।

फीडो—काम और क्या है ? मुझसे जहाँ तक बन पड़ेगा, तुम लोगों को सब सुनाऊँगा। मुझे तो खुद इसमें बड़ा आनंद आता है। सुकरात की बातें करते हुए मैं

आनद-सागर मे उतराने लगता हूँ। उनकी बाते याद आते ही, मुझे रोमांच होने लगता है।

इशी०—हम लोगों को भी ऐसा ही श्रद्धालु श्रोता समझो। पर भाई साहब आपको ब्योरे वार सब हाल ज्यों का त्यों सुनाना पड़ेगा।

फीडो—क्या कहूँ, उस दिन की मेरे दिल की हालत? दिल की एक अजीब हालत हो गई थी। मुझे यह भान ही नहीं होता था कि आज मेरे एक परम मित्र के देहात का दिन है, करुणा ने मुझे अभिभूत नहीं किया, क्योंकि जब तब मैं सुकरात की तरफ देखता तो उन्हें शात और प्रसन्न वदन पाता। भय का लवलेश भी न था। ऐसी निर्भयता और ऐसी शाति से तो मैंने आज तक किसी को मरते देखा ही नहीं। उनकी इस स्थिति को देख कर मुझे पूरा निश्चय हो गया कि स्वर्ग का द्वार उनके लिये खुला है और देवताओं की सभा मे वे आसन पाने योग्य हैं। इसलिये उस मौके पर करुणा के बदले हम लोग प्रतिष्ठा और विस्मय की दृष्टि से गुरुजी को देख रहे थे, और खूबी यह थी कि यद्यपि दर्शन विज्ञान की चर्चा हो रही थी, पर सदा की तरह इस मौके पर इस चर्चा से हम लोगों का मन प्रफुल्लित नहीं होता था। जब कुछ दर्शन और ज्ञान की बातों का रस आने लगता तो तुरत ही गुरुजी की आसन्न मृत्यु की याद आ जाती और वह आनद दु ख में बदल जाता था। दिल की एक अजीब हालत थी।

हम लोग एक आँख से हँसते और दूसरी से रो देते थे, विशेष कर हममें से एक महाशय अपोलोदोरस ने तो बारी बारी से रो कर और हँस कर अजीब ही कैफियत दिखलाई। वह जरा भी अपने को बस में नहीं रख सका था, और बार बार बालकों की तरह रुदन करने लगता था। हम लोगों का कलेजा भी टूक टूक हो रहा था, पर ज्यों त्यों कर अपने को सँभाले जाते थे।

इशी०—वहाँ कौन कौन था ?

फीडो—एथेंसवासियों में से तो अपोलोदोरस, क्रटो बोलस, उसका बाप क्रटो, हरमोजीनिस, इपीगीनस, अश्वनी और अतस्थानी थे और परदेशियों में शतसय्या, और मीनाक्षीनी थे तथा और भी कई एथेंसवासी लोग थे। प्लेटो शायद बीमार होने के कारण नहीं आ सका था।

इशी०—परदेशियों मे और भी कोई था ?

फीडो—हाँ थीबी नगरी का शीमी और शिबी और फइडोनडा और मिगारा नगरी का युकलेदिस और तर्पसन भी मौजूद था।

इशी०—क्यों अरस्तीपस और क्लियो ब्रोटस में मे कोई नहीं था ?

फीडो—नहीं, इनमें मे तो कोई नहीं था, सुना है कि वे लोग अगीना मे हैं।

इशी०—और भी कोई था ?

फीडो—नहीं और कोई नहीं था।

इशी०—अच्छा अब क्या बातचीत हुई सो सुनाओ।

होता है। इस समय मेरी भी वही हालत हुई है। जजीरों से जकडे रहने के कारण पैर में दर्द हो रहा था, और दर्द के बाद आराम (सुख मालूम) पड रहा है।"

इस मौके पर शिवी ने गुरुजी को रोक कर कहा "अच्छा, हितोपदेश की बात आपने खूब याद दिलाई। अभी उसी दिन कई लोग मुझ से पूछ रहे थे-आप की कविता के बारे मे—जो आपने हितोपदेश पर छदोवद्ध की है और यहाँ पर जो दो चार भजन वनाए हैं, उन्हीं के बारे मे अभी कल ईमीनस ही मुझसे पूछ रहा था कि "सुकरात ने जन्म भर तो कभी कोई कविता की ही नहीं। अब मौत के किनारे आ कर क्या सूझी जो कविता रचने लगे।" सो तुम यदि इसका जवाब देना उचित समझो तो बतला दो, मैं भी उसे वैसा ही समझा दूँगा।"

सुक०—ऐसी बात है! तब तुम उसे सच ही सच कह देना कि मैंने ये कविताएँ कुछ उससे बाजी मारने के लिये नहीं वनाई हैं। बात असल में यह है कि मैं अपने मन का एक बोझा हलका कर रहा था, क्योंकि स्वप्न में मुझे कई बार ऐसा आदेश हुआ कि 'सगीत रचो।' मैंने इसका यह अर्थ समझा कि शायद दैववाणी मुझे अपने कर्तव्य कर्म्म मे उत्साह देने के लिये यह बढावा दे रही है, जैसे कि पहलवानों को लोग बढावा दिया करते हैं। सो मैंने भी इससे यही

अर्थ निकाला कि इस उत्साह बचन से उसी सगीत का तात्पर्य्य है जिनकी रचना मैं नित्य कर रहा हूँ। क्यों कि दर्शन शास्त्र से बढ कर और कोई मनमोहनी सगीतविद्या मेरी समझ में है ही नहीं और मेरी सारी आयु इसी विज्ञान में बीती है। पर मुकदमे के बाद जब दिलोस देवी के महोत्सव के कारण मेरी मृत्यु में कुछ देर दिखाई दी तो मैंने सोचा कि सायद यह दैव-वाणी मुझे साधारण सगीतपदावली रचने की आज्ञा देती हो और यदि मैंने ऐसा न किया तो मन में एक खटका रह जायगा। इसलिये यही उचित समझा कि चलो जी, चलते चलाते यह खटका मिटाते चलें। इसलिये पहले मैंने दिलोस देवी की स्तुति मे एक भजन बनाया, फिर इसके बाद हितोपदेश का जो किस्सा ध्यान में आया, उसे मैं छदोवद्ध करने लगा, जो पहले याद आया उसी को कविता में कर डाला, क्योंकि कवि लोग कुछ वास्तविक घटना के बल पर तो कविता रचते हैं ही नहीं, इसमें तो उनकी कल्पना की दौड काम करती है और मेरे पास कल्पना की दौड है ही नहीं, फिर क्या करता ? इसी पर सतोप किया। अस्तु इमीनस से मेरी आखिरी सलाम के बाद यह भी कहना कि 'यदि उसे कुछ समझ है तो शीघ्र ही मेरे पीछे चला आवे। एथेंसवासियों के इच्छानुसार, मैं तो आज ही महाप्रस्थान करूँगा।'

गुरुजी की यह बात सुन कर शीमी बोला "वाह

सुकरात महाशय। क्या मजेदार सलाह इमीनस को दे रहे हो। खूब जान लो, वह तुम्हारी इस सलाह पर कान देनेवाला नहीं। मैं उससे खूब परिचित हूँ उसका बस चले तो कभी मौत को पास फटकने ही न दे

सुक०– क्यों ? क्या इमीनस ज्ञानी नहीं है ?

शिमी—मेरी समझ मे तो ज्ञानी है।

सुक०—तब तो उसे अवश्य मरने की इच्छा रखनी चाहिए और अध्यात्म-शास्त्र का जिसने जरा भी अध्ययन किया होगा वह अवश्य मरने की इच्छा करेगा। पर मैं यह नहीं कहता कि वह आत्महत्या कर ले। आत्महत्या पाप है। यह कह कर गुरुजी ने शय्या से उतार कर पैर भूमि पर रखा और बाकी का सारा समय इसी तरह बैठे हुए बात करने में बिता दिया।

इसके बाद शिवी ने पूछा "क्यों भाई सुकरात, जब ज्ञानी आदमी को मरते हुए का अनुगमन करना ही चाहिए तो फिर तुम आत्महत्या को पाप क्यों बतलाते हो ?"

वाह ! भाई शिवी ! तुम और शिमी दोनों फिलोला के पास रहे चुके हो और तुमने उससे इसकी मीमांसा कभी नहीं सुनी ?

शिवी बोला—"नहीं भाई, इस बात की पूरी सफाई कभी भी नहीं हुई। मुझे भी इस विषय की पूरी युक्ति मालूम नहीं है, पर हाँ जो बड़े लोगों से सुना है वह कहूँगा। जब परलोक को चला चली की तैय्यारी है

है। आखिर सध्या तक की बात चीत के लिये कुछ मसाला तो चाहिए ही, सो इससे उत्तम और कौन सा विषय है जिस पर बात चीत करना इस समय उचित मालूम पड़े। अच्छा तो भाई सुकरात, वे लोग अपने पक्ष में कौन सी युक्ति देते हैं कि आत्महत्या पाप है ? थीवी नगरी में रहते समय फिलोला से मैंने सुना था सही कि आत्म-हत्या पाप है तथा और भी कई आदमियों की जबानी सुना है, पर किसी ने युक्तिपूर्वक समझाया नहीं।"

सुक०—खैर तो अब सही। तुम अब खुश हो जाओ। आज इस विषय की कोई न कोई युक्ति सुनने में आवेगी, पर मुझे यह कहते सुन कर कुछ विस्मित न होना कि यह विषय नियम, सब नियमों से निराला और स्वत प्रमाण्य है। इसका व्याघात कभी नहीं होता और क्या यह भी बात सच नहीं कि किसी किसी मौके पर किसी किसी मनुष्य को जान से मरना अच्छा लगता है और वह इसे चाहता है, पर तुम यह सुन कर कुछ विस्मित मत हो यदि मैं कहूँ कि ऐसे लोगों को आप ही अपना काम समाप्त नहीं कर डालना चाहिए वर ऐसे एक बाहरी उपकारी की बाट जोहनी चाहिए जो उनपर यह उपकार कर दे।

"वाह ! यह भी खूब कही" शिबी हँसता हुआ अपनी देशी जबान मे बोल उठा।

"खूब क्यों नहीं" गुरु जी कहने लगे, "इस तरह से

कहने से तो तुम्हें यह बात आश्चर्य की मालूम पड़े हीगी, अव इसकी युक्ति भी सुनाए देता हूँ। यह युक्ति उसी गुप्त विद्या से सबंध रखती है (शायद योगविद्या) जो बताती है कि "मनुष्य एक प्रकार के कैदखाने मे है जहाँ से उसे स्वय छूटकार लेना, या भाग जाना उचित नहीं है"। इस युक्ति का मर्म बडा गभीर है और सहज में उद्घाटन होने का नहीं। पर इतना तो मैं भी सोचता हूँ कि 'परमात्मा हमारे रक्षक हैं–वड़े हैं–और हम मनुष्य उनकी सपत्ति हैं। क्यों तुम क्या समझते हो ?"

शिवी—यही मैं भी समझता हूँ।

सुक०—ठीक, तब यदि तुम्हारी कोई सपति अपने आप अपना नाश कर ले (तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध) तो क्या तुम नाराज नहीं होगे ? यदि दड देना सभव हो तो क्या तुम उसे दड नहीं दोगे ?

शिवी—अवश्य देंगे।

सुक०—सो इस विषय मे भी ऐसा ही समझो, कि जब तक परमात्मा की आज्ञा न हो (जैसी कि मुझको हो गई है) तब तक किसी आदमी को अधिकार नहीं है कि अपना जीवन नष्ट कर दे।

" हाँ, बात तो ठीक मालूम पडती है " शिवी बोला, पर अभी जो आप कह रहे थे कि ज्ञानी दार्शनिक लोग मरने की इच्छा रखते हैं, इसका तात्पर्य्य क्या है ? यह तो एक गोरखधधे की बात है। क्योंकि अभी जो आपने कहा कि परमात्मा की हम जायदाद—प्रजा—हैं यदि यह

बात सच हो तो मरने की इच्छा क्यों रखना ? क्योंकि मालिक की जायदाद जहाँ तक रक्षित रह सके वैसा करने की चिंता करना सेवक का धर्म्म है। ऐसे अच्छे स्वामी की सेवा छोड कर चले जाना ज्ञानी आदमी क्यों अच्छा समझेगा ? क्योंकि परमात्मा से बढ कर वह आप अपनी रक्षा तो कर सकता नहीं। यदि कोई ऐसा समझ कर उस परमात्मा की रक्षा से छूटना चाहे–मरना चाहे —तो उसे हम मूर्ख से और अधिक क्या कह सकते हैं। ज्ञानी और मूर्ख, पर्य्यायवाची शब्द नहीं हैं वर ठीक उल्टे हैं। फिर तुम्हारा यह कहना कि ज्ञानी मृत्यु की इच्छा रखे, क्योंकर ठीक हो सकता है ?

शिवी की इन युक्तिपूर्ण बातों को सुन कर गुरुजी कुछ प्रसन्न मालूम पडे और हम लोगों की ओर देख कर बोले ' शिवी बडा पक्का तार्किक है। वह उन लोगों मा नहीं है जो ऐरों गैरों की बात सुनते ही उसे पल्ले में बाँध लेते हैं "।

शिमी बोला " हाँ महाशय जी मैं भी यही समझता हूँ कि शिवी का कहना कुछ वजन रखता है । ज्ञानी आदमी क्यों अपने सत्स्वामी की सेवा छोडेगा ? और भी एक बात है, शिवी का यह ताना आपकी तरफ भी है, क्योंकि आप हम लोगों को और अपने देवी देवताओं को छोड़ कर चले जा रहे हैं। ये देव देवी सब हमसे उत्तमतर हैं और हमारी रक्षा कर सकते हैं, यह आप अभी स्वीकार कर चुके हैं।

सुक०—बहुत ठीक! शायद तुम्हारा मतलब यह है कि तुम मुझ पर यह इलजाम लगाते हो और अदालत की तरह इस जुर्म से मुझे अपना बचाव करना पडेगा।

शिमी—हाँ, यही मतलब है।

सुक०—अच्छा तो फिर अपने बचाव की कोशिश शुरू करता हूँ। शायद पहले अदालती जुर्म की अपेक्षा इस वार कुछ अच्छा बचाव कर सकूँ।

मेरे भाई शिबी और शिमी, बात असल में यह है कि यदि मैं यह समझे होता कि मरने के बाद मुझे किसी बुरी जगह जाना है तो जरूर कुछ दु.ख करता, पर मैं तो यह समझता हूँ कि मरने के बाद मैं धर्म्मात्मा जनों के बीच जा कर रहूँगा। यद्यपि इसका मुझे पूरा निश्चय नहीं है, पर ऐसा अनुमान तो अवश्य करता हूँ कि देवी देवताओं का सहवास तो मुझे अवश्य ही प्राप्त होगा, जो कि हमारे स्वामी है—और अच्छे स्वामी है। इसी लिये मरने का मुझे कुछ ऐसा दु ख नहीं है, क्योंकि मुझे विश्वास है कि मरने बाद भी एक प्रकार का जीवन मिलता है और यह जीवन सत्पुरुषों के लिये सुखदाई है और पापियों के लिये दु खदाई है।

"अच्छा सुकरात" शिमी बोला, "यह विश्वास तुम अपने ही तक रखोगे कि हम लोगों को भी अपना साथी बनाओगे। क्या हम लोगों को अपने जीवन मरण और पाप पुण्य की परवाह नहीं है! इसमें दोनों की भलाई होगी। एक तो तुम अपना बचाव भी कर लोगे, दूसरे हम लोगों

को भी एक सिद्धांत पर निश्चय विश्वास हो जायगा।

सुक०—अच्छा मैं कोशिश करता हूँ। पर हाँ, क्रूटो कुछ कहना चाहता है, ऐसा मालूम पडता है। पहले उसकी बातें सुन लूँ।

क्रूटो—और तो कुछ नहीं, केवल जो आदमी तुम्हें विषपान करने के लिये मुकर्रर किया गया है, अभी कह रहा था कि "सुकरात को चिता दो कि अधिक बकवाद न करे," क्योंकि इससे लोगों को गरमी चढ जाती है और फिर गरमी विष को जल्दी चढने नहीं देती जिसका परिणाम यह होता है कि दो दो तीन तीन बार जहर पीना पडता है।

सुक०—जो होगा होने दो, उससे कह दो कि अपना काम देखे और दो तीन बार विष पिलाने का सामान तय्यार रखे।

क्रूटो—मैं तो पहले ही से जानता था कि तुम यही जवाब दोगे, पर जब वह आदमी बार बार जिद्द करने लगा तो मुझे तुमसे कहना ही पड़ा।

सुक०—उसे बक बक करने दो। तुम बैठो, हमारी बातें सुनो। हा, अब आप लोगों के सामने जो इस समय मेरे न्यायकर्ता जजों के स्वरूप में बैठे हैं, मुझे अपना बचाव करना है और यह बतलाना है कि किस लिये उस आदमी को जिसने अपनी सारी आयु ज्ञान विज्ञान की चर्चा में बिताई है, मरने के समय आनंद मनाना चाहिए और उसकी यह आशा व्यर्थ नहीं है कि परलोक में उसे सर्व्वोत्तम गति प्राप्त होगी। मेरे भाई शिवी और शिमी,

अब मैं इसी का खुलासा तुम्हारे सामने उपस्थित करने की कोशिश करता हूँ।

बात यह है कि ज्ञानी लोग जो ज्ञान चर्चा करते हैं वह और कुछ नहीं हैं केवल जीवन मरण ही के प्रश्नों पर विचार करना है। इस बात पर शायद ससारी लोग लक्ष्य नही करते। और यदि यही बात सच है तो फिर यह भी क्या विचित्र बात नहीं होगी कि जो जन्म भर इसी मृत्यु के प्रश्न पर विचार कर रहा हो, वही मृत्यु जब सामने आवे तो घबड़ा जाय और बगलें झाँकने लगे ?

सुकरात की इस बात पर शिमी हँस पडा और बोला "तुम्हारी बात सुन कर मुझे हँसी आ गई, यद्यपि यह मौका हँसने का नहीं। यदि मामूली लोग तुम्हारा यह कथन सुन लेते तो वे मान लेते कि ज्ञानियों के विषय मे जो तुम कहते हो वह ठीक है। वे यह भी मान लेते कि ज्ञानी मरने के लिये उत्सुक हैं और इस पर हमारे देशवासी शायद यह भी निश्चय कर लें कि 'इन्हीं ज्ञानियों को मार डालना ही उचित भी है।'

सुक०—उनकी समझ गलत नहीं, पर हाँ एक बात मे गलती हो सकती है। वह यह है कि वे इस मामले को ठीक नहीं समझते। उन्हें इस बात का पता नहीं है कि 'ज्ञानी की मृत्यु का तात्पर्य्य क्या है' और उसके लायक कौन सी मृत्यु है और किस कारण से उस प्रकार की मृत्यु के वह उपयुक्त है। अच्छा इन लोगों की बात छोड़ दो। आओ हम आपस में जैसा समझें बात करें। अच्छा, यह बतलाओ 'तुम मृत्यु को कोई चीज समझते हो ?'

शिमी—हाँ, समझते हैं।

सुक०—यही न समझते हो कि " शरीर से आत्मा का अलग हो जाना मृत्यु है ? शरीर अलग और आत्मा अलग हो जाती है। दोनों स्वतन्त्र हो जाते हैं। इसीका नाम मृत्यु है या कुछ और है ?

शिमी—यही है।

सुक०—खैर, तो इस विषय पर तो हममे कोई मतभेद नहीं है, तो अब हम जो पूछें उसका ठीक ठीक जवाब दे कर इस विषय के सुलझाने में हमारी सहायता करो। अच्छा यह बतलाओ ' तुम क्या समझते हो कि विषयों की ओर ज्ञानियों की अधिक प्रीति रहती है—अर्थात् आहार, निद्रा, मैथुन, भोग विलास इत्यादि की ओर।

शिमी—कदापि नहीं।

सुक०—तो क्या शरीर की उनको बड़ी ममता रहती है और अच्छे अच्छे सुगंधित् पुष्टिकर भोजन और सुंदर भड़कीले रेशमी वस्त्र या इत्र चंदन पुष्प और आभूषणों से वे अपना शृंगार करना पसंद करते हैं या इन सब चीजों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, यों ही जब बरबस इनसे वास्ता पड गया तो इन्हें काम में लाते हैं, नहीं तो इन्हें वे छूते तक नहीं ? क्यों तुम्हारी क्या राय है ?

शिमी—मैं तो समझता हूँ कि जो असली ज्ञानी होगा कि वह इन चीजों को अवश्य घृणा की दृष्टि से देखेगा।

सुक०—तात्पर्य्य यह कि इस बात को तुम समझ गए कि " एक दार्शनिक ज्ञानी के अध्ययन का विषय यह

जड शरीर नहीं है। वह जहाँ तक सभव होता है इससे अलग रह कर, आत्मा ही की ओर अपना लक्ष्य रखता है।

शिमी—बहुत ठीक।

सुक०—तो इससे तात्पर्य्य यह निकला कि और आदमियों की अपेक्षा एक ज्ञानी आदमी जहाँ तक सभव होता है, इस जड़ शरीर को आत्मा से अलग रखता हुआ चलता है।

शिमी—निस्सदेह।

सुक०—अच्छा तो अब दुनियादारी की तरफ़ जाइए। दुनियादार लोग जब किसी ऐसे आदमी को देखते है जो इन शारीरिक विषयों से अलग रहता है, तो क्या वे नहीं कहते कि इस आदमी का जीना न जीना दोनों बराबर है, क्योंकि जिसे शरीर ही की कुछ परवाह नहीं तो वह मानों जीता हुआ मुर्दा ही है।

शिमी—हाँ, ऐसा कहते तो हैं।

सुक०—अच्छा तो अब ज्ञानप्राप्ति की बात लीजिए। यदि ज्ञानप्राप्ति करने के लिये शरीर के यत्न का अडगा भी सग लगा रहे तो इससे ज्ञानप्राप्ति मे विघ्न होता है या नहीं? खुलासा यह है कि "श्रवण और दर्शन, ये दो जो आँख और कान के विषय हैं, इनसे क्या मनुष्य को कोई सत्य सिद्धात का अनुभव होता है? क्या रात दिन कवियों के मुँह से नहीं सुना जाता कि आँख और कान हमेशा ठीक ठीक ज्ञान का अनुभव

नहीं कराते ? जब इन दो प्रधान इंद्रियों का यह हाल है तो अन्य इंद्रियों की बात ही क्या, जो कि इनके ऐसी पूर्णता को प्राप्त नहीं है। क्यों क्या दर्शन और श्रवणेंद्रिय की तरह और इंद्रियों में भी वैसी ही कारीगरी है ?

शिमी—नहीं, उतनी नहीं है।

सुक०—तब फिर आत्मा 'सत्य का अनुभव' कब करती है ? यह तो स्पष्ट ही है कि जब शरीर को साथ ले कर मनुष्य सचाई को खोजना चाहता है, इंद्रियाँ उसको भ्रांत कर देती हैं।

शिमी—बेशक।

सुक०—एक मात्र 'न्याययुक्ति' ही ऐसी चीज है, जिससे सत्य का अनुभव होता है।

शिमी—ठीक।

सुक०—और भी एक बात है "आत्मा उसी समय खूब अच्छी तरह से न्याय और युक्तिपूर्वक तर्क करने में सामर्थ होती है, जिस समय उसे इंद्रियों के कोई विषय (अर्थात् देखना सुनना) न सता रहे हों। तात्पर्य यह कि जब तक आत्मा शरीर का बिलकुल ध्यान छोड़ कर अपने आप में स्थित हो "सत्य के अनुसंधान" में तत्पर नहीं होती, तब तक उसकी मनोकामना सिद्ध नहीं होती।

शिमी—ठीक है।

सुक०—तात्पर्य यह निकला कि उस समय ज्ञानी की

आत्मा शरीर को तुच्छ जान कर अपने आप में लीन रहने की चेष्टा करती है।

शिमी—बहुत ठीक।

सुक०—अच्छा तो अब दूसरे विषय को लीजिए। तुम क्या यह मानते हो कि 'न्याय की स्वतन्त्र सत्ता' कोई चीज है ?

शिमी—मानता हूँ।

सुक०—वैसे ही सौंदर्य्य और नेकी की भी अपनी अपनी स्वतन्त्र सत्ता है ?

शिमी—है।

सुक०—क्या इन सत्ताओं को तुमने कभी आँखों से देखा है ?

शिमी—नहीं, देखा तो कभी नहीं।

सुक०—तो क्या किसी शारीरिक इंद्रियों द्वारा इनका अनुभव किया है ? यहाँ मेरा मतलब सारी सत्ताओं से है, जैसे कि परिमाण, स्वास्थ्य या शक्ति इत्यादि। खुलासा यह कि स्वतन्त्र सत्ता से मतलब सारी चीजों के असली सार या निचोड़ से है। अब मैं यह पूछना चाहता हूँ कि प्रत्येक वस्तु की असलीयत क्या शरीर के द्वारा जानी जाती है ? क्या यह बात सच नहीं कि किसी चीज की असलीयत की परखनेवाली 'बुद्धि' है, शरीर नहीं। बुद्धि द्वारा ही चीजों की ठीक ठीक जाँच हो सकती है।

शिमी—निस्सन्देह।

सुक०—'तब तो यह सिद्ध हुआ कि जो आदमी शरीर, और इंद्रियों का बोझा एक ओर रख कर केवल

'मन' को साथ ले कर किसी वस्तु की जाँच करेगा वही उस पदार्थ के विषय में साफ साफ जान सकेगा। (मन से मतलब यहाँ शुद्ध बुद्धि से है) अस्तु किसी शुद्ध सत्ता को जानने के लिये शुद्ध बुद्धि की आवश्यकता है। ज्ञानी को इसके अर्थ अपने को चक्षु और कर्णादिक इद्रियों से अलग रहना पड़ेगा। तात्पर्य यह है कि सारे शरीर या शरीर सबधी जड़ पदार्थों का ध्यान छोड देना पडेगा, क्योंकि येही सारे देखने और सुने जानेवाले जड पदार्थ आत्मा को मोह में डाल कर उस पर अज्ञान का परदा डाल देते हैं जिससे उसे यथार्थ सत्ता और ज्ञान का बोध नहीं होने पाता। सो यदि किसी को ज्ञान प्राप्त करने की अपेक्षा हो तो वह केवल आत्मस्थ हो कर ही उसे प्राप्त कर सकता है, अन्यथा नहीं। क्यों मेरा कहना ठीक है कि नहीं ?

शिमी—बहुत ठीक है। आपने बहुत ही उत्तम युक्ति द्वारा इस विषय को समझाया है।

सुक०—और इन्हीं सब कारणों से क्या सच्चे ज्ञानी लोग सोच विचार कर आपस में नहीं कहते कि "न्याय, युक्ति और तर्क के पीछे चल कर सुखपूर्वक हम अपने जिस पड़ाव पर पहुँचेंगे, उस पड़ाव का मार्ग बड़ा सूक्ष्म है"। इसलिये जब तक यह स्थूल शरीर अपना अड़गा लगाए रहेगा, तब तक हम अपने असली पड़ाव अर्थात 'सत्य ज्ञान' (अनत ब्रह्म) के पास कभी नहीं पहुँच सकेंगे। इसमें एक कारण यह भी है कि इस

शरीर के यत्न में हमारा बहुत सा समय खर्च हो जाता है, क्योंकि स्थूल शरीर की रक्षा के लिये वह आवश्यक है। फिर यदि शरीर को कोई पीडा हुई या रोग हुआ तो वह भी ज्ञानप्राप्ति का विघ्न स्वरूप आ खडा होता है। इसके सिवाय नाना प्रकार के दुःख, आधिभौतिक आध्यात्मिक और आधिदैविक शरीर के पीछे लगे हैं और हमे रात दिन रोग शोक, परिताप, बधन, व्यसन मे डाल कर इच्छा और वासना रूपी तरगों की थपेड से व्याकुल किए रहते हैं। नाना प्रकार के भय और सशय से हम मूढवत हुए रहते हैं, सो इतने बखेडों को सग ले कर 'सत्य ज्ञान' का अनुभव क्या खाक हो सकता है ? सत्यज्ञान तो दूर रहा, इन्हीं बखेडों के कारण लडाई झगडे, मार काट, खून खराबी, युद्ध सभी कुछ हो जाते हैं। युद्ध झगडे इत्यादि का कारण है पैसा और पैसे बिना पेट भरता नहीं, शरीर का पालन होता नहीं, इस लिये शरीर ही की गुलामी करते करते सारी आयु व्यतीत हो जाती है और ज्ञानचर्चा का अवकाश मिलता ही नहीं। यदि सयोगवश मन को खींच खाँच कर ठिकाने लाए और कुछ देर तक के लिये 'सत्य ज्ञान' की चर्चा और आलोचना मे बैठे भी, तो पग पग पर यही स्थूल शरीर एक न एक विघ्न खडा कर देता है और सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। सो यह सबक सहज ही सीख लेना चाहिए कि जब तक शरीर का ध्यान छोडेंगे नहीं, तब तक ' शुद्ध ज्ञान ' का घर हमसे कोसों दूर है। आत्मा को अपने आप में

रह कर, ''आत्मस्थ' हो कर, पदार्थों की जाँच करना जरूरी है। मृत्यु के समय आत्मा शरीर से अलग हो कर स्वभावत ही आत्मस्थ हो जाती है और तभी हम उस 'सत्य ज्ञान' के अधिकारी हो सकेंगे जिस के लिये इस जीवन में हमें तीव्र लालसा रहती हो, क्योंकि तब शरीर का अडगा तो लग रहेगा ही नहीं जो इस मार्ग का इतना भारी विघ्न था। यह बात ऊपर दिखाई हुई युक्तियों से साबित ही है, क्योंकि यदि इस शरीर के साथ रह कर सत्य ज्ञान का अनुभव सभव नहीं तब तो दो बातें हो सकती हैं। या तो सत्य ज्ञान का अनुभव कभी भी सभव नहीं या मृत्यु के बाद शरीर छोडने पर सभव है, क्योंकि वही एक ऐसा अवसर हाथ आवेगा जब आत्मा अपनी सत्ता मे आप ही लीन रहेगी। जीते हुए तो हम तभी उस ज्ञान को छू सकेंगे जब इस शरीर का कुछ ध्यान नहीं रखेंगे (सिवाय पोषणार्थ साधारण निर्व्वाह के) और जहाँ तक हो सके वासनाओं के दाग से बेदाग रहेंगे। हमें यही चाहिए कि इन वासनाओं से दूर दूर भागते रहें और अपनी आत्मा को शुद्ध निष्कलक रखने की चेष्टा करते हुए अपनी आयु बिता दें, जब तक कि अत समय स्वय परमात्मा हमें इस शरीर के बंधन से छुड़ा कर 'आत्मस्थ' न कर दें। फिर जब इस प्रकार से अपनी शुद्ध आत्मा को ले कर हम परलोक प्रयाण करेंगे तो सभव है कि हम उसी लोक में जाँयगे जहाँ हमारी ही तरह शुद्ध आत्माओं

का निवास है और हम सभों को परम शुद्ध तत्त्व का ज्ञान भी प्राप्त हो सकेगा और शायद वही तत्त्व 'सत्यज्ञानमनन्तब्रह्म' हो। क्योंकि अपवित्र तत्त्व कभी पवित्र या शुद्ध तत्त्व के पास नहीं फडक सकता। सो मेरे भाई शिवी और शिमी मेरी सम्मति मे तो ज्ञान के सच्चे प्रेमियों की परिभाषा और आकाक्षा ऐसी ही होनी चाहिए। क्यों तुम क्या कहते हो ?

शिमी—बहुत ठीक।

सुक०—अच्छा तो अब यदि यह बात सच है तो हमारी यह आशा दुराशा नहीं कि जिस महायात्रा के लिये मै तय्यार हुआ हूँ उसका अतिम पडाव मेरे लिये बड़े सुख का स्थान होगा और जिन जिन चीजों की मैं यहाँ आकाक्षा करता रहा, ये सब मुझे वहाँ अनायास ही प्राप्त होगा। यदि परिपूर्ण ज्ञान के प्राप्त करने की लालसा रही है, तो वही पूर्ण शुद्ध ज्ञान उस लोक मे मुझे प्राप्त होगा। सो इसीलिये बड़े आनद से आज मैं उस महाप्रस्थान के लिये तय्यार बैठा हूँ और हरएक आदमी जिसका मन शुद्ध हो गया है अवश्य ही सहर्ष मृत्यु को आलिंगन करने के लिये तय्यार रहेगा।

शिमी—निस्सदेह।

सुक०—मन या चित्त की शुद्धि किसे कहते हैं, यह तो तुम समझ ही गए होगे ? चित्त की शुद्धि कोई विलक्षण पदार्थ नहीं है। 'इस जीवन में जहाँ तक हो सके जड़ शरीर से आत्मा को अलग समझते हुए और सदा

ऐसी ही भावना करते हुए आयु बिताना, तात्पर्य्य यह कि आत्मस्थ रहने का अभ्यास करते रहना, " इसीका नाम चित्त-शुद्धि है और इसी शुद्धि से आत्मा इस लोक और परलोक में बधन से मुक्त हो सकती है।

शिमी—ठीक है।

सुक०—और मृत्यु भी कोई दूसरी चीज नहीं है। आत्मा का जड़ शरीर से छूट जाने (मुक्त हो जाने) ही का नाम मृत्यु है।

शिमी—बेशक ऐसा ही है।

सुक०—और सचे ज्ञानी लोग हमेशा आत्मा को शरीर से मुक्त करने की इच्छा रखते हैं। उनका सारा पढना, लिखना, अध्ययन अध्यापन सब इसी आत्मा को शरीर से छुड़ाने, मुक्त करने, ही के लिये हुआ करता है। यह बात तुम मानते हो या नहीं ?

शिमी—मानता हूँ।

सुक०—जब जन्म भर मृत्यु की इच्छा रखते हुए सारी आयु मुर्दे की सी दशा में बीत गई, तो फिर जब सचमुच ही मृत्यु आन उपस्थित हुई, तो क्या उससे जी चुराना एक अनोखी बात नहीं है ? क्यों क्या ऐसी बात, हो सकती है ?

शिमी—न होना ही सभव है।

सुक०—तो भाई मेरे, बात असल मे यह है कि 'सच्चे ज्ञानी सदा ही मृत्यु की आलोचना किया करते हैं, और सारे आदमियों की अपेक्षा मृत्यु से बहुत ही कम डरते

हैं। अच्छा, एक दूसरे तरीके से भी इस विषय को विचार देखो। देखो ज्ञानी आदमी शरीर से शत्रुता रखते हैं और आत्मा ही को जी जान से चाहते हैं। तो फिर उनके लिये क्या यह बात निरी सिडीपन की नहीं होगी, कि जब इस शत्रु से पीछा छूटने का समय आवे तो प्रसन्न होने के बदले वे रोने बैठ जॉय। एक तो शत्रु से छुटकारा मिला, दूसरे जिस ज्ञान की प्राप्ति के लिये जन्म भर प्रवल आकाक्षा थी, जब ऐसी जगह जा रहे हैं जहा वह अभिलाषा पूर्ण होने की सभावना है, तो क्या वह समय आनद मानने का है कि शोक का ? देखो कई लोग स्त्री पुत्र या अपने किसी प्रेमी की विरह-यत्रणा न सह सकने के कारण इस शरीर के मोह को तोड कर (इस इच्छा से कि परलोक में उन स्नेहियों से भेंट होगी) इसका नाश कर देते है, फिर जिसे ज्ञान प्राप्ति की प्रवल आकाक्षा हो और परलोक मे उसे पाने का निश्चय हो, तो क्या वह मरते समय शोक करेगा? कदापि नहीं। उलटे खुशी से फूला न समायगा। इसी लिये मैंने कहा था यदि इमीनिस सच्चा ज्ञानी है तो वह कदापि मरने से दूर भागना नहीं चाहेगा, क्योंकि उसे पूरा निश्चय होगा कि केवल परलोक ही में जाकर उसे शुद्ध ज्ञान प्राप्त हो सकता है। फिर ऐसे आदमी के लिये मौत से डरना क्या सभव है ?

शिमी — नहीं।

सुक० — इमसे क्या साफ प्रगट नहीं होता कि जिन्हे तुम मरते

समय रोते धोते और माथा पीटते देखते हो, वे कदापि सच्चे ज्ञान की आकाक्षा रखनेवाले नहीं हैं। वे केवल जड पिंड के मोह में फँसे हुए हैं या धन दौलत और मान प्रतिष्ठा की चाहना रखनेवाले हैं।

शिमी—तुम्हारा कहना ठीक है।

सुक०—तो फिर यह भी सिद्ध हुआ कि सचा साहस ज्ञानियों ही में होता है ?

शिमी—बेशक।

सुक०—ठीक है, अच्छा अब सयम के बारे मे क्या कहते हो ? 'सयम' किसे कहते हैं, यह तुम समझ ही गए होगे। वही जिससे कुवासनाओं को दमन करके नियम के भीतर रक्खा जाता है। इस सयम का पालन भी क्या वे ही लोग ठीक ठीक नहीं करते हैं, जिन्हें शरीर की कुछ परवाह नहीं होती और जो ज्ञानचर्चा में मग्न रहते हैं ?

शिमी—बेशक, वे ही लोग यथार्थ सयमी हो सकते हैं।

सुक०—क्योंकि अन्य लोगों के साहस और समय की ओर जब निगाह उठाओगे तो अजीब ही कैफियत नजर आयगी।

शिमी—सो कैसे ?

सुक०—वह भी बतलाता हूँ, कैसे। यह तो तुम जानते ही हो कि अन्य सारे मनुष्य मौत को अपने ऊपर आनेवाली सारी आफतों से सबसे भारी आफत समझते हैं।

शिमी—समझते ही हैं।

सुक०—और जब इनमें का कोई बहादुर आदमी मृत्यु को

सुनने के लिये खुशी से तैयार हूँ।

सुक०—मुनासिब क्यों न समझूगा ? क्या इतनी बातें जो हो गई निरी कोरी बकवाद थीं। कोई भाड भडुआ भले ही ऐसा कह सकता है। समझदार तो कभी ऐसा कहेगा नहीं। अच्छा तो तुम्हारी मरजी है तो लो इस विषय को भी आरभ कर दो।

परलोक में मृत्यु के बाद मनुष्यों की आत्मा का अस्तित्व रहता है या नहीं इस विषय को आओ यों विचारें। यह तो तुम्हें भी मालूम है कि सदा से ऐसा एक विश्वास चला आता है कि इस ससार को छोड कर आत्मा परलोक में चला जाती है और फिर वही आत्मा पुर्नजन्म धारण करती है अर्थात् एक से निकल कर दूसरे शरीर में प्रवेश करती है। तात्पर्य्य यह कि मुर्दे से जिंदा पैदा होते हैं क्योंकि यदि कोई मुर्दा न हो —न मरे—तो फिर कोई जिंदा भी क्यों कर पैदा हो ? यदि यह बात सच है कि जिंदे मुर्दे से पैदा होते हैं तो परलोक में अवश्य हमारी आत्मा का अस्तित्व रहता है, नहीं तो वहाँ से आ कर पुन शरीर धारण क्यों कर और कौन करता ? यदि हम यह साबित कर सकें कि जिंदे मुर्दे से पैदा होते हैं या जीवन मरण से पैदा होता है तो आत्मा के परलोक में अस्तित्त्व होने का साफ प्रमाण मौजूद है। यदि उक्त बात को साबित न कर सकें तो फिर परलोक मे आत्मा के अस्तित्व के बारे में दूसरे प्रमाणों की खोज करेंगे।

शिवी—हा, यह है तो ठीक।

सुक०—अच्छा तो अब इस प्रश्न को सुलझाने का सबसे सहज उपाय यह है, कि इस वात को हम केवल मनुष्यों ही पर नहीं, वर पशु, पक्षी, कृमी, पतग, पेड़, पल्लव, घास, तृण सभी पर घटा कर देखें। जो कोई चीज भी उत्पन्न होती और नाश होती है सभी पर इस पश्न को लगा देने से मामला और भी साफ हो जायगा। अच्छा तो क्या यह वात ठीक है कि हर एक पदार्थ अपने उलटे गुणवाले पदार्थों से उत्पन्न होता है? उलटे गुण वाले कैसे, सो कहता हूँ सुनो। जैसे कि श्रेष्ठ और निकृष्ट, न्याय अन्याय, अच्छा बुरा, ये सब परस्पर एक दूसरे के विरोधी गुणवाले हैं कि नहीं?

शिवी—हैं।

सुक०—अच्छा तो अव हमें यही सोचना है कि कोई पदार्थ जिसका कि ठीक दूसरा विरोधी गुण भी है, स्वय उसी विरोधी गुण से उत्पन्न होता है या नहीं, जैसे कि जब कोई चीज वडी हो जाती है तो वह छोटे ही से न बड़ी होती है। पहले छोटी थी, फिर वड़ी हो गई?

शिवी—ठीक।

सुक०—वैसे ही कोई चीज जव छोटी होती है तो वह पहले वड़ी थी, फिर छोटी हो गई।

शिवी—बहुत ठीक।

सुक०—वैसे ही निर्ब्बल से सबल होता है, सबल से निर्ब्बल होता है, सुस्त से तेज और तेज से सुस्त होता है।

क्यों होता है कि नहीं ?

शिवी—नि संदेह होता है।

सुक०—वैसे ही श्रेष्ठ से निकृष्ट और न्याय से अन्याय होता है ?

शिवी—होता है।

सुक०—तो इन बातो से क्या साफ साबित नहीं हो रहा है कि हर एक चीज अपने विरोधी गुणवाले पदार्थ ही से जन्मती है। अथवा उसका अकुर अपने विरोधी गुण-वाले मे ही रहता है। भले से बुरा और बुरे से भला, क्या ऐसा हम होते नहीं देखते। बडे से छोटा, छोटे से बडा। जब एक घटता है और बिलकुल घट जाता है तो दूसरा उसका विरोधी बढने लगता है। जब वह विरोधी गुणवाला फिर घटा तो पहलेवाला बढने लगता है। क्यों यही चक्र चल रहा है या नहीं ?

शिवी—चल ही रहा है।

सुक०—चीजे मिलती है, फिर अलग होती है, गरम होती हैं फिर ठढी होती हैं। सर्दी से गर्मी और गर्मी से सर्दी क्या रात दिन हम यही ससारचक्र की लीला नहीं देखते हैं और तब भी क्या कहने में हिचक सकते हैं कि पदार्थ अपनी उलटी तरफ ही से बार बार जन्मते हैं। अर्थात् अपने विरुद्ध गुण से ही पुन अपना पहला गुण प्रगट करने लगते हैं। क्या यह अनंत चक्र सदा से नहीं चल रहा है ?

शिवी—हाँ, चला तो आता है।

सुक०—अच्छा तो जैसे जागने का विरोधी सोना है वैसे
जीवन का विरोधी भी कोई पदार्थ है ?

शिवी—है ही।

सुक०—वह क्या है ?

शिवी—यही मृत्यु।

सुक०—ठीक, तब यदि जीवन और मरण दोनों एक दूसरे
विरोधी हैं तो दोनों एक दूसरे से पैदा होते हैं। जीव
मरण ये दो पदार्थ हैं और इन दोनों के बीच दो उ
त्तियाँ मौजूद हैं। जीना, मरना और फिर जन्मना अं
मरना। अथवा मरना और जन्मना और फिर मर
और जन्मना। क्यों है कि नहीं ?

शिवी—है ही।

सुक०—ठीक, पर इस विषय को और भी साफ करने
जरूरत है। निद्रा, जागरण का उलटा है। है कि नहीं

शिवी—है।

सुक०—निद्रा ही से जागरण उत्पन्न होता है या नहीं अं
जागरण से निद्रा आती है या नहीं। इनके पहले जन
मे तो निद्रा से जागरण उत्पन्न हुआ, फिर दूसरे जन्म
जागरण से निद्रा जन्मती है। क्यों स्पष्ट है या नहीं

शिवी—स्पष्ट है।

सुक०—अच्छा तो अब जीवन और मरण के बारे में बतला
हैं कि वे क्या हैं ? मृत्यु क्या जीवन का उलटा नहीं है

शिवी—है।

सुक०—और ये आपस मे एक दूसरे से पैदा होते हैं।

शिवी—निस्सदेह ।

सुक०—तव जिंदे से क्या पैदा होता है ? (जिन्दे का परिणाम क्या है ?)

शिवी—मुर्दा ।

सुक०—और मुर्दे से ? (मुर्दे का परिणाम ?) *

शिवी—जिंदा ।

सुक०—तव यह बात सिद्ध हुई कि तमाम जिंदा चीजे और जिंदे आदमी मुर्दे से जन्मे हैं ।

शिवी—निस्सदेह ।

सुक०—तो अब इसमे क्या कोई सदेह रह गया कि हमारी आत्मा का अस्तित्व परलोक में था ?

शिवी—अभी मेरा बिलकुल सतोप नहीं हुआ है ।

सुक०—अच्छा, और भी स्पष्ट किए देता हू । अच्छा मौत से जिंदगी न हो, मुर्दे से जिंदा पैदा न होते हो, इसमें यदि कुछ सदेह हो भी तो क्या इसमें भी कोई सदेह है कि जो पैदा हुआ वह मरेगा अवश्य ? क्यो इसमें कोई सदेह है ?

शिवी—कदापि नहीं ।

सुक०—अच्छा तो जब सब चीजों का एक न एक उलटा गुण है, सब ही अवस्थाए अपनी एक विरोधी अवस्था को रखती हैं तो मृत्यु के विपय में इस बात का अपवाद क्यों ?

---

* मुर्दे में कीडे पडते तो सबों ने देखे होंगे । फिर मुर्दे से जिंदा पैदा होने का प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद है या नहीं ।

क्या मृत्यु की विरोधी कोई अवस्था आती ही नहीं ? इसी के संबध में प्रकृति के ब्रह्माडव्यापी नियम में अपवाद होने का कारण क्या ?

शिवी—कोई नहीं।

सुक०—क्या मृत्यु से पैदा होनेवाला कोई विरोधी फल नहीं है ?

शिवी—होना तो अवश्य चाहिए।

सुक०—क्या होना चाहिए ?

शिवी—यदि कुछ होना चाहिए तो वह 'पुनर्जन्म' ही है।

सुक०—यदि पुनर्जन्म हुआ तो क्या यही नहीं कहा जा सकता कि वही मरा हुआ फिर जन्मा है ?

शिवी—पुनर्जन्म का अर्थ ही यह है।

सुक०—तब हम लोगों में कोई मतभेद नहीं रहा। जिंदे मुर्दे से पैदा होते हैं और मुर्दे जिंदे से, यह बात निर्विवाद सिद्ध है। अच्छा तो अब हम यह बात भी स्वीकार कर चुके हैं कि यदि हमारी पहली बात सिद्ध हुई तो यही इस बात का भी यथेष्ट प्रमाण है कि मृत पुरुषों की आत्मा पहले कहीं अवश्य थी, जहा से आ कर वह जन्म लेती है।

शिवी—हा, यह तो अवश्य ही सिद्ध है।

सुक०—ठीक, खैर तो अब इस निश्चय में कोई मीन मेख तो नहीं ?

शिवी—नहीं।

सुक०—और भी एक बात सुनो। वह यह है कि एक विरोधी अवस्था अपनी दूसरी विरोधी अवस्था से पैदा —

होती और ब्रह्माड चक्र यों ही घूमता न रह कर सीधा एक ही लाईन में चला जाता, उलट फेर न चलता होता तो हर एक चीज अत को एक ही अवस्था को प्राप्त हो जाती और फिर सृष्टि का चलना असभव हो जाता।

शिवी—सो कैसे ?

सुक०—अच्छा उदाहरण लो। यदि एक विरोधी अवस्था निद्रा को प्राप्त हो और उसकी दूसरी विरोधी अवस्था जागरण का कहीं अस्तत्व न हो तो परिणाम क्या होगा। एक बार ही सदा सर्वदा के लिये, अनंत काल के लिये निद्रा ही निद्रा हो जायगी या नहीं। और हर एक चीज एक दफे मिल कर फिर कभी अलग न हो तो फिर आपस में मिलनेवाली दो चीजें सृष्टि में बाकी काहे को रहने लगी ? एक न एक दिन मिलने और अलग होने के नियम का अत हो जायगा। वैसे ही हर एक जिंदा चीज केवल मरती ही चली जाय (अनत काल से) और कभी पैदा न हो तो क्या एक समय ऐसा नहीं आवेगा जब सृष्टि में जन्म असभव हो जायगा ? सब महास्मशान में परिणत हो कर कब का समाप्त हो गया होता ? तुम यदि यह कहो कि जिंदे मुर्दे से पैदा न हो कर और कहीं से पैदा हुए हैं और मरते रहेंगे, तब भी वही अवश्य सभावी परिणाम से छुटकारा नहीं। अर्थात् कुछ दिनों में मृत्यु सब को ग्रास कर जायगी।

शिवी—हाँ, आपका कहना यथार्थ मालूम होता है।

सुक०—निस्सदेह, ऐसा ही है। इस समय जो सिद्धात ठहराया

गया है वह गलत नहीं है । आदमी मर कर पुन: अवश्य जन्म ग्रहण करता है और उसी मुर्दे से जीवन का संबध है और मृत व्यक्ति की आत्मा अमर है, इसके सिवाय भले आदमी की आत्मा सुखी और बुरों की आत्मा दुखी रहती है ।

शिवी—ठीक है, और भी मुझे एक बात मालूम पडती है । वह यह है कि आप जो इस सिद्धात का प्रतिपादन किया करते हैं कि हमारे यावत ज्ञान पूर्व जन्म से सिलसिलेवार चले आते हैं तो इस समय हमें जा बातें शीघ्र ही ध्यान में आ जाती हैं, उन्हें अवश्य हमने किसी पूर्नजन्म में सीखा होगा । और यदि आत्माएँ पूर्व जन्म में न रहती होंगी तो इस ज्ञान को फिर स्मरणही कौन कर सकता ? अस्तु इस बात का यह दूसरा प्रमाण है कि आत्मा अमर है ।

"आत्मा अमर है, तुमने कह तो दिया" बीचही में शिमी ने रोका " पर इसका तुम्हारे पास कुछ प्रमाण भी है ? क्या क्या प्रमाण हैं, फिर से साफ साफ कह जाओ । मैं अभी तक ठीक ठीक समझा नहीं ।"

शिवी—किसी मनुष्य से यदि सीधी तरह से प्रश्न करोगे तो जवाब भी सही सही पाओगे । इस युक्ति को तो कोई काट सकता ही नहीं । पर एक बात है, यदि उत्तर-दाता यथार्थ ज्ञानी और युक्ति के जाननेवाला न हुआ तो वह समझा नहीं सकेगा । हा, एक बात और है । प्रश्न-

कर्ता यदि यों न समझे तो रेखागणित के रेखाकन*द्वारा उसका सतोप किया जा सकता है ।

सुक०—अच्छा जाने दो । इस तरह से तुम्हारा सतोप न होता हो, तो लो दूसरे उपाय से इसे समझाने की कोशिश करता हूँ । मै जहाँ तक समझा हूँ, तुम्हें इस बात मे सदेह है कि 'ज्ञान' पूर्व्व जन्म की स्मृति क्यों कर हो सकता है ?

शिमी—नहीं, सदेह तो कुछ ऐसा नहीं है, पर मैं एक बार दुबारा इस विषय की युक्तिया ध्यान पर चढा लेना चाहता हूँ । शिवी ने जो दो चार बातें कहीं उन्हीं से मुझे आपकी कही हुई पुरानी बाते ध्यान मे आ गई हैं और सतोष भी हो गया है । पर आपके मुँह से इसकी युक्ति सुनने की बडी लालसा है ।

सुक०—अच्छा तो अब आरभ कर दो । अच्छा इस बात में तो कोई सदेह है ही नहीं कि हमें जो कुछ ज्ञान याद आता है, वह याद आने से पहले हमने कभी सीखा जरूर था । जब किसी बात को देख या सुन कर या और किसी इद्रियों से अनुभव कर आदमी कहता है कि "हा यह अमुक वस्तु है" तो इससे मतलब यही निकला कि उस चीज को उसने पहले कभी देखा या सुना था

---

* सुकरात ने एक बार एक अपढ गुलाम को रेखागणित की रेखाएँ खींच खींच कर पुर्नजन्म और आत्मा के अमरत्व का विषय समझाया था, उसीका हवाला यहा शिवी देता है ।

और उसे देखने सुनने की छाप या स्मृति उसके मन
रहती है, उसे ही पुन. देखने पर वह छाप याद आ जात
है और तब वह सहसा कह उठता है "हाँ यह तो अमुव
वस्तु है"। इसके सिवाय किसी अन्य वस्तु को देख क
भी अन्य वस्तुएँ याद आ जाया करती हैं।

शिमी—सो कैसे ? यह आखिरी बात मैं नहीं समझा।

सुक०—देखो, मैं खुलासा किए देता हूँ। अच्छा, एक मनुष्य के सबध का ज्ञान और वीणा बजाने के सबध का ज्ञान दोनों अलग अलग दो चीजें हैं न ?

शिमी—नि सदेह।

सुक०—अच्छा अब यदि कोई वीणा बजानेवाले उस्ताद के हाथ की वीणा उसके शागिर्द देख लें तो कहते हैं कि "यह उस्ताद की वीणा है"। वीणा को देख कर उन्हें अपने उस्ताद की याद आ जाती है। इसी का नाम है 'पूर्व-स्मृति' है। जैसे कि तुम दोनों शिमी और शिवी हमेशा एक सग रहते हो, सो यदि तुममें से एक को कोई कहीं अकेला देखेगा तो जरूर पूछेगा कि दूसरा कहाँ है। एक को देख कर दूसरे की याद आई या नहीं ? इस प्रकार की स्मृति के सैकडों दृष्टात दिए जा सकते हैं।

शिमी—हाँ, सो तो ठीक है।

सुक०—यही 'पूर्वस्मृति' है। यदि समय पा कर कोई आदमी किसी आदमी को भूल जाता है तो उसकी कोई चीज या प्रतिकृति देख कर उसे उसकी याद आ जाती है।

शिमी—किस तरह ?

सुक०--यदि तुम्हारे घोड़े की तस्वीर देख कर कुछ दिनों बाद, तुम्हारी याद आ जाय, या तुम्हारी तस्वीर देख कर शिमी की याद आवे तो कोई अश्चर्य्य की बात तो है नहीं, और यह सभव भी है ।

शिमी--बेशक ।

सुक०--तो मतलब यह निकला कि ' पूर्व्वस्मृति ' सदृश्य और विसदृश्य दोनों प्रकार की चीजों से होती है ।

शिमी--होती है ।

सुक०—अच्छा, जब सदृश पदार्थ को देख कर किसी को वैसी ही चीज की याद आती है, तो साथ ही क्या यह भी विचार उत्पन्न नहीं होता कि "यह चीज उसी के ऐसी है या उससे कुछ भिन्न है," ठीक ठीक वैसी ही है या नहीं। इस प्रकार का संदेह भी कभी कभी होता है या नहीं ?

शिमी०—होता है ।

सुक०—अच्छा, तो अब यदि यह बात ठीक है, तो देखो हम लोग ' समानता की स्थिति ' को भी मानते हैं या नहीं । समान चीज से तात्पर्य्य लकड़ी के टुकडे या पत्थर के ढोकों से नहीं है, समानता से मतलब समानता की सत्ता अर्थात् उसके अमूर्त भाव से है। क्यों सारी सत्ताओं की तरह समानता की सत्ता या ' बराबर की सत्ता' भी कोई पदार्थ है या नहीं ?

शिमी—बेशक है ।

सुक०—अच्छा तो तुम क्या इस 'समानता की सत्ता' के

अस्तित्व में विश्वास करते हो या नहीं।

शिमी—अवश्य करता हूँ।

सुक०—यह विश्वास या इसका ज्ञान तुमने कहाँ से सीखा ? समान चीजों ही को देख कर सीखा है या नहीं ? लकडी, पत्थर तथा अन्य वस्तुओं ही को देख कर न तुमने 'बराबरी की सत्ता' का ज्ञान प्राप्त किया है या और किसी तरह से ?

शिमी—इसी प्रकार से।

सुक०—अच्छा तो इसी से 'बराबरी की सत्ता' का ज्ञान हमें प्राप्त हुआ और यह 'बराबरी की सत्ता' उन बराबरवाली चीजों से एक अलग पदार्थ है या नहीं ?

शिमी—मैं ठीक समझा नहीं।

सुक०—अच्छा और खुलासा किए देता हूँ। कभी कभी किसी कारण से समान नापवाले पदार्थ (लकडी पत्थर इत्यादि) कभी छोटे या कभी बड़े दिखाई देने लगते हैं या नहीं, पर रहते हैं वे सदा वैसे ही *।

शिमी—निस्सदेह।

सुक०—पर 'बराबर की सत्ता' जो पदार्थ है वह क्या कभी छोटा या बडा, समान या असमान दिखाई देता है या समझ में आता है।

शिमी—नहीं, कभी नहीं।

सुक०—तो इससे क्या यह साबित नहीं हुआ कि 'समान

---

* जैसे कि परछाईं में एक छड़ी लम्बी या सिकुड़ी हुई दिखाई देती है, पर रहती है वैसी ही जैसा वास्तव में थी।

चीजें' और 'समान सत्ता' दोनों एक चीज नहीं हैं, भिन्न भिन्न पदार्थ हैं।

शिमी—ठीक साबित हुआ।

सुक०—पर मजा यह है कि तुमें इस 'समान सत्ता' का ज्ञान 'समान या बराबरीवाली चीजों ही' को देख कर हुआ है और फिर भी वह 'समान सत्ता' इन चीजों' से एक अलग पदार्थ है।

शिमी—बहुत ठीक।

सुक०—और यह भी चीजों ही के नाप जोख को देख कर हुआ है कि ये चीजें आपस में समान है या असमान हैं।

शिमी—निस्सन्देह।

सुक०—खैर तो इसका कुछ ऐसा भेद नहीं है। जब तक एक चीज को देख कर दूसरी चीज याद आती रहे हमें पूर्वस्मृति मानना पड़ेगा, चाहे ये दोनों चीजे एक सी हों या न हों।

शिमी—ठीक।

सुक०—अच्छा तो जिन समान या बराबरवाली चीजों का हम अभी जिक्र कर रहे थे वे क्या 'बराबरी की सत्ता' का भाव रखती हैं? क्यों 'बराबर की सत्ता' 'और बराबर की चीजे, दोनों मे बढ कर कौन है?

शिमी—'बराबर की सत्ता', क्योंकि वह एक ऐसा अपूर्व भाव है, जो चीजों की तरह बराबर रह कर भी कभी अस्तव्यस्त नहीं दिखाई देता।

सुक०—अच्छा तो इस विषय में हमारे तुम्हारे कोई मतभेद नहीं रहा। एक आदमी किसी चीज को देखते ही सोचने लगता है 'हा, यह चीज जो मैं देख रहा हूँ, करीब करीब उस चीज की तरह है, पर ठीक वैसी नहीं है। उससे कुछ घट कर है, वह चीज यह नहीं हो सकती उससे हेय है, घटिया है।' जब एक आदमी यह कहता है तो इससे यही तात्पर्य्य निकला कि जिस चीज से वह उक्त चीज को घटिया ठहरा रहा है उस बढिया चीज को उसने पहले कभी जरूर देखा होगा जिससे मिलान करके वह कहता है कि 'हा यह चीज है तो उसी के ऐसी पर यह वह चीज नहीं हो सकती, उससे घटिया है'।

शिमी—ठीक।

सुक०—अच्छा तो 'समान चीज' और 'समान सत्ता' के विषय में भी क्या हमारे चित्त में वैसे ही भाव नहीं उठते?

शिमी—उठते हैं।

सुक०—तो तात्पर्य्य यह निकला कि 'समान' चीजों को देखने के पहले हमें 'समान सत्ता' का ज्ञान अवश्य था, पर समान चीजों को देख कर हमें यह भी अनुभव हुआ कि ये समान चीजें 'समानता' या 'समान सत्ता' जो पदार्थ है उसके ऐसी होने की चेष्टा करती हैं पर उस (उस सत्ता) की बराबरी नहीं कर सकतीं।

शिमी—निस्संदेह।

सुक०—अच्छा तो हम यह भी बात मानते हैं कि समानता

का ज्ञान हमें इंद्रियों ही द्वारा हुआ है, और किसी प्रकार से नहीं।

शिमी—हाँ, इस समय के तर्क के लिये ऐसा मानना ही पड़ेगा।

सुक०—चाहे जो हो, यह तो मानना ही पड़ेगा कि सारी चीजें जिनका हमें ज्ञान होता है, 'समान सत्ता' के ऐसी होना चाहती हैं पर हो नहीं सकतीं, क्योंकि उससे उतर कर हैं, घटिया हैं।

शिमी—निस्सदेह।

सुक०—तो इससे यह साफ प्रगट हो रहा है कि इंद्रियों से ज्ञान प्राप्त होने के पहले, हमें 'समानता' या 'समान सत्ता' का ज्ञान जरूर था, नहीं तो हम फिर दो समान चीजों को देखते ही कैसे समझ जाते हैं कि ये दोनों चीजें समान हैं और 'समान सत्ता' के निकट पहुँचने की चेष्टा करती हुई भी उससे नीचे हैं, उतर कर हैं।

शिमी—ठीक।

सुक०—अच्छा तो इंद्रियाँ हमें जन्मग्रहण करते ही साथ ही साथ प्राप्त होती हैं।

शिमी—निस्सदेह।

सुक०—और इस 'समान सत्ता' का ज्ञान हमें इन इंद्रियों के प्राप्त होने के पहले से है, यह मानना पड़ेगा।

शिमी—अब तो मानना ही पड़ा।

सुक०—तो अब स्पष्ट हो गया कि जन्मग्रहण करने के पहले से हमें यह ज्ञान है।

शिमी—निस्सदेह ।

सुक०—अच्छा तो अब यदि यह ज्ञान हमें जन्मग्रहण करने के पहले प्राप्त हुआ था और इस ज्ञान को लिए हुए हम जन्मे तो जन्मते समय और इससे पहले भी हमे समान असमान, बडे छोटे, इन सारी सत्ताओं का ज्ञान अवश्य था । हम केवल समानता ही के विषय में नहीं कहते । क्या 'समानता की सत्ता', क्या 'सौंदर्य्य की सत्ता' 'क्या श्रेष्ठता की सत्ता', क्या न्याय या पवित्रता की सत्ता, सब के विषय में यही बात कही जा सकती है। तात्पर्य्य यह कि हमने अब तक जितनी चीजों का वर्णन किया है सबकी 'वास्तविक सत्ता' इसी कोटि में आ जाती है । थोड़े मे यह कह सकते हैं कि इन सारी 'वास्तविक सत्ताओं' का ज्ञान हमें जन्मग्रहण करने से पहले प्राप्त था।

शिमी—ठीक !

सुक०—तब परिणाम यह निकला कि हम सदा इस पूर्व-स्मृति को सग लिए हुए जन्मते हैं और यदि स्मृति के छाप के मिलते ही उसे भूल नहीं जाते तो यह भी स्पष्ट है कि जन्म भर यह स्मृति हमें याद रहती है, क्योंकि स्मृति का अर्थ यही है कि मिले हुए ज्ञान को याद रखना-भूल न जाना—भूल जाने से तात्पर्य्य तो ज्ञान नष्ट होने ही से है या और कुछ ?

शिमी—नहीं, ज्ञान नष्ट हो जाने ही को भूल जाना कहते हैं।

सुक०—पर अच्छा यदि यह बात मान भी ली जाय कि जन्म ग्रहण करने पर हमें पहले का ज्ञान भूल जाता है

और जन्म ग्रहण करके फिर इंद्रियों को काम में ला कर हमें वह ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तो इससे भी तात्पर्य्य यही निकला कि हम पहले ही के सीखे हुए पाठ को पुन. स्मरण करते हैं। हम जो विद्या प्राप्त करते हैं वह हमारी पूर्वजन्मार्जित है, अथवा यों कहो कि हम को अपनी ही पुरानी विद्या याद आ गई है।

शिमी—निस्सदेह !

सुक०—क्योंकि हम .देख चुके हैं कि देख कर या सुन कर या और किसी इंद्रिय द्वारा जब हमें किसी भूली हुई ऐसी चीज याद आ जाती है जिसका कुछ सबध दिखने-वाली चीज से होता है तो हम दो में एक बात तो जरूर सच मानेंगे—या तो हम इस ज्ञान को लिए हुए जन्म ग्रहण करते हैं और जन्म भर यह ज्ञान हमें बना रहता है, या जन्म ग्रहण करने के बाद हम जिसे विद्या सीखना कहते हैं वह केवल पूर्वस्मृति अर्थात् पहले सबक को याद करना है।

शिमी—आपका कहना बहुत ठीक है।

सुक०—अच्छा तो दोनों मे तुम किसे ठीक समझते हो ? हम पूर्वस्मृति को सग लिए हुए जन्म ग्रहण करते हैं या यहाँ आकर पूर्व जन्म की भूली हुई बात हमें पुन याद आती है, और इसी का नाम विद्या प्राप्त करना है ? कौन सी बात तुम्हें ठीक जँचती है ?

शिमी०—इस समय तो मैं ठीक ठीक नहीं कह सकता।

सुक०—अच्छा जाने दो। इस दूसरी बात पर अपनी राय

दो। अच्छा जिस बात को आदमी जानता है, उसका पूरा पूरा सटीक वर्णन कर सकता है या नहीं ? क्यों इस बारे में क्या कहते हो ?

शिमी—बेशक, वर्णन कर सकता है।

सुक०—अच्छा तो जिन विषयों पर हम बात चीत कर रहे हैं, उन विषयों को क्या चाहे जो कोई यथातथा ठीक ठीक वर्णन कर सकता है ?

शिमी—क्या कहूँ भाई साहब। परमात्मा करे हम ऐसे होते, पर बात असल में यह है कि कल इस समय तक कोई भी एक ऐसा प्राणी जिंदा नहीं मिलेगा जो यथातथा जैसा चाहिए इन बातों का वर्णन कर सके। *

सुक०—तो तुम्हारी राय में हरएक आदमी इन बातों को नहीं जानता ?

शिमी—निस्सदेह।

सुक०—तो वे लोग केवल पहले सीखी हुई विद्या ही को याद कर के उसे कह सकते हैं।

शिमी—बेशक।

सुक०—तो फिर उनकी आत्मा को उक्त ज्ञान कहाँ से प्राप्त हुआ। जन्मग्रहण करने के बाद हुआ, ऐसा तो कह नहीं सकते।

शिमी—नहीं।

सुक०—तो जन्म ग्रहण करने के पहले हुआ था।

---

* तात्पर्य सुकरात से है।

विश्वास हो गया होगा कि इस जन्म से पहले भी हमारी आत्मा विद्यमान थी।

शिवी—नहीं भाई मेरा ठीक ठीक सतोष नहीं हुआ है। माना कि तुमने यह सिद्ध कर दिया कि जन्म के पहले यह आत्मा विद्यमान थी, पर यह सिद्ध नहीं हुआ कि मरने के बाद भी इसका अस्तित्व रहेगा, आम लोगों को यही तो वडा भारी खटका है कि मरने के वाद आत्मा या प्राणवायु वायु में मिल जायगी और फिर कुछ रह नहीं जायगा। यदि थोडी देर के लिये यह भी मान लें कि अन्य तत्त्वों से आत्मा उत्पन्न हुई और उन तत्त्वों में विद्यमान थी और शरीर मे प्रविष्ट हुई, पर यह भी तो दिखता है कि शरीर के साथ ही वाहर निकलते ही उसका भी नाश हो जाता है। यह तो आधा प्रमाण दिया गया है कि जन्म लेने के पहले हमारी आत्मा मौजूद थी। अव यह प्रमाण पूरा तो तब हो जब यह भी सिद्ध कर दिया जाय कि मरने के बाद भी आत्मा रहेगी।

सुक०—अरे भाई शिवी, तुम इतनी जल्दी भूल गए। इसका प्रमाण भी दे चुका हूँ। पहले जो तय हो चुका है उसका और इस तर्क का जो तुम अभी कह रहे हो मिलान करो और " सारे प्राणधारी मृत्यु ही से पुन जन्मते हैं " उस युक्ति को याद करो तो इसका साफ प्रमाण मिल जायगा। यदि आत्मा पहले किसी अवस्था में थी और यदि वह पुन शरीर धारण करती और प्रगट

होती है, तो इसके पहले वह एक प्रकार की मृत्यु की अवस्था में थी और मृत्यु ही से फिर जीवन की अवस्था में आई तो क्या फिर मृत्यु के बाद किसी अवस्था में नहीं रहेगी। न रहेगी तो फिर पुन जन्मेगी कहाँ से ? सो ये बातें तो पहले कही जा चुकी हैं। पर मैं समझता हूँ कि सायद बच्चों की तरह तुम्हें इस बात का बडा डर है कि शरीर से आत्मा निकलते ही वायु से उड कर न जाने कहाँ की कहाँ चली जायगी। शायद प्राण छोड़ते समय खूब जोर से आँधी चलती हो, तब तो फौरन ही आत्मा आँधी से उड कर छिन्न भिन्न हो जाजायगी ? शायद यह हवा में मरने से कहीं ठिकाना भी लगता। क्यों ?

इस पर शिवी हँसता हुआ कहने लगा 'अच्छा भाई सुकरात, थोड़ी देर के लिये यही मान लो कि हम डरते हैं तो हमारे भय को दूर कर दो। शायद हम लोग खुद नहीं डरते, हमारे अदर एक डरपोक बच्चा है जो इसे हौवा समझ कर डर रहा है, सो अब हमें यही चेष्टा करनी चाहिए जिस में वह समझ बुझ कर मौत से डरना छोड दे।'

सुक०—हाँ, ठीक है, इस हौवे को भगाने का मत्र नित्य पढना होगा, जब तक कि यह भाग कर लोप न हो जाय।

शिवी—क्या कहें, भाई सुकरात ! तुम तो अब हम लोगों से नाता तोड़ कर चले जा रहे हो, सो तुम्हारे ऐसा इस

मन्त्र के पढानेवाला दूसरा और कौन मिलेगा ?

सुक०—सो क्या ? क्या इस ससार में नेक आदमी नापैद हैं ? 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' खोजो, लाखों मूर्खों में कोई एक ऐसा बुद्धिमान भी मिल ही जायगा। जब द्रव्य खरचने और मेहनत करने पर कटिबद्ध हो जाओगे तो एक मन्त्रोपदेशक का मिल जाना भी कोई आश्चर्य नहीं, पर भाई वास्तव में बात तो; यह है कि वह मन्त्रोपदेष्टा भी तुम्हारे ही अदर है। खोजोगे तो उसे अपने अदर ही पाओगे। "दिल के आयने में है तस्वीर यार, यों जरा गरदन झुकाओ देख लो"।

शिवी—खैर वह तो देखा जायगा। अब हमने अपनी बहस का सिलसिला जहाँ से छोड़ा है, वहीं से हमें फिर शुरू करना चाहिए।

सुक०—हाँ, मैं तैयार हूँ।

शिवी —और मैं भी।

सुक०—अच्छा तो हमने अत में यह कहा था कि "आत्मा के छिन्न भिन्न होने, टूक टूक हो कर वायु मे उड़ जाने का भय है" तो अब यह देखना है कि ऐसी कौन कौन सी चीजें ससार में हैं जो छिन्न भिन्न हो सकती हैं। अब यदि आत्मा भी इन चिजों की श्रेणी में आ जाय तो वह भी छिन्न भिन्न होनेवाली मानी जायगी, यदि नहीं आई तो नहीं मानी जायगी।

शिवी—ठीक।

सुक०—अच्छा तो अब जरा विचार करो। देखो जो चीजें

पहले मिली हुई होती हैं या कई पदार्थों से मिल कर बनती हैं, उन्हीं की समय पा कर छिन्न भिन्न होने की आशका या सभावना है और जिस क्रम से मिल मिल कर बनती हैं उसी क्रम से अलग अलग हो कर लय को प्राप्त हो जाती हैं। जो चीजें बहुत सी चीजों से मिल कर नहीं बनतीं वे इस प्रकार से छिन्न भिन्न हो कर लय भी नहीं हो सकतीं। क्यों यह बात ठीक है, या नहीं ?

शिवी--बहुत ठीक।

सुक०--और भी देखो। जो चीजें किसी चीज से मिल कर नहीं बनीं, उनकी पहिचान यही है कि वे सदा एकरस रहती हैं। अदलती बदलती नहीं, और जो चीजें बदलती रहती हैं सदा एकसाँ नहीं रहतीं उन्हें हम कह सकते हैं कि ये कई चीजों से मिल कर बनी हैं।

शिवी--हाँ, बात तो ऐसी ही है।

सुक०--अच्छा तो अब पहले की बात याद करो। अपनी बहस में हमने जिस पदार्थ को 'स्वयम सत्ता' के नाम से सबोधन किया था वह सदा एकरस रहती है या अदलती बदलती रहती है ? 'समान सत्ता' 'सौंदर्य सत्ता' या अन्य भी सारी तरह की 'सत्ताएँ' क्या कभी बदलती हैं ? या हर हालत में एकरस ज्यों की त्यों बनी रहती हैं ?

शिवी--नहीं सदा एक रस बनी रहती हैं, यह तो पहले ही तय पा चुका है।

निराकार अर्थात् अदृश्य ठहरी।

शिवी—बेशक।

सुक०—अच्छा अब याद करो। एक जगह कहा जा चुका है कि जब आत्मा शरीर के साथ मिल कर सत्य के अनुसंधान में तत्पर होती है अर्थात जब आँख, नाक, कान या अन्य किसी इंद्रिय द्वारा 'सत्य ज्ञान की खोज करना चाहती है तो वह उन्हीं अनित्य वास्तुओं के प्रति खिंच कर चली जाती है अर्थात् उसकी बुद्धि इन्हीं नाशमान, सदा बदलनेवाली चीजों में भ्रमण करने लगती है और एक मतवाले अंधे मनुष्य की तरह वह अँधेरे में मारी मारी फिरती है। उसका विवेक भ्रष्ट हो जाता है, क्योंकि अनित्य वास्तुओं के संसर्ग का यही फल है। * पर जब वह स्वयं अपनी सत्ता में रह कर (आत्मस्थ हो कर) इस खोज में लगती है तो परिणाम में वह खिंच कर वैसे ही शुद्ध, निर्म्मल, नित्य और अविनाशी पदार्थ के पास जा पहुँचती है जिसके ऐसी उसकी शुद्ध-सत्ता (आत्मा)

---

* इस सिद्धांत को गीता में कृष्ण भगवान् ने खूब स्पष्ट कहा है यथा—

" ध्यायतोहि विषयान् पुंस. संगस्तेषु जायते

संगात्संजायते काम कामात् क्रोधेभिजायते

क्रोधात् भवति संमोह संमोहात स्मृति विभ्रम

स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति "

विषयों (इंद्रियों के अनित्य भोग्य पदार्थों) के ध्यान का परिणाम दिखाया है, बाकी का अर्थ स्पष्ट ही है।

है, और तब वह अनंत काल के भ्रमण से छूट कर इसी शुद्ध-सत्ता की अवस्था में निवास करने लगती है, क्योंकि उसने अविनाशी का पीछा किया था और यह अवस्था—आत्मा की यही अवस्था—सत्य ज्ञान की अवस्था कही जा सकती है। †

शिवी—निस्सदेह भाई सुकरात, तुम्हारा कहना बहुत ठीक है।

सुक०—अच्छा तो तुमने पहले की और अबकी बार की सारी युक्तियाँ तो सुनी हैं अब यह तो बतलाओ कि 'आत्मा किस प्रकार की वस्तु से अधिक सादृश्य रखती है?'

शिवी—यह भी क्या अब खुलासा करना है! इतने सिर खपाने के बाद तो एक निरा मूर्ख भी कह सकता है कि 'आत्मा नित्य और अविनाशी पदार्थों ही से सादृश्य रखता है, विनाशी और अनित्य से नहीं।

सुक०—अच्छा, और शरीर?

शिवी—शरीर विनाशी और अनित्य है।

सुक०—अब और एक तरह से समझता हूँ। देखो जब शरीर और आत्मा, दोनों का योग होता है तो वह इस प्रकार होता है कि प्रकृति माता एक को आज्ञाकारी दास और दूसरे को आज्ञा में चलानेवाला स्वामी बना कर प्रगट करती है। अच्छा तो तुम क्या यह बात मानते हो कि दैवी या शुद्ध सत्ता स्वभाव ही से आज्ञा में चलानेवाली

---

† "निर्द्वंद्वो नित्य सत्वस्थो निर्योग क्षेम आत्मवान्"—गीता।

और पार्थिव वस्तु निर्बल और आज्ञा में चलनेवाली या दास तुल्य रहती है ?

शिवी—हाँ मानता हूँ।

सुक०—अच्छा तो अब आत्मा कैसे पदार्थ से सादृश्य रखती है।

शिवी—यह तो स्पष्ट ही है। आत्मा दैवी या शुद्ध सत्ता और शरीर पार्थिव अर्थात् अशुद्ध पदार्थ है।

सुक०—अच्छा तो अब सारे वाक्यांतर का तात्पर्य्य यह निकला कि "आत्मा शुद्ध, दैवी,* नित्य, पूर्ण, अविनाशी, अछिन्न, अमिश्रित और एकरस सनातन है, तथा शरीर विनाशी, अपूर्ण, मिश्रित और नित्य बदलनेवाला है। अब इसकी पुष्टि में क्या और भी किसी प्रमाण की आवश्यकता है ?

शिवी—नहीं।

सुक०—तो क्या इससे यह साफ सिद्ध नहीं हो रहा है कि शीघ्र छिन्न भिन्न हो कर नाश हो जाना शरीर ही का स्वभाव है, आत्मा का कदापि नहीं ?

शिवी—निस्संदेह।

सुक०—अच्छा, एक बात और सुनो। जब कोई आदमी मर जाता है तो उसका दृश्यमान भाग अर्थात् शरीर जो दृश्य जगत में पड़ा रहता है, और जिसे हम 'लाश' कहते हैं,

---

* दिव्य गुण सम्पन्न (Divine)

जो गलने सड़नेवाली चीज है, वह एक बार ही एका एक गल सड़ नहीं जाता। कुछ देर तक वह ज्यों का त्यों रहता है और यदि कोई आदमी भरपूर जवानी में और नीरोग अवस्था में एकाएक मर जाता है तो बहुत देर तक शरीर बिगड़ता नहीं। यदि प्राचीन मिश्र देश की रीति के अनुसार मसाला भर कर रखा जाय तो वह बहुत दिनों तक ताजा बना रहता है और यदि कभी गल सड़ जाता है तो उसका कुछ भाग तो जैसे अस्थि इत्यादि लगभग अविनाशी कहला सकता है। क्यों ठीक है कि नहीं ?

शिवी—ठीक।

सुक०—अच्छा जब नाशमान शरीर के कुछ भाग इतने दिनों तक बने रहते हैं तो क्या वह आत्मा जो कि अदृश्य है, जो अपने ऐसे शुद्ध निर्मल अदृश्य आनदधाम को प्रयाण करती है, जो परम पवित्र अनंत ज्ञानी परमात्मा के समीप जाती है जहाँ यदि भगवान की मरजी हुई तो मेरी आत्मा भी शीघ्र ही जायगी—वह आत्मा जो स्वभाव ही से शुद्ध और निर्म्मल ज्योति से पूर्ण है, वह हवा के उड़ाए उड़ जायगी और शरीर को छोड़ते ही छिन्न भिन्न हो कर नष्ट हो जायगी, यह बात क्या मानी जा सकती है ? लोगों के इस कहने पर क्या तुम्हें विश्वास होता है ? नहीं भाई शिवी और शिमी, ऐसा कदापि होने का नहीं। सुनो, मैं बतलाता हूँ उस आत्मा की (जो शरीर छोड़ते समय शुद्ध निर्म्मल बनी रहती

है) क्या अवस्था होती है । जो आत्मा अपने जीवन काल में शरीर सबधी भोगों में लिप्त नहीं होती, मरते समय शरीर के मल का तनिक दाग भी उसमें नहीं रहता, क्योंकि वह इन मलपूर्ण पदार्थों से जन्म भर घृणा करती आई है और सदा अपने आप में रहने के सबक को रटती रही है, अर्थात् उसने ज्ञान—सत्यज्ञान—से ही प्रीति जोड़ी थी और वह हमेशा मरने की तैयारी में लगी रही थी । क्यों इस प्रकार का जीवन बिताना क्या मरने की तैयारी करते रहना नहीं है ?

शिवी—बेशक है ।

सुक०—तो फिर क्या वह आत्मा जो कि सदा से उक्त शुद्ध अवस्था में रहती आई है उस अदृश्य परम पवित्र अवस्था को नहीं प्राप्त होती ? बेशक होती है, और सारी वासना, भय, मूर्खता, चिंता, उद्वेग आदि से छूट कर (जो कि मनुष्यजीवन के पीछे सदा लगे ही रहते हैं) वह आनंदित हो जाती है । तात्पर्य्य यह कि वह स्वर्ग में देवताओं के सग (या ब्रह्मऋषियों के सग) रह कर निर्मल आनद का उपभोग करती है । उपदेश पाए हुए (ईश्वराभिमुखी प्रतिभावाले) सारे जीव भी इसी पदवी को प्राप्त होते हैं ।

शिवी—निस्सदेह !

सुक०—अब यदि सदा शरीर पर ममता रखने और शरीर ही की सेवा में लगे रहने के कारण शरीर छोड़ते समय शुद्ध न रहनेवाली और इंद्रियों की वासना और

चरितार्थता ही को सार सर्व्वस्व और शरीर ही को एक मात्र उपासनीय समझनेवाली, तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध और आहार, निद्रा मैथुन में हमेशा लगी हुई—अदृश्य आत्म सत्ता और केवल ज्ञान और बुद्धि द्वारा समझ में आनेवाले ब्रह्म ज्ञान से सौ सौ हाथ दूर भागने वाली—क्या ऐसी आत्मा कभी शरीर छोड़ते समय शुद्ध और निर्मल रह सकती है ?

शिवी—नहीं, कदापि नहीं। दृश्यमान जड़ता की उस पर छाप पड जाती है, निरतर इस जड शरीर की ही उपासना करते करते जडता उसका स्वभाव हो जाती है।

सुक०—बहुत ठीक समझे। और भी एक बात है। जड़ता का यह गुण है कि वह बोझीली, भारी, पार्थिव और आँखों से दिखनेवाली हो, और इसी बोझे के कारण आत्मा दब कर पुन इस दृश्यमान जगत में खिच कर चली आती है (उपर उठने नहीं पाती)—क्योंकि अदृश्य जगत से उसे भय लगता है—और वह श्मशान या कब्र-स्तानों में भटकती फिरती है, जहाँ इसकी छाया को कभी कभी कोई देख भी लेता है। ये उन्हीं आत्माओं की छाया या भूत होते हैं जो शरीर त्यागते समय अशुद्ध थीं और अब तक जडता के सग लगी लगी डोलती हैं और यही कारण है कि वे कभी कभी दिखाई भी दे जाती हैं।

शिवी—हाँ, ऐसा होना सभव है।

सुक०—केवल सभव नहीं, निश्चय है। ये सब पापियों की आत्माएँ होती हैं, पुण्यात्माओं की नहीं, और इसी कारण

कुछ भी परवाह करते हैं और शरीर के बनाव शृंगार मे अपनी आयु नहीं गँवाते, वे ऐसे (दुष्टात्मा) आदमियों को दूर ही से हाथ जोड देते हैं। उनका सग नहीं करते और न उनकी राह पर चलते हैं। वे खूब जानते हैं कि 'ये लोग आँख मूँदे किधर जा रहे हैं, मानो कुछ जानते ही नहीं"। ऐसे शुद्धात्मा जन केवल 'सत्य ज्ञान' को अपना नेता, राह दिखानेवाला मान कर उसी के पीछे चलते हैं और यह उन्हें चाहे जहाँ ले जाय, वेखटके चले जाते हैं। उन्हे निश्चय रहता है कि ज्ञान के वतलाए हुए मार्ग से डिगने में वे अपने गतव्य स्थान शुद्धि और मोक्ष, को कभी प्राप्त नहीं हो सकते।

शिवी—सो कैसे ?

सुक०—सुनते चलो। विद्या के प्रेमी जानते हैं कि जव ज्ञान के मार्ग पर आत्मा पैर वढाती है, उस समय वह जड शरीर के मोह से जकड़ी रहती है। अपने आप वह ध्यान धारणा करने में नितात असमर्थ रहती है। सिवाय अपने कैदखाने के जँगले के भीतर से (शरीर से) झाँकने के उसे और सहारा नहीं रहता और अज्ञान के अधकार में वह टटोलती चलती है। इस अवस्था में जव वह आत्मज्ञान का पल्ला पकड पाती है, तो उसके ज्ञानरूपी नेत्र खुलते हैं और कुछ कुछ रोशनी कैदखाने के भीतर आने लगती है, जिससे उसे सुझाई देने लगता है कि इस कैदखाने की सव से भयानक चीज 'विषय वासना" है। यह आत्मा स्वय अपने आप वँधी हुई

है। अपने हाथ से अपने पैरों में बेड़ी डाले हुई है। विद्या के प्रेमी खूब जानते हैं कि जिस समय ज्ञान और आत्मा की पहली मुलाकात होती है उस समय आत्मा की यही हालत रहती है। अब ज्ञान उस बँधी हुई आत्मा को धीरे धीरे पुचकारता और साहस दिलाता हुआ उसे कैदखाने से छुडाने की चेष्टा करता है। वह, उसे दिखाता है कि आँख, कान, तथा अन्य इद्रियों के विषय सब धोखे की टट्टी हैं और कान में धीरे से समझाता रहता है कि इन विषयों से अलग रहो। ऐसे ही जब कभी इनसे काम लेने में विवश हो तभी इनका सग करो, पर उस समय भी इनका तनिक विश्वास न करो। केवल अपने आप मे स्थित रहने की आदत डालो। अपने आप ही का विश्वास रक्खो। अपने आप ही के भीतर जो जीवन का स्रोत है उसी पर लक्ष्य रक्खो और यह खूब निश्चय समझो कि जितनी चीजें अदल बदल होनेवाली हैं और जिनका बोध अन्य वृत्तियों द्वारा प्राप्त होता है वे सब नि सार है। ये चीजें दृश्यमान और इद्रियों द्वारा बोधगम्य होती है। यही इनकी पहचान है पर तुम अपने आप अदृश्य और बुद्धि द्वारा बोधगम्य हो। सच्चे ज्ञानी की आत्मा समझती है कि इस मोक्ष अर्थात् कैदखाने से छूटने के मार्ग से हटना नहीं चाहिए और इसलिये ज्ञान के उपदेशानुसार यथासम्भव, राग, द्वेष, इच्छा, भय इन सबों से दूर रहती है, क्योंकि उसे इस बात का पता लग जाता है कि जब

जब इस शांति का रस वह एक बार चख चुकती है तो वह फिर ज्ञान को दृढता से थाम लेती है और उसी के बतलाए हुए मार्ग पर चलने लगती है। उसे सत्य, वास्तविक परम पवित्र ज्ञान-सत्ता से परम प्रीति हो जाती है। इसलिये वह उक्त प्रकार का पवित्र जीवन व्यतीत करती हुई ससार में जीने में भी कोई हर्ज नहीं समझती। उसे इस बात का पक्का निश्चय रहता है कि मरने के बाद उसे अपने स्वभाव के अनुसार लोक की प्राप्ति होगी और मनुष्य शरीर के सारे दु खों से उसका छुटकारा हो जायगा। अब देखिए भाई साहब ! जो आत्मा इस प्रकार की अवस्था में पाली पोसी गई और शिक्षित की गई हो उसे क्या कभी इस बात का भय हो सकता है कि शरीर छोडते ही उसकी धज्जिया उड जॉयगी अथवा राख की तरह वह वायु में उड जायगी अथवा उसका अस्तित्व कहीं रहेगा नहीं ?

शिवी—नहीं, आप ही का कहना यथार्थ है।

इसके बाद बहुत देर तक सन्नाटा रहा। स्वय गुरुजी अपनी ही बतलाई हुई युक्तियों के ध्यान में ऐसे लवलीन हो गए कि हम सब लोगों के मुह से थोडी देर के लिये एक शब्द भी नहीं निकला। इसके बाद शिवी और शिमी धीरे धीरे आपस में कुछ गुनगुनाने लगे। जब गुरुजी ने उन लोगों की गुनगुनाहट पर लक्ष्य किया तो वे तुरत ही बोल उठे "क्यों क्या अब भी कुछ बाकी रह गया ? हो सकता है। स्वय मुझे ही भान हो

रहा है कि इसमें अभी कई शक की जगहे हैं और खडन मडन की जगह भी बाकी है, इसकी और भी खूब छान बीन हो सकती है । यदि इसके सिवाय तुम लोग और किसी विषय की चर्चा कर रहे हो तो दूसरी बात है। पर यदि इस बात के बारे में कोई अड़चन आई हो तो बेखटके मन का सदेह कह डालो और यदि तुम्हारे ध्यान में इस बात के सुलझाने की और कोई बढिया युक्ति है तो वह भी वर्णन कर दो। यदि यह समझते हो कि मेरे साथ रहने से विशेष सुबीता होगा तो मुझे इस चर्चा में शामिल कर लो।

शिमी—भाई सुकरात, बात असल में यह है कि हम दोनों ही को एक एक अड़चन आ पडी है और दोनों में से कोई भी आप से पूछने की हिम्मत न कर के पूछने का भार एक दूसरे पर टाल रहे हैं। उस कठिनाई के बारे में आप की राय जानने की मन में उत्कठा तो है पर अब ईस समय आप को और कष्ट देने का जी नहीं चाहता। शायद आप भी अब ऊब गए होंगे ?

शिमी की इस बात को सुन कर गुरुजी मुसकरा कर कहने लगे—

'क्या कहूँ, भाई शिमी, मैं खुद बडी अड़चन में पडा हूँ। जब मैं तुम्हीं लोगों को अब तक यह निश्चय न करा सका कि मैं इस होनहार को अपना दुर्भाग्य नहीं समझता तब भला अन्य लोगों को क्या खाक समझा सकूँगा ? इतने कहना पर भी तुम लोगों को अब तक

खटका ही लगा हुआ है कि मैं मौत के डर से अधमरा हो रहा हूँ और बातचीत करने के योग्य नहीं हूँ। तुम क्या मुझको इन हस पक्षियों से भी गया गुजरा समझते हो जो अपनी मृत्यु को निकट आई जान बड़े आनद से चिल्ला चिल्ला कर चहकने लगते हैं। उनका यह चहकना बड़े आनद का होता है क्योंकि उन्हें मालूम हो जाता है कि उनके परम प्रभु स्वामी के निकट जाने का समय आ गया है। मनुष्य विचारे इन हस पक्षियों के चहकने का मर्म न समझ कर, स्वयं मृत्यु से भयभीत होने के कारण, झूठ ही मूठ कहते हैं कि ये पक्षी मृत्यु के डर से रो रहे हैं और पीडा के मारे जोर जोर से चहक रहे हैं। उन विचारों को यह पता नहीं कि कोई पक्षी भी क्षुधा, तृष्णा या पीड़ा से कातर हुए विना कभी चहकता या गाता नहीं। औरों की तो क्या, बुलबुल हजारदास्ताँ, पपीहा, चातक नित्य चहकने और गानेवाले पक्षी भी कभी पीडा के समय चहकते या गायन नहीं करते वरन सुस्त पडे रहते हैं। अस्तु, मेरी समझ में तो न तो ये पक्षी और न हस पक्षी कोई भी पीड़ा के समय गाते या चहकते हैं और मुझे निश्चय है कि इन पक्षियों को अपनी भावी मालूम जाती है और परलोक में उनको सद्गति प्राप्त होगी इसका उन्हें ज्ञान हो जाता है, क्योंकि हस ब्रह्मा के वाहन हैं और इस लिये अपनी मृत्यु के दिन ये लोग ऐसे आनद से चहकने और गाने लगते

हैं जैसा कि इन्होंने कभी जन्मभर गाया नहीं होता। इसी तरह मैं भी अपने को परमात्मा के हस दासों की तरह दास समझता हूँ और परमात्मा की सेवा में अपने को अर्पित मानता हूँ। इसलिये इन पक्षियों से बढ कर मुझे अपनी भावी मालूम रही है और यही कारण है कि उनकी तरह मैं भी इस होनहार के कारण शोकातुर नहीं हूँ। ऊब जाने की बात तो एक ओर रही, मेरी प्रसन्नता तो इसी में है कि जब तक जल्लाद विष का प्याला मेरे हाथ में न दे और तुम लोगों को बाहर जाने की आज्ञा न हो जाय तब तक तुम लोग मुझ से प्रश्न पर प्रश्न करते चलो।

शिमी—अच्छा तो अब पहले मैं अपने मन का सदेह आप मे निवेदन करता हूँ और फिर शिवी भी अपने असतोष का कारण बतलावेगा। बात यह है कि मैं जहाँ तक समझता हूँ और शायद तुम्हारी भी यही राय होगी कि इन बातों का पक्का पक्का स्पष्ट ज्ञान इस जिंदगी में होना कठिन क्या वरन असभव है। पर हाँ, इतना मैं जरूर मानता हूँ कि वह आदमी निरा निस्सार है जिसने यहाँ आ कर इन बातों को हर एक पहलू से नहीं जाँचा और जब तक सब ओर से सब युक्तियों को ठोंक बजा नहीं लिया (जहाँ तक सभव हो) तब तक एक राय को छोड कर दूसरी राय कायम नहीं की।

दो में से एक बात करना हमारा कर्त्तव्य है। या तो सीखें या इन बातों की सचाई को स्वय खोज

निकालें। यदि दोनों बातें असंभव हों, तो मनुष्यों में प्रचलित सब से श्रेष्ठ युक्तिपूर्ण विश्वास की किश्ती पर सवार हो कर, भवसागर में अपने जीवन की किश्ती को छोड़ दें, जब तक कि कोई भारी जहाज (अवलवन) --परमात्मा का स्पष्ट आदेश--न प्राप्त हो जिस पर सवार हो कर हम बेखटके अपनी यात्रा (जीवन-यात्रा) को समाप्त कर सकें। जब आप ने हम लोगों का खटका मिटा दिया है तो अब और कोई प्रश्न करते मेरा जी नहीं हिचकता, और यदि ऐसा नहीं करूगा और इस समय के अपने विचार आप पर प्रकट नहीं करता, तो फिर मुझे पछताना पड़ेगा। शिवी और मैं, हम दोनों ही आप की युक्तियों को तौल रहे थे, और मेरी समझ में ये युक्तियाँ काफी नहीं हैं।

सुक०—हो सकता है। पर अब यह भी बतलाओ कि किस किस जगह की युक्तियों मे कसर रह गई है ?

शिमी—कसर इस बात की है कि मेरी समझ मे यह युक्ति एक सारंगी, उसकी ताँतें (डोरी) और उसके स्वर (आवाज) के विषय में भी कही जा सकती है। हम कह सकते हैं कि एक स्वर मिलाई हुई सारगी का सम स्वर एक अदृश्य वस्तु है, अशरीरी है और एक शुद्ध-निर्म्मल, सुदर पदार्थ है और सारंगी और उसकी ताँत ये दोनों शरीरी हैं और ठीक शरीर की तरह मिश्रित और पार्थिव तथा नाशमान पदार्थों से बनी हैं। अब

देखिए जब सारगी टूट जाती है या उसकी ताँत उखड़ जाती या कट जाती है, तो यदि कोई आदमी वही युक्ति यहाँ भी लगा कर कहे (जो कि आपने इसके पहले लगाई है) कि सारगी के टूटने से स्वर का नाश नहीं हुआ और वह वर्त्तमान है, तो यह क्यों कर ठीक होगा? क्योंकि सारगी और उसकी ताँत ये दोनों नाशमान पदार्थ ठहरे। इसलिये टूट फूट जाने पर सारगी का अस्तित्व नहीं रह सकता, पर अपने नाश से पहले वह उस सम स्वर को जिसे शुद्ध निर्म्मल और अविनाशी कहा गया है, नाश कर जाती है। अर्थात् दृश्यमान सारगी के नाश होने के पहले ही, अदृश्य 'स्वर' का नाश हो जाता है। चाहे कोई भले ही कहे कि स्वय स्वर तो कहीं न कहीं रहे ही गा और इसे कुछ हानि पहुँचने के पहले सारगी की लकडी और ताँत सड़ गल जायगी। पर भाई सुकरात, तुम्हें यह भी माॡम ही है कि हम में से बहुत लोग ऐसा मानते हैं कि—" आत्मा, तत्त्वों (पच महा-भूत) की मिलावट से पैदा होती है और सारगी की ताँत की तरह अपने उपयुक्त बधन अर्थात्, शीत, उष्ण से बँधी है और जैसे सारगी के तारों को उपयुक्त रूप से खींच खाँच कर ठीक किया जाता है, तब सम स्वर निकलता है, उसी प्रकार से तत्त्वों की यथोपयुक्त मिलावट से आत्मरूपी समस्वर की उत्पत्ति जानो। अच्छा, अब यदि आत्मा तत्त्वों की उपयुक्त मिलावट का एक सम 'स्वर' ठहरा, तो यह बात स्पष्ट है कि

जब शरीर को उचित से अधिक परिश्रम पडता है या रोग इत्यादि के कारण वह बहुत अधिक ढीला या निर्ब्बल हो जाता है, तो आत्मा शुद्ध निर्म्मल, अदृश्य इत्यादि होने पर भी फौरन नाश को प्राप्त हो जाती है, जैसे कि सारगी के टूटते ही स्वर का तत्काल नाश हो जाता है। चाहे सारगी की लकडी और ताँत को गलते सडते कुछ दिन भी लगें पर सम स्वर को नाश होते देर नहीं लगती। वैसे ही क्षय हुए शरीर के अस्थि मांस को तो गलते सड़ते कुछ देरी भी लगे पर आत्मा तो उसके पहले ही, नाश हो जाती है। अब यदि कोई आदमी यही दावा पेश करे और कहे कि—"तत्त्वों की उपयुक्त मिलावट से जब यह शरीर बना है तो जब इस मिलावट में गड-बड हुई या कोई तत्त्व घटा बढा तो बस, आत्मा का फौरन नाश हो जाता है?" तो उसे हम क्या जवाब देंगे? शिमी की इस बात को सुन कर गुरु जी कुछ देर तक, हम लोगों की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देख कर मुस्कराते हुए बोले—शिमी की शका बेशक ठीक है। अब यदि तुम में से इस तर्क का जवाब देने के लिये कोई तय्यार है तो दे, नहीं तो मैं दूँगा। क्योंकि शिमी मुझे ऐरे गैरे लोगों की तरह मामूली तार्किक नहीं दिखता। उसके तर्क की प्रणाली पुष्ट है। अच्छा तो अब उसका उत्तर देने के पहले मैं शिबी की शका भी सुन लेना चाहता हूँ जिससे जवाब सोचने के लिये कुछ अवसर मिल जाय। अब यदि दोनो की बात सुन कर

हमें दोनों की शका और युक्ति ठीक मालूम हुई तो हम इनकी बात मान लेगें, यदि गलत मालूम हुई तो अपनी युक्तियों के पक्ष का समर्थन करेंगे। अच्छा भाई शिवी, अब तुम भी अपनी शकाएँ कह जाओ।

शिवी—हाँ, कहता हूँ, सुनिए। मेरी समझ में आपकी सारी युक्तियों को मान लेने पर भी मेरी पहली शका ज्यों की त्यों बनी हुई है। इसमे सदेह नहीं कि आपने मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट होने से पहले आत्मा विद्यमान थी इस सिद्धात के सिद्ध करने में अपने भर-सक अच्छी बुद्धि लड़ाई है। यदि दभ की बात न हो तो यह भी कहा जा सकता है कि आपने इस सिद्धात को सदा के लिये सिद्ध कर दिया है। मैं भी पहले की मानी हुई बात को अब अस्वीकार नहीं करता हूँ, पर बड़ी भारी शका यह रही जाती है कि मुझे इस बात का निश्चय नहीं हुआ है कि मरने के बाद भी आत्मा रहेगी। मैं शिमी की शका से सहमत नहीं हूँ, जो कि कहता है कि आत्मा शरीर से अधिक बलवान् और स्थितिवाली नहीं है। मेरी राय में तो इन बातों में आत्मा शरीर से कहीं अधिक बढ चढ कर है। मेरे इस कहने पर आप कह सकते हैं कि जब मरने के बाद मनुष्य का कमजोर हिस्सा–शरीर–कुछ दिनों तक बना रहता है तो उसके श्रेष्ठ और बलवान भाग आत्मा के हमेशा बने रहने में तुम्हें सदेह क्यों हुआ? सो मैं एक पार्थिव दृष्टात दे कर समझाना चाहता हूँ। फिर आप अच्छी तरह समझ जाइएगा कि

मेरी शका का स्वरूप कैसा है। ठीक शिमी की तरह मैं भी अपनी शका को एक रूप दे कर यों वर्णन करना चाहता हूँ। देखो एक जुलाहा मर जाता है, बूढा हो कर पर उसका सर्वथैव नाश नहीं हो जाता। वह कहीं न कहीं दूसरे स्वरूप में मौजूद रहता है। किस स्वरूप में रहता है सो सुनिए। उसी वस्त्र के स्वरूप में जो उसने बुना था। क्योंकि यद्यपि जुलाहा मर चुका है, पर जो वस्त्र वह बुन कर स्वय पहनता था, वह वर्त्तमान है। देखिए, यदि कोई पूछे कि "आदमी की मियाद ज्याद. है या वस्त्र की? कौन ज्याद दिन टिकता है, आदमी या वस्त्र? उससे यदि कहा जाय कि आदमी ज्याद दिन टिकता है तो यह सच हो सकता है, पर यह कह कर यदि कोई यह मान ले कि जब वस्त्र जुलाहे के मरने के बाद मौजूद है तो उससे ज्याद दिन टिकनेवाला जुलाहा तो कभी मरे हीगा नहीं तो क्या यह मूर्खता की बात न होगी? देखो भाई शिमी! तुम भी मेरी बात ध्यान देकर सुनो, क्योंकि मेरी शका की तुम्हें जाँच पडताल करनी पड़ेगी। वस्त्र मौजूद है अर्थात् जुलाहे से कम दिन टिकनेवाली चीज मौजूद है तो ज्याद दिन टिकनेवाला जुलाहा अमर है यह तो कोई युक्ति नहीं। क्योंकि जुलाहा अपनी जिंदगी में कोड़ियों वस्त्र पहन पहन कर फाड चुका है, केवल उसी एक अंतिम वस्त्र से पहले ही वह मर गया है। इसलिये एक अंतिम वस्त्र जुलाहे के मरने के बाद भी मौजूद है, इस कारण से वस्त्र की

महिमा जुलाहे से कदापि बढ़ नहीं सकती है और न इस कारण से मनुष्य या जुलाहा वस्त्र से कमजोर या कम दिन टिकनेवाला कहला सकता है। नाशमान दोनों ही हैं। पर जब तक कई वस्त्र नाश हो जाते हैं, तब तक एक ही मनुष्य बना रहता और अंत को एक अंतिम वस्त्र छोड़ कर आप भी नाश हो जाता है। वही युक्ति मैं आत्मा पर घटाना चाहता हूँ। आत्मा और शरीर का संबंध मैं इसी तरह का देख रहा हूँ। यह मानते हुए भी कि आत्मा शरीर से श्रेष्ठ और अधिक दिन तक टिकनेवाली है, हम कह सकते हैं कि आत्मा अविनाशी नहीं, अंत को नाश हो ही जायगी। वह अनेकों शरीरों को धारण करती रहती है, और एक शरीर के नाश होने पर दूसरे मे प्रवेश करती है, जैसे एक कपडा फटने पर दूसरा कपड़ा पहिना जाता है। इसी तरह बहुत से शरीरों में प्रवेश करते करते और निर्म्मल, क्षयी, रोगग्रसित शरीरों को सुधारने में अपनी शक्ति खर्च करते करते अंत को आत्मा की शक्ति क्षय हो जाती है और एक अंतिम शरीर को छोड़ कर, उस जड शरीर के गलने सड़ने के पहले ही आत्मा का नाश हो जाता है। अब शरीर भी आत्मा से छूटने पर कुछ दिनों में गल सड़ कर ठिकाने लग जाता है। सो केवल एक इसी युक्ति के भरोसे कि—‘ आत्मा शरीर से अधिक शुद्ध, श्रेष्ठ, निर्म्मल, अधिक टिकनेवाली है ’ हम नहीं कह सकते कि मरने के बाद आत्मा बनी रहेगी ही।

अच्छा यदि यह भी मान लें कि जन्म ग्रहण करने के पहले हमारी आत्मा विद्यमान थी और मरने के बाद भी कुछ आत्माएँ विद्यमान रहेंगी और दूसरे शरीर में प्रवेश करेंगी और उस शरीर के छूटने पर तीसरे और फिर चौथे शरीर में भी जाँयगी, क्योंकि शरीर से आत्मा अधिक सामर्थ्यवाली और कष्टसहिष्णु है, यह भी मान लेते हैं कि बार बार शरीर धारण करने और छोड़ने में आत्मा का कुछ क्षय नहीं होता या दो चार शरीर के बाद उसका नाश नहीं होता, पर यह कौन कह सकता है कि इन दो चार, दस पाँच, या सौ दो सौ शरीरों में से निकलने पैठने पर उसका नाश नहीं हुआ, यह तो कभी हो ही गा नहीं। क्या जाने, क्षय होते होते हमारा यही अंतिम शरीर हो, जिसके नाश के पहले आत्मा भी छिन्न भिन्न हो कर लय हो जायगी ? क्योंकि इसका किस को पता है कि अंतिम आत्मा-विनाश का शरीर यही है या आगे आवेगा। इसलिये आत्मा के नाश हो जाने का भय और खटका स्वाभाविक ही है। जब तक यह साबित न हो जाय कि आत्मा एकदम से अविनाशी और अजर अमर है तब तक आदमी मृत्यु से निडर कदापि नहीं हो सकता। सब को यही खटका लगा रहेगा कि कहीं यही तो हमारा अंतिम शरीर नहीं है, जिसके पहले ही आत्मा छिन्न भिन्न हो कर ध्वस हो जायगी"।

इतना कह कर फीडो कहने लगा—इन लोगों की बात सुन कर हम सभों का जी बेचैन हो गया, जिसका

जिक्र हम लोग आपस में करने भी लगे थे। पहले की युक्तियों से हम सबों का पूरा सतोष हो गया था और अब नई शकाओं को सुन कर और अपने विश्वास को डगमगाते देख कर आगामी सारी युक्तियों पर से भी हम लोगों की श्रद्धा कम होने लगी और आगे पीछे की सारी युक्तियाँ नि सार प्रतीत होते देख कर हमारा जी ऊब गया और हमें यही मालूम होने लगा कि हमारी युक्तियाँ, हमारा निश्चय कुछ मूल्य नहीं रखता और न हम कभी यथार्थ सिद्धात का निरूपण कर सकेंगे।

इश०—भगवान् जाने, मैं सच कहता हूँ, फीडो, तुम्हारे दिल के भाव को मैं स्वय अनुभव कर रहा हूँ। जब तुम उपर की शकाओं का वर्णन कर रहे थे तो मैं स्वय मन ही मन कह रहा था कि "तब तो आगे के लिये किसी न्याय या युक्ति का सहारा रहा ही नहीं ? जब सुकरात की ऐसी प्रबल युक्तियाँ, जिनसे सबका सतोष हो गया था, मिट्टी में मिल गईं तो अन्य युक्तियों का कहाँ ठिकाना लगेगा ? क्योंकि 'आत्मा एक सम्मिलित स्वर' है इस सिद्धात पर मैं बहुत दिनों से लट्टू हूँ और तुमने आज जब वही बात दोहराई तो मुझे भी फौरन अपना प्यारा सिद्धात याद आ गया और अपने मन को यह सतोष दिलाने के लिये कि 'मनुष्य के मरते ही उसकी आत्मा मर नहीं जाती,' मुझे अब और और युक्तियों की खोज करनी पड़ी। इसलिये अब विलब न करके जल्दी से कह ही डालो कि गुरुजी (सुकरात) ने फिर कौन

मैंने कहा 'अच्छा तो अपनी मदद के लिये आपको न बुला कर, अपनी तरफ से आप ही को मैं अखाड़े मे खड़ा कर देना चाहता हूँ' इस पर गुरुजी बोले 'दोनों एक ही बात है। पर हाँ, पहले हमे इस बात से अवश्य सावधान रहना चाहिए कि हमसे गलती न हो जाय।' मैं बोला 'गलती कैसी ?'

सुक०—गलती इस बात की कि बार बार के तर्क और युक्तियों को सुनते सुनते घबड़ा कर कहीं हम न्याय-युक्ति से घृणा न करने लग जाय, जैसे कि किसी किसी आदमी को 'मानुस गध' हो जाती है अर्थात् वे मनुष्य मात्र से घृणा करने लगते हैं। मनुष्य की जाति मात्र से घृणा और तर्क की जाति मात्र से घृणा, दोनों प्रकार की घृणा का कारण एक ही सा होता है। मनुष्य जाति से तो घृणा इस कारण से होती है कि कोई आदमी किसी दूसरे आदमी को अपना सच्चा और विश्वासी मित्र समझ कर उस पर अध श्रद्धा और विश्वास रखता है पर थोडे ही दिनों में उस मित्र का विश्वासघात साबित हो जाता और उसकी कलई खुल जाती है। जब इस प्रकार से बार बार मनुष्य ठगा जाता है और खास कर जब ये अविश्वासी ठग उसके नजदीकी रिश्तेदार या बधु होते हैं और कोड़ियों मित्रों से उसका वैमनस्य हो जाता है तो अंत को इसका नतीजा यह होता है कि उसे सारा ससार बेइमान और दगाबाज दिखने लगता है और भलाई कहीं है

इस बात का उसे कभी विश्वास ही नहीं होता और यों ही वह मनुष्य मात्र को घृणा की दृष्टि से देखने लग जाता है। क्यों तुमने कभी ऐसा होते नहीं देखा ?

फीडो—कई बार देखा है।

सुक०—तो यह क्या अच्छी बात है ? इससे क्या साफ प्रगट नहीं होता कि ऐसा आदमी बिना मनुष्य प्रकृति को समझे मनुष्यों से वर्ताव व्यवहार करना चाहता है ? क्योंकि यदि उसने मनुष्य प्रकृति का अध्ययन किया होता तो वह जरूर जानता होता कि वास्तव में 'बुरे आदमी और भले आदमी इने गिने हैं।' अधिक संख्या तो उन्हीं मनुष्यों की है जिन्हें हम न तो बिलकुल बुरा और न बिलकुल अच्छा ही कह सकते हैं।

फीडो—इससे क्या तात्पर्य है ?

सुक०—ठीक जो तात्पर्य्य बिलकुल बड़ी और बिलकुल छोटी चीजों से है। कोई बहुत लंबा आदमी या बहुत बड़ा कुत्ता या बहुत नाटा आदमी या बहुत छोटा कुत्ता, ऐसी चीजें तो विरली ही होती हैं या नहीं ? वैसे ही अत्यंत शीघ्रगामी या अति मंदगामी, अति नीच या अति महान्, अत्यंत गोरा या अत्यंत काला ये सब चीजें शायद ही कभी देखने में आती हैं या नहीं ? तुमने क्या यह लक्ष्य नहीं किया है कि इन सब बातों में 'अति' की गिनती बहुत कम है और साधारण तौर की चीजें बहुत हैं।

फीडो—बेशक ऐसा ही है।

सुक०—वैसे ही यदि दुष्टता की बाजी लगे, तो अत्यत दुष्ट पापात्मा बहुत थोड़े से निकलेंगे। क्यों यह तुम मानते हो या नहीं ?

फीडो—यह भी ठीक है।

सुक०—जो हो, दुष्टात्मा निकलेंगे सही। यहाँ यह बात तर्क और मनुष्यों के बारे में एक सी नहीं घटती। मैं तो केवल तुम्हारी बातों के पीछे पीछे यहाँ तक आ गया। दोनों का मुकाबला इस प्रकार का है। जब कोई आदमी न्यायशास्त्र बिना पढ़े किसी युक्ति को सच मान लेता है और फिर थोडी ही देर बाद, भूल से या सही ही उस युक्ति को मिथ्या समझने लगता है, और इस तरह जब बार बार कई बार होता है तो वह एक बार ही युक्ति और तर्क मात्र पर से विश्वास हटा लेता है। तुमने भी यह देखा होगा कि जो लोग रात दिन तर्क वितर्क किया करते हैं वे अत में अपने ही को सारे जगत में बुद्धिमान मान बैठते हैं और समझते हैं कि केवल हमी ने यह तत्त्व ढूँढ निकाला है कि कहीं भी कोई बात निश्चित या पक्की नहीं है, न तो कोई युक्ति या तर्क यथार्थ है, और न कोई वस्तु यथार्थ है। सब चीजें बादलों के रग की तरह छिन छिन बदलती जाती हैं, छिन भर के लिये भी ज्यों की त्यों नहीं रहतीं।

फीडो—निस्सदेह कई आदमी ऐसे हो जाते हैं।

सुक०—अच्छा तो अब यदि कोई न्याय या तर्कयुक्ति की

प्रणाली वास्तव में सत्य हुई और जिसे हमारा मन ग्रहण भी कर सकता हो तो यह कैसे शोक की बात होगी कि एक आदमी जिसे इन युक्तियों से वास्ता पडा हो और इन्हें कभी सच और कभी झूठा समझ समझ कर अत को दु खी हो एक बार ही सारा दोष न्यायशास्त्र ही के सिर मढ दे और यों आप अपनी अयोग्यता को ढाँक कर प्रसन्न हो जाय और फिर जन्म भर तर्क, न्याय और युक्ति मात्र को गाली दिया करे और इसी प्रकार से सत्य और ज्ञान की प्राप्ति से हाथ धो बैठे ?

फीडो—निस्सदेह ऐसा होना तो बडे शोक की बात होगी।

सुक०—इसलिये हमें इस बात से सावधान रहना चाहिए कि हमारी आत्मा भी उस गलती को पल्ले न बाँध बैठे कि सब तरह कि युक्तियाँ गलत हैं, वरन हमें यह समझना चाहिए कि हम स्वय गलती पर है। इसलिये हम सभों को अपनी गलती सुधार कर दुरुस्त हो जाना चाहिए। तुम लोगों को दुरुस्त हो जाना चाहिए अपनी आगे की जिंदगी के लिये और मुझे दुरुस्त हो जाना चाहिए तत्काल की मृत्यु के लिये क्योंकि जब इतनी शकाएँ उठ खडी हुई हैं तो इस समय मुझे भी खटका हो रहा है कि शायद अपनी आसन्न मृत्यु का सामना मैं ज्ञानियों की तरह न कर सकूं। इस समय मेरी हालत एक सशय में पडे हुए मूर्ख मनुष्यों की तरह हो रही है जो केवल अपने तर्क के घोडों को सर पर दौडाए

चलते हैं और यह जरा नहीं सोचते कि जिस प्रश्न पर वे विचार कर रहे हैं, उसमे कुछ सार है या नहीं। उन्हें केवल अपने श्रोता को यही समझाने से काम रहता है कि जो कुछ 'मैं कहता हूँ ठीक है' और मेरी समझ में इन लोगों में और मुझ में आज केवल एक ही बात का अतर है। मुझे इस बात की लालसा नहीं है कि जो कुछ मैं कहूँ, विना समझे बूझे मेरे श्रोता उसे सच मान ले, पर हाँ अपने मन को आप संतुष्ट करने की मुझे बडी चिंता है। आप लोगों ने मेरे तर्क को देखा यह कैसा स्वार्थपर है। अब यदि मेरा कहना सच हो तो उसे मान लेना अच्छा है, और यदि मृत्यु के बाद कुछ रही नहीं जाता तो भी अपने मरने के समय तक जो कुछ थोडा सा समय बाकी रह गया है उसमे मैं रो धो कर आप लोगों को ज्याद तग नहीं करूगा। इस प्रकार का अज्ञान हमेशा रहेगा नहीं-क्योंकि ऐसा होने से एक बुराई की जड कायम हो जायगी—बहुत शीघ्र उसका अत होगा। अच्छा तो अब शिमी और शिबी, आप दोनों महाशय तय्यार हो जाइए, हम अब अपनी युक्ति का पासा फेंकते हैं। मेरी एक बात पल्ले बाँध लो। वह यह है कि मेरी बातें सुनते समय यह मत समझना कि कहनेवाला सुकरात है—केवल इसी बात का ध्यान रखना कि कहनेवाला सच कहता है या नहीं। यदि मेरी बात सत्य प्रतीत हो तो सहमत हो जाना। यदि अन्यथा प्रतीत हो तो तुम

लोगों के जी में जो जो तर्क और शंकाएँ उठें उन सब से मेरी बात का खण्डन करते जाना और इस बात की भी चौकसी रखना कि तुम लोगों को निश्चय करने की धुन में कहीं मैं तुम्हें और स्वयं अपने को भी धोखा न दे बैठू और अपनी निस्सार युक्तियों को, बर्रे की टूटे हुए डंक की तरह, अपने पश्चात् नाश होने के लिये छोड़ता जाऊँ।

अच्छा तो अब आओ अपने विषय को शुरू करें। मैं एक बार फिर से तुम्हारी शंकाओं को दोहरा जाता हू, जिसमें कहीं कुछ भूल समझ गया होऊँ तो ठीक हो जाय। अच्छा तो भाई शिमी, तुम्हारी शंका तो जहाँ तक मैं समझा हूँ यह है कि 'यद्यपि आत्मा शरीर से अधिक श्रेष्ठ और दिव्य गुणोंवाली है तौ भी एक सम स्वर की तरह उसकी बनावट होने के कारण वह शरीर से पहले ही नाश हो जायगी, और शिबी यह कहता है कि 'आत्मा शरीर से अधिक कष्टसहिष्णु है—सामर्थ्यवाली है—पर यह कौन कह सकता है कि बहुत से शरीरों को धारण करते करते निर्बल हो कर अंत को एक अंतिम शरीर छोड कर वह नाश नहीं हो जायगी ? एक बार की मृत्यु से नहीं तो बार बार की मृत्यु से तो एक दिन आत्मा का नाश हो ही गा, क्योंकि शरीर तो अनंत काल से नाश होता ही चला आता है। क्यों भाई शिबी और शिमी यही सब या और कुछ भी है ?

शिबी और शिमी—नहीं, हम लोगों को और कुछ कहना नहीं

है। आप हम दोनों के तात्पर्य्य को ठीक समझ गए हैं।

सुक०—अच्छा तो पहले हम लोगों ने जो सब सिद्धात स्थिर किए थे उन सबों को खंडित समझा जाय या उन में से कोई कोई सिद्धात माना जाय ?

शिमी—थोड़े से सिद्धातों को छोड़ कर, बाकी के सभी माने जाँयगे।

सुक०—अच्छा तो हम लोगों में 'ज्ञान केवल पूर्व्वस्मृति है' यह सिद्धात जो तय पा चुका है, उसके बारे में तुम्हारी क्या राय है ? और इसके सग जो यह सिद्धात स्थिर किया गया था कि जब ज्ञान स्मृति है तो इस शरीर में कैद होने के पहले हमारी आत्मा पहले भी अवश्य कहीं थी, इस सिद्धात को भी मानते हो या नहीं ?

शिवी—निस्सदेह मानता हूँ। मुझे उसी समय से इस सिद्धात पर पूरा निश्चय हो गया है और उससे विश्वास हटाने का इस समय मुझे कोई कारण नहीं दीखता।

शिमी—मेरी भी यही राय है। इस राय को बदलना मेरे लिये एक ताज्जुब की बात होगी।

सुक०—पर भाई साहब ! तुम्हें अपनी यह राय बदलनी पड़ेगी, क्योंकि तुम्हारी यह युक्ति कि 'स्वर एक सम्मिलित पदार्थ है और आत्मा शरीर के तत्त्वों से मिल कर बना हुआ एक स्वर विशेष हैं' यदि सही साबित हुई, तो तुम्हारी पहली राय टिक नहीं सकती। अच्छा क्या तुम यह बात मान लोगे कि 'उन पदार्थों के अस्तित्व के

पहले जिनकी मिलावट से स्वर उत्पन्न होता है, स्वर मौजूद था ?

शिमी—ऐसा क्यों कर मान सकता हूँ ?

सुक०—पर जब यह मानते हो कि मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट होने से पहले आत्मा मौजूद थी और वह आत्मा शरीर के सम्मिलित तत्त्वों ही का परिणाम है, तो बिना ऐसा माने तुम्हें और दूसरा क्या उपाय है ? फिर तुम्हारा सम 'स्वर' वह पदार्थ नहीं रह जाता जैसा कि तुमने कहा है। सारंगी और ताँत तथा उसका शब्द, (जब तक स्वर मिलाया नहीं जाता) पहले आता है और इन सबों से मिल कर सम स्वर पीछे बनता है और सारंगी इत्यादि से पहले नाश हो जाता है। यहा इन तीनों चीजों से मिल कर स्वर बना, वह पहले कहीं नहीं था। इन तीनों चीजों के पहले समस्वर स्पष्ट नहीं था। अब तुम मानते हो कि आत्मा शरीर में प्रविष्ट होने के पहले से थी, फिर कहते हो कि शरीर के भिन्न भिन्न तत्त्वों के यथापेयुक्त मेल से (स्वर की तरह) आत्मा की उत्पत्ति हुई है। क्या ये दोनों परस्पर विरुद्ध बातें तुम मानते हो ?

शिमी—नहीं, ऐसा क्यों कर मान सकता हूँ ?

सुक०—खैर, पर स्वर किस तरह बनता है, इस युक्ति में तो कोई भूल है ही नहीं ?

शिमी—नहीं।

सुक०—तब तुम्हारी युक्ति गलत है। अच्छा जिसमें तुम्हें वैसी उलझन न पड़े मैं तुम्हें एक बात का खुलासा कर देता हूँ।

दो में से एक बात चुन लो। जो सिद्धांत तुम्हें अधिक पुष्ट मालूम पड़े उसी को मान लो। या तो 'ज्ञान, पूर्व्वस्मृति' है इसे मान लो या 'आत्मा एक सम्मिलित स्वर विशेष है' इसी सिद्धात को मान लो। जिसे मान कर अपना पक्ष सबल समझो, उसी सिद्धात को मान लो और दूसरे से इनकार कर दो, तब आगे चलेंगे।

शिमी—मैं तो भाई 'ज्ञान पूर्व्वस्मृति है' इसी पहले सिद्धात को मानता हूँ। क्योंकि 'आत्मा एक सम्मिलित स्वर विशेष है" यह दूसरा सिद्धात कभी मुझे खोल कर अच्छी तरह किसीने समझाया नहीं है, केवल आम लोगों को कहते सुन कर, मैंने ऐसा स्थिर किया था। इसकी जड कुछ मालूम नहीं पड़ती। केवल संभावना के आधार पर यह टिका है। सभावना वाली बात—हो सकती है—होगी—इस नींव पर जो बात मानी जा रही है, ऐसे सिद्धातों को मैं धोखे की टट्टी समझता हूँ और यदि कोई सावधान न रहे, तो इन सिद्धातों के पीछे चल कर भ्रम में पड सकता है। पर पूर्व्वस्मृति और ज्ञानवाला सिद्धात एक मजबूत सहारे पर टिका है और विश्वास करने योग्य है। मुझे इस बात पर पूरा विश्वास है कि 'शरीर में प्रविष्ट होने से पहले आत्मा मौजूद थी।' जैसे असली सत्ता या असली तत्त्वों के अस्तित्व में मुझे विश्वास है वैसा ही इसमें भी है। और यह मुझे अच्छी तरह निश्चय करा दिया गया है कि 'असली तत्त्व' (परमात्मा) का अस्तित्व अवश्य है और इसका

यथेष्ट प्रमाण भी मैं सुन चुका हूँ। अस्तु तात्पर्य्य यह निकला कि मैं किसी के कहे से यह नहीं मान सकता कि आत्मा स्वर विशेष है और न मेरा दिल ही अब इस बात को स्वीकार करता है।

सुक०—अच्छा और एक दूसरी तरह से भी इस प्रश्न को विचारो। कोई 'स्वर विशेष' या दूसरा कोई मिश्रित पदार्थ कई पदार्थों से मिल कर बनता है। अच्छा तो जिन पदार्थों से मिल कर वह बना है, उन पदार्थों की जो अवस्था रहती है, उससे मिल कर बने हुए मिश्रित पदार्थ की भी वही अवस्था रहती है या नहीं। *

शिमी—रहती है।

सुक०—तात्पर्य्य यह कि ये दोनों समान गुणवाले होते हैं। जो गुण कारण में रहते हैं, वेही कार्य्य में भी दिखाई देते हैं। जिस हालत में कारण रहेगा, कार्य्य को भी उसी हालत में रहना पड़ेगा। उसकी विरोधी अवस्था में वह रह नहीं सकता।

शिमी—बहुत ठीक।

सुक०—तो स्वर जिन तत्त्वों से बना है उन तत्वों का वह नायक नहीं बन सकता। उसे उन तत्त्वों के पीछे पीछे चलना पड़ेगा। अर्थात् जब पहले तत्त्व इकट्ठे होंगे तब स्वर निकलेगा। स्वर पहले ही निकल आवे और उसके पैदा करनेवाले तत्त्व पीछे से पैदा हों, यह असंभव है।

---

* कारण के गुण कार्य्य में रहते हैं या नहीं ?

शिमी—बेशक।

सुक०—फिर यह अपने तत्त्वों का विरोधी कोई गुण भी प्रगट नहीं कर सकता अर्थात् जिन तत्त्वों से बना है उन तत्त्वों में जो गुण हैं, उन गुणों के विरुद्ध कोई चाल या आवाज नहीं निकाल सकता।

शिमी—बहुत ठीक।

सुक०—अच्छा तो मिले हुए स्वर * से क्या मतलब है यह तो तुम समझते ही हो। मिले हुए स्वर से तात्पर्य्य यही है कि जिन पदार्थों से मिल कर वह बना है उनके वह सर्व्वथा अनुकूल हो। 'मिले हुए स्वर' का यह स्वर स्वभाव ही है।

शिमी—मैं ठीक समझा नहीं।

सुक०—देखो, खुलासा किए देता हूँ। जब स्वर मिला कर स्वर चढा दिया जाय (पचम या सप्तम कर दिया जाय) तो वह चढ़ा स्वर कहलावेगा। जब घटा कर उतार दिया जाय तो वह उतरा स्वर (ऋषभ गाधार) कहलावेगा। यह स्वर बहुत चढा है, या यह स्वर नीचा है, ऐसा कहते हैं या-नहीं ?

शिमी—कहते हैं।

सुक०—अच्छा अब यदि आत्मा को वैसा ही एक स्वर विशेष मानोगे तो उसे भी स्वर की तरह बडा छोटा कहोगे। क्या यह कह सकते हैं कि यह आत्मा बडी है और यह

---

* सम स्वर।

आत्मा छोटी है। यह आत्मा सप्तम स्वरवाली और यह आत्मा ऋषभ स्वरवाली है। क्या आत्मा में ऐसा विभाग कर सकते हो ?

शिमी—कदापि नहीं ?

सुक०—एक बात तो बतलाओ। कोई आत्मा ज्ञानी, धार्मिक और सज्जन होती हैं और कोई अज्ञानी, पापी और दुष्ट होती हैं ? क्यों होती हैं या नहीं ?

शिमी—बेशक होती हैं।

सुक०—अच्छा अब जो लोग आत्मा को केवल एक सम स्वर विशेष मानते हैं, वे आत्मा के इन भले और बुरे गुणों की क्या व्याख्या करेंगे ? क्या इन्हें सम स्वर और विषम स्वर कहेंगे, सुरीला और बेसुरा जैसा कि गवैये लोग कहते हैं। अच्छी आत्मा सुरीली और बुरी आत्मा बेसुरी है क्या ऐसा कहेंगे ? क्या अच्छी आत्मा का स्वर मिला* हुआ कहलाएगा और बुरी आत्मा बेसुरी कहलाएगी। आत्मा जब स्वयमेव ही एक सम † स्वर विशेष ठहरी तो क्या फिर उसी आत्मा के भीतर एक विषम स्वर अर्थात् दूसरी विषम आत्मा भी मानोगे अथवा बुरी आत्मा को बेसुरी (स्वर रहित ‡) मानोगे ?

---

* सुरीली। † स्वररहित हुई तो फिर आत्मा ही नहीं रहेगी, क्योंकि आत्मा स्वर है (सम स्वर सुरीलो है)

‡ यहाँ ' स्वर ' शब्द जहाँ जहाँ आया है उससे ' समस्वर ' ही समझना चाहिए।

फीडो—शायद शिमी इसका जवाब न दे सके, पर सिवाय इसके और क्या कहा जा सकता है ?

सुक०—पर ऐसा तुम कह नहीं सकते क्यों कि यह पहले ही तय पा चुका है कि एक आत्मा दूसरी आत्मा से किसी प्रकार कमती बेशी नहीं है। खुलासा यह है कि हम लोग इस बात में सहमत हो चुके हैं कि एक स्वर (समस्वर) सम ही है, विषम होने पर वह फिर सुरीला स्वर नहीं कहला सकता अर्थात् फिर उसे सम स्वर नहीं कह सकते।

शिमी—बेशक।

सुक०—और सुरीला स्वर उसी को कहते हैं जो ज्याद चढा और ज्याद उतरा नहीं होता। क्यों ऐसा ही है या नहीं ?

शिमी—ठीक।

सुक०—अच्छा तो जो स्वर न ज्याद चढा है और न ज्याद उतरा है वह सम स्वर है या नहीं ?

शिमी—है।

सुक०—अच्छा तो अब यदि कोई आत्मा किसी दूसरी आत्मा से कम बेशी नहीं तो किसी आत्मा को विषम स्वर की आत्मा और किसी आत्मा को सम स्वर की आत्मा ऐसा क्या कह सकते हो ?

शिमी—कदापि नहीं।

सुक०—अच्छा अब यदि धर्म्म को सम स्वर मानो और अधर्म्म को विषम स्वर मानो तो धार्म्मिक आत्मा को

सम स्वरवाली आत्मा और अधर्म्मी आत्मा को विषम स्वरवाली आत्मा मानना पडेगा, पर विषम स्वर जब हुआ तो वह आत्मा रही ही नहीं, क्योंकि तुम कहते हो कि तत्त्वों के यथोपयुक्त मिलावट से सारगी के मिले हुए सम स्वर की तरह आत्मा की उत्पत्ति है। जैसे बेसुरी सारंगी से सम स्वर या सुरीला स्वर नहीं निकलता वैसे ही अधर्म्मी आत्मा को यदि बेसुरी (विषम स्वर वाली) मानो तब वह आत्मा ही नहीं रह जायगी।

शिमी—ठीक।

सुक०—और भी साफ यह है कि यदि अधर्म्म, विषम स्वर है और 'विषम स्वर' जब तक सम न हो आत्मा बन नहीं सकती और जब, अधर्म्मी आत्मा मौजूद है तो इसकी मीमासा क्यों कर होगी ? यदि आत्मा सम स्वर है तो फिर अधर्म्मी आत्मा होनी ही नहीं चाहिए, सब आत्माएँ धार्म्मिक होनी चाहिएँ, क्योंकि सम स्वर कभी विषम स्वर नहीं होता ?

शिमी—बेशक।

सुक०—और यदि आत्मा पूर्ण हुई तो उसमें कभी कोई पाप स्पर्श करे ही गा नहीं ?

शिमी—निस्सदेह।

सुक०—तो इन युक्तियों का सार यह निकला कि यदि स्वर की तरह सब की आत्मा समस्वर है तो सब आत्माएँ एक सी होनी चाहिएँ।

शिमी—बेशक।

सुक०—पर क्या ऐसा है ? यदि तुम्हारी यह दलील कि "आत्मा एक सम स्वर विशेष है" सही होती तो फिर इस जड़ पर कायम की हुई युक्तियों की क्या दशा होती ?

शिमी—बेशक दुर्दशा होती।

सुक०—अच्छा और एक बात सुनो। आदमी में जितनी चीजें हैं उन सबों में आत्मा और विशेष कर ज्ञानी आत्मा ही शरीर को वस में रखती है या नहीं ?

शिमी—निस्सदेह रखती है।

सुक०—अच्छा वह आत्मा शारीरिक वासनाओं के वश हो जाती है या उन वासनओं को रोकती है ? और भी खुलासा किए देता हूँ। देखो जब शरीर को भूख प्यास लगती है तो ऐसा क्या कभी नहीं होता कि आत्मा जबर्दस्ती उसे खाने पीने से रोक दे या इसी तरह शरीर की हजारों तरह की वासनाओं को समय समय पर लगाम देकर वह रोक देती या नहीं ?

शिमी—बेशक रोकती है।

सुक०—पर यदि यह मान लिया कि 'आत्मा एक सम स्वर है' बँधी हुई गत है, तब वह अपनी बधी हुई लय के विरुद्ध कभी कोई स्वर नहीं निकाल सकती या जिन तत्त्वों से वह बनी है उन तत्त्वों के गुणों के विरुद्ध वह जरा भी इधर उधर टसक नहीं कर सकती, अपनी बँधी हुई गत से जरा भी इधर उधर नहीं हो सकती, जैसे कि एक बँधा हुआ स्वर जिस पर्दे पर बाँधा गया है उसी पर्दे का स्वर देता है, इधर उधर की कोई

लय या तान नहीं दे सकता। उसे उन्हीं तत्त्वों के पीछे पीछे चलना पड़ेगा, वह तत्वों को अपने पीछे चला नहीं सकता। क्यों यह बात ठीक है या नहीं ?

शिमी—बहुत ठीक है।

सुक०—अच्छा अब आत्मा की ओर देखिए। यह तत्त्वों के पीछे चलती है या तत्त्वों को अपने पीछे चलाती है। यदि जिन तत्त्वों से (पंच भौतिक स्वर से) बनी हुई तुम इसे मानते हो, उन तत्त्वों के पीछे न चल कर, उन तत्त्वों को अपने वस में रखती हुई दिखाई देती है तो फिर यह बात क्यों कर सिद्ध हो सकती है कि आत्मा पच भौतिक सम स्वर की तरह है। देखो आत्मा शरीरिक तत्त्वों को बराबर बाधा देती है। वह भूख प्यास, काम क्रोध, लोभ मोह इत्यादि को समय समय पर वश में करती, इन्द्रियों के विषयों को रोक कर उन पर हुकूमत चलाती, आलस्य आने पर शरीर से जबदस्ती कसरत करवाती, कुवासना और बुरी सगत से मन चले घोड़े की तरह शरीर की लगाम को खींच कर रास्ते पर लगाती और हर दम शरीर को धर्म्म का शासन देती रहती और सन्मार्ग में चलने के लिये धमकाती रहती है। कई प्राचीन ऋषियों ने भी शारीरिक वृत्तियों को वश में रखने की शिक्षा दी है और इसे दृष्टांत द्वारा दिखाया है। कइयों ने आजन्म ब्रह्मचर्य्य धारण, किया है। यह सब क्या वे लोग कर सकते या कह सकते यदि आत्मा को एक सम स्वर विशेष माने होते और उसे शरीर की कुवासनाओं के वश में चलनेवाली माने

में प्रवेश करना शुरू किया तभी से उसके पीछे रोग लग गया और उसके नाश का बीज बोया गया और इस प्रकार से कष्ट भोगते भोगते अंत को किसी एक जन्म में उसका नाश हो जाता है। तुम यह भी कहते हो कि जब इस बात का कुछ निश्चय है ही नहीं कि कौन सा आखरी शरीर है तो सब लोगों का मृत्यु से डरना स्वाभाविक है। मैं जहाँ तक समझा हूँ, तुम्हारी शंका का सार निचोड़ यही है। मैं बार बार इसका उल्लेख इस लिये कर रहा हूँ कि कोई बात छूट न जाय और तुम्हें इसमें कोई बात घटाना बढ़ाना हो तो वह भी कर सको।

शिवी—आपने जैसा कहा, वही मेरा भी तात्पर्य है। मुझे इसमें कोई बात घटानी बढ़ानी नहीं है।

इसके बाद गुरुजी (सुकरात) कुछ देर तक चुपचाप बैठे हुए, कुछ सोचते रहे, फिर बोले "तुम्हारी बात का जवाब देना हँसी खिलवाड नहीं है। उत्पत्ति और नाश के सारे सिद्धांतों को छानबीन करनी पडेगी। खैर, तुम यदि उचित समझो तो मैं तुम्हें अपनी बीती सुना सकता हूँ और मेरे इस अनुभव से यदि तुम्हें कोई बात मिल गई तो इससे तुम अपनी शंका के समाधान में सहायता ले सकते हो।

शिवी—बेशक, मैं आपके अनुभव को सुनने की बड़ी लालसा रखता हूँ।

सुक०—खैर, तो अब कहता हूँ, सुनिए—"जब मैं युवा था,

उस समय मुझे प्रकृति विज्ञान (Physical science) के जानने का बड़ा शौक था, और हर एक चीज के कार्य्य कारण और उत्पत्ति विनाश का पता लगा लेना मैं बड़ी बात समझता था। केवल शीत उष्ण के सगम से प्राणियों की उत्पत्ति है, या वायु अग्नि या रक्त इत्यादि उनकी उत्पत्ति का कारण है, या यह सब कुछ नहीं है, केवल मस्तिष्क (दिमाग) ही सब बातों का मूल है, जिससे दर्शण, श्रवण, घ्राण, रसना इत्यादि की उत्पत्ति है, अथवा मन, वासना, इच्छा, स्मृति ये सब इसी दिमाग और इन्द्रियों में सबध रखते हैं? इत्यादि इन्हीं सब बातों मे मेरा दिमाग चक्कर खाया करता था। इन पदार्थों के नाश और लय की भी मैं परीक्षा करने लगा तथा पृथ्वी और आकाश में जो जो परिवर्तन होते हैं उनकी भी जाच मैंने शुरू कर दी। इन सब पचड़ों मे पड कर अत को मैंने यही परिणाम निकला कि इन सारी- विद्याओं के सीखने मे मैं बिलकुल अयोग्य हूँ। आगे, मैं तुम्हे यह बात साबित कर दूँगा। इन बातों के सीखने की धुन में मैं ऐसा लीन हो गया, कि पहले जो कुछ अच्छी तरह जानता भी था, वह भी भूल जाने लगा, यहाँ तक कि, पहले का सारा सीखा सिखाया चौपट हो गया। और की तो क्या मनुष्य की वृद्धि और पुष्टि का कारण भी मैं भूल गया। पहले तो मैं प्रत्यक्ष प्रमाण से यह जानता था कि मनुष्य की वृद्धि और पुष्टि भोजन पान से होती

है और वही भोजन पच कर मास बनता है और मास में मास तथा हड्डी में हड्डी वढ़ वढ कर शरीर को वढ़ाती है और इसी प्रकार से शरीर के और तत्त्व सब भी यथा क्रम वढते और वालक को पट्ठा जवान मर्द वना देते हैं। अव तुम्हीं वतलाओ, मेरा यह विश्वास युक्तियुक्त था या नहीं ?

शिवी—निस्सदेह युक्तियुक्त था।

सुक०—यह तो हुई एक अनुभव की वात। अव दूसरे अनुभव का भी हाल सुनो। जब मैं किसी लवे आदमी को एक नाटे आदमी के बगल में खडे देखता तो वह उक्त नाटे आदमी से मुट्ठी भर वडा है, ऐसा निश्चय कर लिया करता था, ठीक जैसे छोटे वड़े घोड़े के वारे में लोग निश्चय किया करते हैं, और इस सिद्धात मे भी मुझे कोई सदेह नहीं था कि दस की सख्या आठ से दो सख्या अधिक है अथवा कोई दो हाथ लवी चीज एक हाथ लवी चीज से दुगुनी वडी है।

शिवी—तो अव क्या ऐसा नहीं मानते ?

सुक०—सच पूछो तो बात यह है, कि इन सब वातों का असली कारण मैं जानता हूँ, ऐसी प्रतीति मुझे नहीं है। यदि तुम पूछो कि क्यों ? तो मेरा उत्तर यह है कि मुझे दोनों में से एक वात का भी निश्चय नहीं है, एक तो यह कि जिस एक में दूसरा एक जोडा गया है वही पहला एक दो हो गया अथवा वह जुडनेवाला एक और जिस एक में वह जोडा गया है वे दोनों आपस में जुड कर

दो हो गए हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि केवल दो एकाई को अगल बगल रख देने से, इनका यह सयोग इन्हें क्यों कर दो बना देता है और जब दोनों अलग थे तो एक ही एक थे, दो नहीं थे ? और मजा यह है कि जब एक को दो से भाग देते हैं, तो उस सख्या को दो होते देख कर यह भी समझ में नहीं आता कि एकाई यहाँ दो क्यों कर हो गई ? क्योंकि यह दोनों दफ एक का दो होना दो प्रकार के परस्पर विरुद्ध कारणों से हुआ है। पहले तो दोनों एकाई के इकट्ठे होने से दो हुआ, अर्थात् जब एक एकाई में दूसरी एकाई जोडी गई तब दो हुआ और अब देखते हैं कि जब एक एकाई दूसरी से अलग की गई अर्थात विभाजित की गई (भाग दी गई) तो दो हो गई, जैसे एक का जब दो भाग करो तो दो हो जाता है। अब मैं अपने मन को क्या समझाऊँ कि एक की उत्पत्ति किस तरह से हुई है। तात्पर्य यह कि इस तरीके से मुझे किसी चीज के भी उत्पत्ति और विनाश का कारण मालूम नहीं हुआ, एक दूसरे तरीके का कुछ कुछ टेढा सीधा आभास तो मेरे मन में है भी, पर उपरोक्त तरीके को तो मैं छण भर के लिये भी मान नहीं सकता। अब और एक नया गुल खिला। बात यह हुई कि एक दिन मैंने एक आदमी को एनक्सागोरस की किताबें पढते सुना, जिसने मन को ही सारी चीजों का स्वामी बतलाया है। मुझे यह सिद्धात सुन कर प्रसन्नता हुई और

यह बात ठीक प्रतीत होने लगी कि निस्संदेह मन ही सारी चीजों का कारण हो सकता है और तब मन सारी चीजों को ठीक ठीक उचित रीति से और यथासभव उत्तम प्रकार अपने अपने ठिकाने सजा कर उनका स्थान भी अवश्य निर्देश कर देगा। इसलिये अब यदि हमें किसी चीज की उत्पति, स्थिति या विनाश का कारण जानना हो तो उसका सब से उत्तम उपाय यही होगा कि इस बात की खोज की जाय कि उस चीज की स्थिति और उस काम में लाने या उस पर कोई प्रभाव डालने का सबसे उत्तम उपाय कौन सा है ? इसलिये अब मनुष्य का कर्तव्य यही रह गया कि अपने लिये सबसे उत्तम और योग्यतम उपाय खोज निकाले या अन्य चीजों के बारे में भी ऐसा ही करे और ऐसा करने ही से उसे बुराई का भी पता लग जायगा, क्योंकि भले बुरे दोनों का ज्ञान एक ही विद्या द्वारा होता है। इन सब बातों के विचारस्वप्न ने मुझे बडा प्रसन्न किया, और मैंने सोचा कि एनक्सागोरस की शिक्षा मेरे मन मुताबिक है और इससे अपनी रुचि के अनुसार मुझे सारी चीजों की स्थिति का पता लग जायगा और मन में यह आशा बँध गई कि पहले तो यह मुझे पृथिवी के आकार का पता बतलावेगा कि यह गोल है या चिपटी और फिर यह बतलावेगा कि कार्य्य कारण का सबध क्या है और यह भी निश्चय करावेगा कि पृथिवी का अमुक आकार का होना ही उसके लिये सर्वोत्तम है।

यदि वह कहता कि पृथिवी ब्रह्माड के बीचो बीच है तो मैंने समझा कि वह यह भी बतलावेगा कि पृथिवी का उसी स्थान में रहना ही सर्वोत्तम है। यदि वह केवल इतना ही बतला देता तो मैं फिर उससे और दूसरे कारणों की पूछताछ नहीं करता। इसी प्रकार से चाँद सूरज, ग्रह, उपग्रह, तारामडल इन सबों की गति, चाल ढाल और उलट फेर के बारे में भी मैं छानबीन करनेवाला था और इस बात को जानना चाहता था कि जिस अवस्था में वे सब हैं और जिस ढग पर चल रहे हैं उसी अवस्था में रहना और उसी ढग पर चलना ही उनके लिये सबसे उत्तम है। यह मुझे कभी भी गुमान नहीं था कि जब उसने मन ही को सारी चीजों का मुख्य कारण बतलाया है तो इन सबों के सर्वोत्तम होने के कारण के सिवाय इनकी स्थिति का वह और भी कोई कारण बतलावेगा ? मैंने सोंचा था कि वह हर एक चीज का एक एक कारण बतलावेगा और ब्रह्माड का भी एक कारण बतलावेगा और यह बतलाता चलेगा कि अमुक अमुक चीजों का जो अमुक अमुक कारण है वही कारण उनके लिये सर्वोत्तम है, इसके सिवाय उन्हें और कोई सर्वोत्तम गति नहीं है और इसी प्रकार से सब के लिये, सब को एक सा समान लाभ पहुँचाने वाला उपाय कौन सा है ? यदि ऐसी आशा न होती तो मैं कभी भी इसके पीछे इतना परिश्रम नहीं करता। मैंने इन पुस्तकों को ले कर बड़े आग्रह से जल्दी जल्दी

पढना आरभ किया जिस में फौरन मुझे अच्छे बुरे का भेद मालूम पड़ जाय। पर भाई साहब! सच कहता हूँ कि मेरी ये सारी आशाएँ मिट्टी में मिल गईं, क्योंकि ज्यों ज्यों मैं इन पुस्तकों को पढता गया त्यों त्यों पता लगता गया कि लेखक ने कहीं भी मन को खडा नहीं किया है और न पदार्थों के श्रेणी, क्रम, विभाग ही का कोई कारण बतलाया है। वरन उसने वायु, ईथर (आकाश) और पानी तथा और भी विचित्र विचित्र तत्त्वों को ला खड़ा किया। उसकी बात मुझे ठीक इसी तरह की मालूम हुई, जैसे कि पहले कोई यह कहे कि "सुकरात सारे काम मन से करता है और अब यदि मैं उससे अपने सारे कामों या किसी काम करने का कारण पूछना चाहूँ तो और ही जवाब देवे, जैसे कि मैं "यहाँ क्यों बैठा हूँ" यदि यह प्रश्न करूँ तो यह जवाब देवे कि "मेरा शरीर हड्डी और पट्ठों से बना है और हड्डियाँ सख्त हैं तथा इनमे जगह जगह जोड हैं और पट्ठे ढीले हो सकते हैं और तन भी सकते है। वही हाल मास और चमडे का भी है जो सब मिल कर हड्डी को ढँके हुए हैं, और इस लिये जब हड्डी अपने स्थान से उठाई जाती है, तो पट्ठों के ढीला करने और सिकुड़ने से मेरे अग मुड़ते हैं और यही कारण मेरे यहाँ पैर मोड कर बैठे रहने का है।" अब यदि कोई पूछे कि "मैं तुम लोगों से बातचीत क्यों कर रहा हूँ तो उसका कारण वह बतलावेगा, वायु, शब्द तथा श्रवणेंद्रिय के कारण

यह सब बातचीत हो रही है। इसी प्रकार के सहस्रों कारण बतला डालेगा, पर असली कारण बतलाने का उसे कभी ध्यान ही नहीं आवेगा जो यह है कि "मैं यहाँ इस कारण से बैठा हूँ कि एथेंस-वासियों ने मुझे अपराधी ठहराना उचित समझा और उनके दंड को मान कर यहाँ बैठे रहना मैंने अपना धर्म समझा, क्योंकि यदि यहाँ बैठे रहना मैं अपना धर्म न समझता और राज्य के दंड को न मान कर भाग गया होता तो अब तक ये हड्डियाँ और मास तथा पट्ठे सब मिगारा, बोशिया या अन्य किसी अजनबी नगर में होते। यदि इस शरीर की सिखावन की ओर ध्यान देता और शरीर को जो प्रिय है उसी अनुसार चलता तो अवश्य ही धर्म को छोड़ कर इस समय यह हाड मास कहीं अन्यत्र ही दिखाई देता, फिर मैं यहाँ न बैठा रहता। अब यदि मेरे यहाँ बैठे रहने का कारण इन्हीं हाड़ मास को बतलाया जाय तो निरी मूर्खता की बात होगी या नहीं? यदि कोई यह कहे कि बिना हाड मास या शरीर के मैं अपने मन की, क्योंकर, कर सकता था, तो उसका कहना ठीक मान भी सकता हूँ, पर किसी का यह कहना कि मेरी कुल क्रिया (करने) का एक मात्र कारण यही है, और इसी को मन द्वारा करना कहते हैं (विवेक द्वारा नहीं) तो यह निरी उडी पुड़ी बात मानी जायगी। इसका सीधा सादा अर्थ यह है कि ससारी लोग उस असली कारण को, जिसके बिना कारण, कारण हो नहीं सकता,

पहिचान नहीं सकते और अँधेरे में टटोलते हुए ऊपरी बातों को कारण के नाम से पुकारने लगते हैं। इनमे से कोई कहता है कि पृथ्वी एक ववंडर से घेरी हुई है और इसी कारण से आकाश में स्थित है। कोई कहता है कि पृथ्वी एक चिपटी ठोस अथरी की तरह है और वायु के आधार पर टिकी हुई है। इसी तरह से लोग तरह तरह की बातें कहते हैं पर यह किसीको नहीं सूझता कि इन सारी चीजो को यथोपयुक्त नियम में रखनेवाली कोई शक्ति भी है या नहीं, और न उन्हें यही ध्यान में आता है कि वह कैसी दिव्य शक्ति है और उसमें क्या क्या अलौकिकता है ? वे केवल भूमडल के उठानेवाले अटलस देव ही से सिर मारा करते हैं, जिससे कि एक ही जगह सारी पृथ्वी दिखाई देती है, और यही मानते हैं कि इसी देव ने सारे भूमडल को एक ठौर बाध रक्खा है, और क्षण भर के लिये भी नहीं सोचते कि भूमडल किसी भलाई के (धर्म के) बधन मे बँधा हुआ है, जिससे बधा हुआ वह अपने नियत क्रम से इधर उधर नहीं होता। वह कौनसा बधन है ? और किस प्रकार का बधन है? इस तत्त्व के कारण को किसीसे भी सीखने के लिये मैं बड़ा उत्सुक रहता हूँ, पर न तो किसीसे सीख ही सका और न मुझे स्वयमेव ही इसका कुछ पता लगा। खैर, यह लक्ष्य तो यों व्यर्थ गया पर अपने धनुष के लिये मैंने दूसरा गुण भी रख छोडा था। क्यों भाई शिबी, तुम्हारी मरजी हो तो अब अपने

दूसरे शर सधान और लक्ष्य की कहानी भी कह सकता हूँ।

शिवी—अवश्य कहिए, मैं सुनने के लिये तय्यार हूँ।

सुक०—जब मैंने पदार्थ की असली स्थिति की खोज करना छोड दिया तो मुझे यह भी विचार उत्पन्न हुआ कि कहीं मुझे उस पीडा का शिकार न हो जाना पड़े, जो पीड़ा लोगों को ग्रहण के समय सूर्य्य की ओर देखने से हो जाती है। क्योंकि यदि पानी या अन्य किसी चीज के बीच से वे सूर्य्य को नहीं देखते तो आँख की पीडा ले बैठते हैं। इसी खतरे का ख्याल मेरे दिल में भी गुजरा। मुझे खटका हुआ कि यदि मैं इन चीजों को इन आँखों द्वारा देखने अथवा इन इद्रियों द्वारा समझने की चेष्टा करूगा तो मेरी आत्मा बिलकुल अधी हो जायगी। इस लिये मैंने इस सत्य को स्वानुभव द्वारा जाँचने की ठानी। शायद मेरा वर्णन बिलकुल सही नहीं है। जो हो, मैं इस बात को मानने के लिये तय्यार नहीं कि जो लोग आत्मानुभव द्वारा, पदार्थ के तत्त्वों की जाँच करते हैं वे केवल अलीक छाया के पीछे चल रहे हैं। मेरी समझ में तो जो लोग दृश्य पदार्थों द्वारा कारण की जाँच करते हैं उनकी हालत भी कुछ बेहतर नहीं। खैर जो हो, मैंने जिस तरह जाँच शुरू की, वही कहता हूँ। मैंने हर बात में सबसे पुष्ट एक सिद्धात को पहले मान लिया। अब इस सिद्धात से जो मेल खाया उसे सच्चा माना (चाहे कारण या और भी कोई चीज हो) और जो इससे मेल न

खा सका उसे झूठा समझा। मैं अपने तात्पर्य्य को जरा और भी खुलासा कर के कहना चाहता हूँ। मेरी समझ में तुम लोग मेरी बात को ठीक ठीक समझ नहीं रहे हो।

शिवी—बेशक, बात तो ऐसी ही है।

सुक०—मैं कोई नई बात नहीं कहता, वही पहले की बार बार दोहराई हुई बात को फिर भी कह रहा हूँ, जिसका जिक्र आज और इसके पहले भी कई वार कर चुका हूँ। मैं तुम्हें उस 'कारण' के किस्म का पता बतलाऊगा, जिस पर चल कर मैंने अनुभव प्राप्त किया है, और फिर वही अपनी पहली कही हुई बात को दोहराऊगा, कि 'स्वतंत्र सत्ता' भी कोई चीज है, जैसे कि "सौंदर्य्य सत्ता", "धर्म्म की सत्ता", बडाई और छुटाई अर्थात् "नाप जोख की सत्ता" इसी प्रकार की स्वतत्र सत्ताओं का वर्णन करूँगा। यदि तुम यह मानते हो कि स्वतत्र सत्ता कोई चीज है और इस प्रकार की सारी सत्ताएँ हैं तो मैं समझता हूँ कि शायद मैं तुम्हें अपने अनुभूत 'कारण' के किस्म का पता बतला सकूँगा और उसके साथ आत्मा को भी नित्य साबित कर सकूँगा।

शिवी—आप मान लीजिए कि हम लोग यह सब मानते हैं। अब अपने प्रमाण कहिए।

सुक०—अच्छा तो अब जो कुछ मैं कहता हूँ, उसे तुम मानते हो? यही कि "यदि कोई चीज "सौंदर्य्य की सत्ता" के सिवाय कहीं सुंदर दिखाई पड़े, तो हम

यही कहेंगे कि यह सुदर इसलिये है कि इसमें "सौंदर्य्य की सत्ता" का अश विद्यमान है। इसी प्रकार से और भी सारी चीजों के वारे में कहेंगे। क्यों मेरे इस कार्य्य-कारण के सबध को तुम मानते हो या नहीं ?

शिवी—मानता हूँ।

सुक०—ठीक, तो मैं अब और सब निपुणाई के बडे बडे कारणों को मानने की कुछ जरूरत नहीं समझता और न वे मेरी समझ ही में आते हैं। यदि मुझसे कोई यह कहे कि अमुक चीज सुदर इसलिये है कि उसका रग चटकीला है, वनावट सुडौल है, यदि वह इस प्रकार के तरह तरह के विशेषण कहने लगे तो मैं उसकी एक बात नहीं मानूँगा, क्योंकि इन बातों के मानने से मेरी समझ में गडबड़ पड जाती है, मैं तो अपनी उसी सीधी सादी गँवारी भाषा के उसी सीधे सिद्धात को पकडे बैठा रहूँगा कि "यह चीज सुदर इसलिये है कि इसके साथ सौंदर्य्य का सबध है अथवा "सौंदर्य्य की सत्ता" इसमें विद्यमान है—वह किस प्रकार का सौंदर्य्य है ? कैसा सौंदर्य्य है ? इस पर बहस करने की मैं कोई जरूरत नहीं देखता, मेरे लिये बस इतना ही काफी है कि "यह सौंदर्य्य की सत्ता" है जिसने उसे सुदर किया है और जो सारी सुदरता को सुदर करती है *

---

* "सौंदर्य्य की सत्ता" और सुदरता (अर्थात् सुडौल, गोरा रग इत्यादि) दो चीजें हैं। इस सिद्धात को गोस्वामी तुलसी दास जी ने "राम

सब से सहज और सुगम मुझे उत्तर यही सूझता है, जिससे कुछ खटका नहीं, क्योंकि इस प्रकार के जवाब से फिर मुझे कोई कायल नहीं कर सकता। यदि मैं इसी सिद्धात को पकड़े बैठा रहूँ कि 'सौंदर्य की सत्ता' ही सारी चीजों के सुदर होने का कारण है तो मेरी यह बात अचल, अटल मानी जायगी। क्यों ऐसा ही है या नहीं ?

शिवी—निस्सदह ऐसा ही है।

सुक०—अच्छा तो परिमाण (कद) बड़ी चीजों को बडा और उनसे और भी बड़ी चीजों को और भी बडा तथा छोटी चीजों को छोटा और उनसे भी छोटी चीजों को और भी छोटा बनाता है अर्थात् बड़े छोटे होने का एक मात्र कारण परिमाण अर्थात् नाप जोख है। क्यों है या नहीं ?

शिवी—बेशक है।

सुक०—देखो, यदि तुमसे कोई आ कर कहे कि अमुक

चरित मानस" में जानकी जी का रूप वर्णन करते समय बडी खूबी से दिखलाया है। वह चौपाई यों है—

"सुदरता कहँ सुदर करई, छबि गृह दीप शिखा जिमि बरइ"

सुदरता सौंदर्य की सत्ता (absolute beauty) भी जानकी जी के बिना अँधेरे में पडी हुई थी। जब जानकी जी प्रगट हुई तो सुदरता ("सौंदर्य की सत्ता") के घर में चिराग बल गया अर्थात् तब सौंदर्य की सत्ता को अपने रूप दिखाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कैसी अलौकिक उपमा है! धन्य तुलसीदास!!

आदमी अमुक आदमी से मुठ्ठी भर लबा है और उस लबे आदमी से दूसरा आदमी ऊँचाई में मुठ्ठी भर कम है तो उसके इस बयान को मत मानो। तुम यही कहना कि बडा जो है वह अपने कद (परिमाण) के कारण बडा है और कद ही उसके बडे होने का कारण है। और जो छोटा है वह अपनी छुटाई के कारण छोटा नहीं है, उसका कारण भी कद (परिमाण) ही है। यदि कहीं तुम यह कह बैठे कि अमुक आदमी, मुठ्ठी भर बडा या मुठ्ठी भर छोटा है, तो तुम्हें इस बात का भी खटका लगा रहेगा कि कोई यदि यह जवाब दे बैठा कि "जब एक ही चीज अर्थात् केवल एक मुठ्ठी, कभी किसीको बडा और कभी किसी को छोटा बना देती है और स्वय वह है एक छोटी सी चीज अर्थात् 'एक मुठ्ठी' तो क्या ही अजीब बात है कि वही एक छोटी सी चीज एक आदमी को बड़ा बना दे। क्यों, क्या इस जवाब का खटका तुम्हें नहीं रहेगा ?

शिबी ने हँसते हुए कहा—"बेशक खटका रहेगा"।

सुक०—और फिर यह भी कहते सहमोगे कि "दस की सख्या आठ से ज्याद दो की सख्या के कारण है, अथवा दो की सख्या इसे बडी बनानेवाली है, तुम्हारा जवाब तो यही होगा कि दस अपनी सख्या मे आठ से बडा है और सख्या ही इसके बड़े होने का कारण है। दो इसके बडे होने का कारण नहीं है। वैसे ही दो हाथ लबी चीज को एक हाथ लबी चीज से

बड़ा क्या तुम इस कारण से कहोगे कि वह एक हाथ लंबी की दुगुनी है या इस कारण से कहोगे कि नाप में, लंबाई में, वह बड़ी है। नाप (परिमाण) उसके बड़े होने का कारण है, क्योंकि 'स्वतंत्र सत्ता' क्या पदार्थ है, अब कुछ समझे ?

शिवी—हाँ, कुछ कुछ।

सुक०—अच्छा और सुनो, तुम्हें यह कहते हुए भी खूब सावधान रहना पड़ेगा कि "जब एक में एक जोड़ा जाता है तो वह योग ही उनके दो होने का कारण है, अथवा जब एक का भाग किया जाता है वह भाग उसके दो होने का कारण है ? क्यों, क्या ऐसा सहसा कह डालेंगे ?

शिवी—कदापि नहीं।

सुक०—कारण यह है, कि तुम्हारा मन जोर जोर से चिल्ला कर कहने लगेगा कि कोई चीज भी अपने खास तत्त्व के सिवाय दूसरे कारण से उत्पन्न नहीं हो सकती। दो जगह एक एक संख्या जब तक इकट्ठी न हो तब तक दो की उत्पत्ति हो नहीं सकती, इस लिये जितने दो हैं, उन्हें द्वित्त्व के गुण को धारण करना आवश्यक है। वैसे ही एकाई का एकत्त्व का गुण धारण करना स्वाभाविक है। इस जोड़ और भाग का निर्णय तथा ऐसी ही सूक्ष्म वार्तो को तुम्हें अपने से अधिक दूसरे बुद्धिमान आदमियों के लिये छोड़ देना ही उचित होगा। तुम्हें इस पचड़े से अवश्य भय मालूम होगा और यदि वही अपने एक सिद्धांत को पकड़े बैठे रहेगो, जिस पर बैठे रहने

से तुम्हें अपने तर्क में कोई भ्रम या प्रमाद नहीं आ सकता तो बेखटके हो कर जवाब दे सकोगे। पर यदि कोई तुम्हारे उस सिद्धात ही का खडन करना शुरू कर दे तो उस समय तुम्हे बहुत सावधान रहना चाहिए और तब तक जबान नहीं हिलानी चाहिए जब तक तुम्हें यह निश्चय न हो जाय कि तुम्हारी बात सीधी पडेगी या नहीं, और जब अपने सिद्धात का पक्ष समर्थन करोगे भी तो पहले सब से पुष्ट सर्वमान्य किसी दूसरे सिद्धात को सामने रख कर अपने सिद्धात को उससे मिलाते हुए चलना, जब तक कि दोनों का ठीक मेल न खा जाय इसकी जाच करते रहना चाहिए। यदि तुम्हें किसी असली बात की खोज है तो अपने सिद्धात की बातों को अपनी बहस मे मिला जुला मत देना। असली तत्त्व के खोजनेवाले कभी भी अपने सिद्धात के बारे में तब तक एक शब्द भी मुँह से नहीं निकालते जब तक कि वह अन्य सर्वमान्य पुष्ट सिद्धात के मुकाबले में सही साबित न हो जाय। चाहे तर्क की बातें दूसरों को गड-बडाध्याय मालूम पडें पर वे सत्य के खोजनेवाले के लिये अमृत हैं और उसका सतोष करनेवाली हैं। खैर, जो हो, तुम लोग यदि सच्चे ज्ञानी हो, तो अवश्य ही मेरे बताए हुए मार्ग पर चलोगे।

"बेशक, बहुत ठीक" शिबी और शिर्मा दोनों एक साथ ही बोल उठे।

इश०—इनका कहना बहुत ठीक था। भाई फीडो! मैं सच

कहता हूं कि कुद से कुद दिमाग के आदमी के भी जेहन में यह बात आ जायगी । गुरुजी की युक्ति की प्रणाली ऐसी स्पष्ट और संतोषदायक है।

फीडो—हां, भाई इशक्रत! उस समय वहाँ बैठे हुए हम सब लोगों के मन ने भी इस बात को स्वीकार किया था।

इश०—यह कोई आश्चर्य्य नहीं। तुम्हारी कहानी सुन कर यहाँ भी हम लोगों के मन की वही अवस्था हो रही है। खैर, तो अब आगे गुरुजी का युक्तिप्रवाह किस तरह चला, सो भी कहो?

फीडो—उस समय वहाँ इस बात को तो सब लोग स्वीकार कर ही चुके थे कि हर तरह की 'सत्ता' नित्य है और जितने दृश्यमान पदार्थ हैं सब उसी सत्ता के नाम से प्रगट हैं। अस्तु इसके बाद गुरुजी (सुकरात) ने फिर यों पूछा—

सुक०—अच्छा, यदि यह बात तुम लोगों को स्वीकार है (सत्ता की नित्यता) तो मेरे एक प्रश्न का जवाब दो। जब तुम यह कहोगे कि शिमी, सुकरात से लंबा है और फीडो से नाटा है, तो इससे क्या यह मतलब नहीं निकलता कि शिमी में नाटापन और लंबाई दोनों प्रकार के गुण मौजूद हैं?

शिवी—बेशक निकलता है।

सुक०—पर तुम यह भी बात मानते हो कि शिमी सुकरात से लंबा है, यह सिद्धांत बिलकुल सही नहीं है, क्यों सही नहीं है सो आगे दिखाता हूँ। शिमी इसलिये लंबा नहीं हो गया, कि वही शिमी है, वह लंबा इसलिये कहलाया कि उसका कद ऊँचा है (लंबा है) और सुकरात,

सुकरात ही है, इसीलिये वह कुछ सुकरात से लंबा नहीं है, पर सुकरात के नाटेपन के कारण वह लंबा है अर्थात् सुकरात का नाटापन और शिमी की लंबाई इन दोनों का जब मुकाबला किया गया तब शिमी लंबा कहलाया।

शिवी—ठीक।

सुक०—इस प्रकार से शिमी फीडो से कुछ इसलिये नाटा नहीं कहलाया कि फीडो फीडो ही है, यहाँ फीडो की लंबाई और शिमी के नाटेपन से जब मुकाबला हुआ तब शिमी नाटा कहलाया है।

शिवी—निस्संदेह।

सुक०—तो इससे यह बात निकली कि इस प्रकार से दो के मुकाबले में शिमी लंबा भी है और नाटा भी है, एक के नाटेपन से वह अपने ऊँचे कद के कारण बढ़ गया और दूसरे की लंबाई ने उसे छोटा बना दिया। तुम लोग भी शायद मेरी बात को दस्तावेज की कानूनबंदी जबान समझ रहे होगे, पर पक्का सबूत पहुँचाने के लिये, ऐसा करना भी जरूरी है।

शिवी—ठीक है।

सुक०—बात को इतना बढ़ा कर समझाने से मेरा तात्पर्य्य यही है कि मैं जिस प्रकार इन बातों के स्वरूप को देख रहा हूँ, तुम लोगों की निगाह में भी ठीक वही स्वरूप आ जाय। मुझे यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि 'बड़ाई की सत्ता' जो वस्तु है वह कभी भी एक साथ ही बड़ी और छोटी भी हो नहीं सकती। मतलब यह कि हम में

जो 'वडाई की सत्ता' है वह हमेशा वड़ी ही रहेगी, कभी छोटी हो ही नहीं सकती। दो में से, एक वात अवश्य होगी—या तो अपने विपरीत गुण के निकट आने पर वडाई दूर हो जायगी या अपने विपरीत गुणवाली 'छुटाई' के पास होने पर वडाई का नाश ही हो जायगा।

यह कभी सभव नहीं कि वह (वड़ाई) ज्यों की त्यों स्थिर रहे और छुटाई को भी ग्रहण कर ले, जैसे कि देखो मैं सिद्धात पर स्थिर हूँ और एक आदमी से वडा हो कर भी दूसरे से छोटा हूँ। वडाई छुटाई दोनों को धारण कर के भी सुकरात हूँ, पर 'असली सत्ता' जो वडाई की है वह छुटाई के पास आने पर फिर वडी नहीं कहला सकती, उसे अपनी वडाई त्याग कर छुटाई धारण करनी पडेगी। इसी प्रकार छुटाई की जो सत्ता है वह कभी भी वडी हो नहीं सकती, मतलव यह कि कोई वस्तु भी अपने विपरीत गुण के निकट आने पर फिर वही वस्तु रह नहीं सकती। यह कभी होने का नहीं कि वह अपने विपरीत गुण को भी धारण कर ले और अपने गुण को भी धारण किए रहे। या तो उसे अपना पहला गुण त्यागना पडेगा या नाश हो जाना पडेगा।

शिवी—ठीक, मैं भी यही सोचता हूँ।

इसके वाद किसी ने–मुझे ठीक याद नहीं आता कि किसने, कहा—"पर एक वात का सदेह और आ उपस्थित हुआ, क्योंकि आप लोगों को याद होगा कि वहस के आरभ में यह सिद्ध किया गया था कि वडाई की उत्पत्ति

छोटाई से होती है अर्थात् हर एक विपरीत पदार्थ अपने विपरीत ही से पैदा होता है, जैसे कि जन्म से मृत्यु और मृत्यु से जन्म, पर अब यह बतलाया जा रहा है कि ऐसी बात हो ही नहीं सकती। यह क्या बात है मेरी समझ में कुछ नहीं आता ?

इस पर गुरु जी (सुकरात) ने उधर को मुँह फेर कर सुना और वे फिर बोले-"शाबाश, बहुत ठीक शका की है, पर भाई साहब ! दोनों प्रतिज्ञाओं का भेद तुमने लक्ष्य नहीं किया। पहले हमने यह जो कहा था कि "हर एक चीज अपने विपरीत गुणवाली चीजों ही से उत्पन्न होती है वह मिश्रित पदार्थों के बारे में था। मिश्रित पदार्थ (कई के योग से मिले हुए पदार्थ) अपने ही विपरीत गुण-वाले पदार्थों से पुन पुन प्रगट होते हैं, पर इस समय चर्चा अमिश्र अर्थात 'शुद्ध सत्ता' की हो रही है और यह कहा जा रहा है कि कोई सत्ता भी अपनी विपरीत सत्ता को सह नहीं सकती। उस समय तो हम उन चीजों का जिक्र कर रहे थे जिनमें विपरीत गुण रहते है और उन चीजों को उन्हीं गुणों के नाम से याद किया गया था, पर इस समय तो स्वयमेव 'विपरीत की सत्ता' का जिक्र हो रहा है, जिसके (गुण) रहने से पदार्थों का तदनुसार नाम हो जाता है और यह कह रहे हैं कि उक्त सत्ता अपनी विपरीत सत्ता से कभी भी उत्पन्न नहीं हो सकती।" इतना कह कर गुरु जी, शिबी की ओर मुँह फेर कर पूछने लगे "क्यों भाई शिबी, इस शका से

क्या तुम्हें भी कुछ गडबड़ी पड़ी है ?

शिवी—बिल्कुल नहीं, पर यह नहीं तो और कई बातों की गडबड़ी मुझे जरूर पड़ी हुई है।

सुक०—खैर, अच्छा तो इस बात पर हम सबों की अब एक राय हो गई है, कि कोई विपरीत सत्ता अपनी ही विपरीतता नहीं कर सकती।

शिवी—मैं ठीक समझा नहीं।

सुक०—अच्छा, और भी खुलासा किए देता हूँ। अच्छा, इसे जाने दो। दूसरी और जो एक बात पूछता हूँ, बतलाओ। अच्छा, सरदी और गर्म्मी कोई पदार्थ हैं, यह तुम मानते हो या नहीं ?

शिवी—मानते क्यों नहीं।

सुक०—अच्छा तो अग्नि और बरफ तथा गर्मी और सर्दी दोनों क्या एक चीज हैं ?

शिवी—नहीं, कदापि नहीं। गर्मी अग्नि से एक अलग चीज है, वैसे ही सर्दी भी बरफ से एक अलग पदार्थ है।

सुक०—ठीक। अच्छा तो यह भी बात तुम मानते ही होगे कि बरफ कभी भी गर्मी को धारण नहीं कर सकती और गरमी को धारण करके फिर बरफ और गर्म ऐसे दोनों गुणोंवाली रह भी नहीं सकती, या तो गर्मी के पास आते ही इसे दूर हो जाना पड़ेगा या यह नाश ही हो जायगी।

शिवी—बेशक, तुम्हारा कहना सही है।

सुक०—वैसे ही सर्दी के पास आते ही अग्नि को शांत होना

पड़ेगा या नाश हो जाना पड़ेगा। सर्दी को गोद में ले कर अग्नि कभी कायम रह नहीं सकती। सर्दी और अग्नि इन दोनों का एक संग कायम रहना असंभव है।

[सेबे]वी—बेशक।

[सु]क०—उसी तरह यह बात इससे साबित होती है, कि एक सत्ता का जो नाम होता है, जिस किसी पदार्थ में उस सत्ता का कुछ अंश रहता है उस पदार्थ को भी उसी नाम से पुकारा जा सकता है, चाहे वह उक्त पदार्थ में किसी रूप से क्यों न रहे। अच्छा, एक दृष्टांत दे कर मैं अपने तात्पर्य्य को और भी स्पष्ट किए देता हूं। अच्छा, अयुग्म (असमान) संख्या * हमेशा अयुग्म ही कहलावेगी या और कुछ?

[सेबे]वी—अयुग्म कहलावेगी।

[सु]क०—अच्छा, हमें एक बात का जवाब दो। अयुग्म नाम-धारी क्या और भी कोई चीज है या नहीं? है अवश्य, इसे तुम अस्वीकार नहीं कर सकते और यह भी बतलाओ कि वह जो दूसरी चीज अयुग्म कहलानेवाली है, वह यद्यपि स्वयमेव 'अयुग्म सत्ता' नहीं है पर उसमें अयुग्म का भाव इस रीति से विद्यमान है कि उसे भी अयुग्म ही का नाम धारण करना पड़ता है और *वह कभी भी अयुग्म से अलग नहीं हो सकती?* इसके दृष्टांत हैं, जिन्हें बतला कर मैं यहाँ मतलब साफ कर

---

* जैसे कि एक, तीन, पांच सात, नौ ये अयुग्म संख्याएं हैं और दो, [चा]र, छ आठ ये युग्म संख्याएं हैं।

देना चाहता हूँ; अच्छा इनमें से एक कोई अयुग्म सख्या ले लो, तीन की सख्या को लो और अब विचारो। अब यह बतलाओ कि इस 'तीन' संख्या को तुम अयुग्म के नाम से पुकारोगे या 'तीन' ऐसा कह कर पुकारोगे। यद्यपि अयुग्मता तीन में मौजूद है पर 'तीन' और अयुग्म दोनों एक पदार्थ नहीं हैं। वैसे ही पाँच, सात, नौ यद्यपि ये सारी संख्याएँ अयुग्मता को धारण किए हुए हैं, पर अयुग्म कहने से जिस सत्ता का बोध होता है 'तीन' कहने से ठीक उस सत्ता का बोध नहीं हो सकता, केवल यही बोध होगा कि इसमें भी अयुग्मता है। इसी प्रकार से दो, चार, छ आठ ये सब यद्यपि युग्म सख्याएँ कहलाती हैं, पर युग्मता कोई और पदार्थ है और दो, चार, छ, आठ ये और चीज हैं यद्यपि युग्मता का अश इनमें विद्यमान है सही। क्यों मेरी इस बात से तुम सहमत हो या नहीं?

शिबी—बेशक, सहमत हूँ।

सुक०—अच्छा, तो मैं जिस बात को तुम लोगों के ध्यान में जमा देना चाहता हूँ, वह यह है कि कोई भी 'विपरीत भाव' अपने विपरीत गुणवाले भाव को धारण नहीं कर सकता, वैसे ही उन सब पदार्थों को भी जो स्वय 'विपरीत सत्ता' नहीं हैं पर विपरीतता को धारण करनेवाले हैं, देख कर भी यही बोध होता है, कि वे अपने विरोधी गुण को धारण नहीं कर सकते। उस विरोध के निकट आने पर या तो उन्हें हट जाना पड़ेगा या वे नाश हो

जाँयगे । अच्छा इसका एक दृष्टांत लो, तब साफ समझ में आवेगा । तीन संख्या क्या कभी युग्म हो सकती है ? नहीं हो सकती, जब कभी कोई मौका इसके युग्म होने का आवेगा तो इसे अयुग्मता से दूर हट जाना पड़ेगा या अपना 'तीन' यह अयुग्म नाम मिटा देना पड़ेगा ।

शिवी—बहुत ठीक । सब ठीक मेरे समझ में आ रहा है ।

सुक०—फिर भी दो की संख्या तीन की विरोधी नहीं है । *

शिवी—नहीं ।

सुक०—तो फिर केवल 'भाव या सत्ता' ही एक ऐसा पदार्थ नहीं है जो अपने विरोधी गुण को पास नहीं फटकने देता, इसके सिवाय और भी चीजें हैं जो ऐसे नैकट्य को सह नहीं सकतीं ।

शिवी—बेशक ।

सुक०—अच्छा तो वे कौन सी चीजें हैं, और कैसी चीजें हैं, क्या इसका पता लगाना तुम लोग चाहते हो ?

शिवी—अवश्य चाहते हैं ।

सुक०—अच्छा भाई शिवी । ये क्या वेही चीजें नहीं हैं, जो अपने स्वभाव के अलावे और भी किसीके विपरीत स्वभाव को भी धारण किए रहती हैं ?

शिवी—मैं तुम्हारी यह पहेली ठीक समझा नहीं ।

---

* अर्थात् तीन से विपरीत या उल्टी नहीं है पर इनमें जो 'युग्म अयुग्म का भाव है वह अवश्य परस्पर विरोधी है उसी 'भाव' या 'सत्ता' का जिक्र हो रहा है ।

सुक०—पहेली कैसी ? वही तो अभी कह रहे थे। फिर से कहता हूँ, सुनो। देखो 'तीन' यह सख्या कहने से, जो भाव प्रकट होता है, उसी भाव के साथ साथ अयुग्मता का भाव भी प्रकट होता है या नहीं ?

शिवी—निस्सदेह होता है।

सुक०—तो अब हमारा कहना यह है, कि तीन कहने से युग्म का भाव चित्त में कभी भी उदय नहीं होगा।

शिवी—वेशक।

सुक०—पर 'अयुग्म सत्ता' कहने से 'तीन' ध्यान मे आ सकता है या नहीं ?

शिवी—आ सकता है।

सुक०—अच्छा 'युग्म का भाव' 'अयुग्म के भाव' से विपरीत है।

शिवी—है ही।

सुक०—वैसे ही 'युग्म' कहने से 'तीन' की सख्या का भाव कभी भी सामने नहीं आवेगा।

शिवी—कभी नहीं।

सुक०—वैसे ही तीन से और युग्म से कोई सबध नहीं ?

शिवी—कोई नहीं।

सुक०—तो 'तीन' की सख्या अयुग्म कहलाई ?

शिवी—बेशक।

सुक०—जो चीजें स्वय विपरीत नहीं हैं और विपरीत चीजों को धारण भी नहीं कर सकतीं, उनके बारे में मुझे जो खुलासा करना था, सो कर चुका और भी खुलासा यह

है कि तीन की सख्या युग्म के भाव को धारण नहीं करती, तो भी यह 'तीन' युग्म के भाव का ठीक उलटा या विपरीत स्वरूप नहीं है, यद्यपि यह हमेशा अपने सग युग्मता के विरोधी गुण को ले आती है। क्योंकि युग्म का उलटा है अयुग्म और तीन में यद्यपि अयुग्मता है सही, पर तीन की सख्या स्वय अयुग्म सत्ता नहीं है। अयुग्म सत्ता हमेशा अयुग्म ही रहेगी पर तीन में एक जोड़ दीजिए तो वह चार हो जायगा, इसी लिये अयुग्मता का अश रहने पर भी तीन की सख्या नित्य अयुग्म नहीं कहला सकती, कुछ हेर फेर से उसका युग्म होना सभव है, इसी लिये 'तीन' की सख्या और अयुग्म सत्ता दो भिन्न भिन्न पदार्थ कहे गए हैं। वैसे ही दो की संख्या अयुग्मता को धारण नहीं कर सकती और न अग्नि शीत को धारण कर सकती है। इसी तरह से समझ लो। अच्छा तो तुम लोग क्या मेरी इस बात से सहमत हो कि विपरीत सत्ता अपनी विपरीत सत्ता को धारण नहीं कर सकती। केवल यही नहीं, यह विपरीत सत्ता अपने साथ भी जिस किसी को लाती है, उस पदार्थ की विपरीत सत्ता को भी वह सह नहीं सकती अर्थात् वह पदार्थ भी अपने विपरीत गुण से शून्य होना चाहिए। खुलासा यह कि वह जिसके पास आया है उसी के समान गुणवाला उसे होना चाहिए। अग्नि के पास गरमी ही टिक सकती है, सर्दी नहीं। इसको और भी

खुलासा कर देता हूँ। देखो, पाँच, युग्मता की सत्ता को धारण नहीं कर सकता। वैसे ही पाँच का दूना दस अयुग्मता को धारण नहीं करता। यद्यपि पाँच की सख्या दस से उलटी नहीं है, पाँच ही से दस उत्पन्न हुआ है, तो भी यह दस की सख्या अपने आधे पाँच के अयुग्म गुण को धारण नहीं कर सकती। वैसे ही, आधा या डेढ़ और इसी प्रकार की अन्य सख्याएँ भी पूरी सख्या को निर्देश नहीं कर सकतीं। क्यों मेरी बातें तुम्हारी समझ में आ रही हैं या नहीं?

शिवी—सब समझ में आ रही हैं।

सुक०—अच्छा और भी अच्छी तरह समझ लो और अब मेरी बातों का जवाब दो। मेरी बात अच्छी तरह तौल कर तब जवाब देना। मैंने पूछा क्यों क्या ऐसा नहीं है? और तुमने तुरत ही कह दिया 'हाँ ऐसा ही है' ऐसा ठकुरसुहाती जवाब मैं नहीं चाहता, और न मैं वैसा सीधा सदा बचाव का जवाब चाहता हूँ, जिसका जिक्र पहले किया जा चुका है, क्योंकि इस समय जो कुछ कहा जा चुका है उसका परिणाम दूसरे ही जवाब से निकलेगा और वह जवाब किस प्रकार का होना चाहिए सो भी बतलाए देता हूँ। देखो तुम यदि मुझसे यह प्रश्न करो, कि शरीर गरम क्यों कर होता है, तो मैं वही हमेशा का सीधा सादा बँधा हुआ मूर्खतापूर्ण जवाब नहीं दूँगा कि "शरीर गरमी से गरम होता है" मैं और भी खुलासा करके जवाब दूँगा और कहूँगा

कि अग्नि के कारण शरीर गरम होता है। यदि तुम पूछो कि "आदमी रोगी क्यों होता है", "रोग के आने से रोगी होता है" यह सीधा जवाब न दे कर मैं कहूँगा कि बुखार आने से मनुष्य रोगी होता है। वैसे ही यदि यह पूछा जाय कि सख्या अयुग्म कैसे होती है तो मैं यह नहीं कहूँगा कि अयुग्मता के गुण धारण करने से अयुग्म होती हैं, मैं यही कहूँगा कि एकाई के रहने से सख्या अयुग्म होती है। अब तुम क्या मेरी बात ठीक ठीक समझ गए।

शिवी--समझ गए।

सुक०--अच्छा तो अब यह बतलाओ शरीर को जिंदा बनाने के लिये उसमें किस चीज का रहना जरूरी है। किस चीज के रहने से शरीर जिंदा होता है?

शिवी--आत्मा के रहने से।

सुक०--हमेशा, हर हालत में?

शिवी--हमेशा, हर हालत में।

सुक०--तो जिसमें आत्मा रहेगी, वह पदार्थ जिंदा रहेगा, अर्थात् आत्मा जहाँ जायगी अपने सग सदा नित्य जीवनी शक्ति को लिए जायगी।

शिवी--निस्संदेह।

सुक०--अच्छा तो जीवनी शक्ति का विरोधी भी कोई है?

शिवी--है।

सुक०--वह क्या है?

शिवी--मृत्यु है।

सुक०--अच्छा तो यह हम लोगों में पहले हीं तय पा चुका है कि आत्मा जिस चीज को सग लाती है, उसके विपरीत गुणवाले पदार्थ को कभी भी धारण नहीं कर सकती?

शिवी--वेशक, यह वात तय पा चुकी है।

सुक०--अच्छा तो, युग्म की सत्ता को जो धारण नहीं कर सकता उसे हम किस नाम से पुकारेंगे ?

शिवी--अयुग्म के नाम से।

सुक०--अच्छा जो सत्ता न्याय या सगीत को धारण नहीं करती उसे क्या कहेंगे।

शिवी--अन्याय और वेसुरी कहेंगे।

सुक०--ठीक कहा, अच्छा तो जो सत्ता मृत्यु को धारण नहीं कर सकती उसे क्या कहेंगे।

शिवी--अविनाशत्व, अमरता इत्यादि कहेंगे।

सुक०--अच्छा तो क्या आत्मा मृत्यु को धारण करती है ?

शिवी--नहीं।

सुक०--तो आत्मा अविनाशिनी (नित्य) है।

शिवी--वेशक है।

सुक०--बहुत ठीक। अब कहिए आपकी शका का समाधान हुआ या नहीं। आत्मा सदा अविनाशिनी, नित्य सिद्ध हुई या नहीं।

शिवी--विल्कुल समाधान हो गया और आत्मा अविनाशिनी सिद्ध हो गई।

सुक०--अच्छा तो यह भी सिद्ध है कि--" यदि अयुग्म अवश्य अविनाशी होता तो तीन की सख्या भी अवश्य

अविनाशिनी होती ?

शिवी--निस्सदेह ।

सुक०--वैसे ही सर्दी अवश्य ही अविनाशिनी होती, तो जब कभी बरफ के पास गर्मी आती तो बरफ ज्यों की त्यों रहती और गलती नहीं । वह कभी नाश नहीं होती । गर्मी को धारण कर के भी आप कायम रहती ?

शिवी--वेशक ।

सुक०--वैसे ही यदि गर्मी अविनाशिनी होती, तो जब कभी अग्नि पर सर्दी का हमला होता, वह कभी बुझती नहीं और न नाश ही को प्राप्त होती । वह ज्यों की त्यों बनी रहती ।

शिवी--निस्सदेह ।

सुक०--अच्छा तो वैसे ही, क्या हम ' नित्य सत्ता ' के बारे में नहीं कह सकते ? यदि ' नित्य सत्ता ' कभी मरती नहीं तो जब मृत्यु आवेगी तो आत्मा भी नहीं मरेगी । ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका यही तात्पर्य है कि आत्मा कभी भी मृत्यु को धारण नहीं कर सकती, अथवा मर नहीं सकती । जैसे कि तीन या अयुग्म कभी युग्म हो नहीं सकते, अथवा अग्नि या गर्मी कभी सर्द हो नहीं सकते, पर यह तो कह सकते हैं कि " अच्छा मान लेते हैं कि युग्म के निकट आने पर अयुग्म युग्म नहीं हो सकता, पर जब अयुग्म नाश हो जायगा तब तो उसकी जगह पर युग्म आ सकता है । यह हम कभी भी नहीं कह सकते कि इसका नाश नहीं होगा क्योंकि अयुग्म

अविनाशी नहीं है, क्योंकि यदि हम यह माने होते कि अयुग्म अविनाशी है, तो हमें यह कहने में भी कुछ आगा पीछा नहीं होता कि युग्म के पास आने पर भी अयुग्म साफ बच कर चला जाता है और अग्नि, ताप इत्यादि के बारे में भी हमने वही बात कही होती।

शिवी--निस्सदेह।

सुक०—अब यदि हम इस बात में सहमत हो गए हैं कि 'नित्य सत्ता' अविनाशिनी है, तो यह भी मानना पड़ेगा कि आत्मा केवल नित्य ही नहीं, वह अविनाशिनी भी है, नहीं तो फिर दूसरी युक्ति की जरूरत पड़ेगी।

शिवी—नहीं, अब दूसरी युक्ति की जरूरत नहीं रह गई है, क्योंकि यदि नित्य पदार्थ को जो सदा कायम रहता है, नाश होनेवाला कहेंगे तो फिर अविनाशी कह ही किसको सकते हैं?

सुक०—और सब लोग यह भी मानेंगे कि एक परमात्मा, दूसरे जीवनी शक्ति और इसके अलावे और भी जो कुछ नित्य पदार्थ हैं, उनका कभी भी नाश नहीं होता।

शिवी--मानने में क्या शक है। आदमी तो क्या सारे देवताओं को भी यह सिद्धात मानना पड़ेगा।

सुक०—तब यदि नित्य पदार्थ का कभी नाश नहीं होता तो यदि आत्मा नित्य है तो क्या उसका कभी त्रिकाल में नाश होगा?

शिवी—नहीं, कदापि नहीं, कभी नहीं।

सुक०--तो इससे यह साफ प्रगट हो रहा है, कि जब मनुष्य

पर मृत्यु की चढाई होती है, तो इसका अनित्य अश मर जाता है और नित्य अश मृत्यु से अलग चला जाता है और वच कर ज्यों का त्यों वना रहता है।

शिवी--मालूम तो ऐसा ही पडता है।

सुक०--तव तो आत्मा नित्य और अविनाशिनी सिद्ध है, और परलोक में भी हमारी आत्मा का अस्तित्व रहेगा।

शिवी--मुझे तो अव कोई शका रह नहीं गई है, आपकी युक्तियों से मेरा पूरा समाधान हो गया है। हाँ, यदि शिमी को कुछ कहना हो, तो कह डाले, क्योंकि फिर तो कोई मौका मिलेगा नहीं।

शिमी--नहीं, मुझे भी अव कोई विशेष शका रह नहीं गई है, पर अव तक मेरे मन का खुटका विल्कुल मिटा नहीं है, क्योंकि यह विषय वहुत वडा है और मनुष्य की निर्वलता का कुछ भरोसा भी नहीं होता।

सुक०--हाँ भाई शिमी, तुम्हारा कहना सही है। हमारे पहले के सिद्धांत चाहे कैसे ही निश्चित क्यों न मालूम पड़ते हों इन्हे वार वार जाँचते रहना चाहिए, और जव अच्छी तरह से इसके प्रत्येक अग की जाच हो जाय तव जो युक्ति प्रवल मालूम पडे, उसी के सहारे आगे वढते जाना चाहिए, जव तक कि उक्त विषय खूब साफ न हो जाय उसे न छोड़ना चाहिए। फिर शका की कोई जगह नहीं रह जायगी।

शिमी--हाँ आप का यह कहना तो वहुत ठीक है।

सुक०--खैर, तो अव मित्र इस वात पर ध्यान दो।

यदि आत्मा निश्चय अमर है, तो हमें केवल अपने जीवन भर ही के लिये नहीं सदा सर्व्वदा के लिये इसकी हिफाजत करनी चाहिए, क्योंकि इस तरफ वेपरवाही करने का परिणाम वड़ा भयकर है। यदि मृत्यु को सारी बातों से छूट जाना मानोगे, तव तो पापियों के लिये इसे एक परमात्मा का वरदान ही कहना चाहिए, क्योंकि मरने के साथही वे अपनी आत्मा और उसके साथ सारे पापों से छुटकारा पा जाते हैं। पर अव हम लोगो ने यह पता पा लिया है कि आत्मा अमर है और ज्ञान और पूर्णता को प्राप्त करने के अतिरिक्त उसे दु खों से छुटकारा पाने या शाति प्राप्त करने का और कोई दूसरा उपाय नहीं है, क्योंकि परलोक में सिवाय विद्या और ज्ञान के वह सग कुछ नहीं ले जाती और मृत्यु के वाद परलोक की यात्रा प्रारभ करने के समय मनुष्यों के लिये यही ज्ञान या सस्कार उसके सच्चे मित्र या शत्रु का काम करते हैं। क्योंकि विवेक शक्ति जो कि जन्म से हर दम मनुष्यों के साथ रहती है, मृत्यु के अनतर उसे एक ऐसे स्थान पर ले जाती है, जहाँ पर सारे मृत व्यक्तियों को जा कर अपने कर्मों का फैसला सुनना पडता है और फिर यह शक्ति उसे नीचे ससार की ओर ले जाती है। फिर जव यहाँ ये लोग अपने कर्मों का फल भुगत लेते हैं और भोग का काल वीत जाता है तो दूसरा राह वतलानेवाला उन्हें फिर से लौटा लाता है और यों ही अनेक

काल चक्र के फेर में पड़े हुए जीव घूमा करते हैं। परलोक का रास्ता सीधा सादा नहीं है। यदि यह ऐसा ही सीधा सादा होता तो फिर एक राह बतलानेवाले सचालक की जरूरत न होती, क्योंकि यदि सीधा एक ही मार्ग हो तो फिर कोई रास्ता भूले ही क्यों ? इसलिये इस रास्ते की कई शाखाएँ हैं और बडा घुमाव फिराव है, जैसा कि ससार में मुर्दों के क्रिया कर्म को देख कर मालूम पड़ता है। जो नियम में चलनेवाली बुद्धिमती आत्मा होती है और परलोक की चीजों से अनजान नहीं होती वह सीधी अपने सचालक के पीछे चली जाती है, पर जो आत्मा शरीर से अधिक मोह रखती है, वह इस शरीर और इसी दृश्य जगत् के आस पास मँडराती रहती है और जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, बहुत कष्ट और पीड़ा पाने के बाद इसे अत को बरबस, अपनी विवेक शक्ति द्वारा खींच कर चले आना पडता है। और जहाँ और सारी आत्माएँ होती हैं, वहाँ जब यह आत्मा आती है और यदि यह कुकर्मी या निर्दय हत्या के पाप से लिप्त रहती है, या इसी प्रकार के और किसी घोर पाप को किए होती है, तो सारी आत्माएँ उससे घृणा करती हैं और कोई भी उससे भेंट करना नहीं चाहतीं, न उसका साथ देती हैं और न उसको राह दिखाती हैं और बडे कष्ट में उसे इधर उधर मारे मारे फिरना पड़ता है, जब तक कि उसका यह नियत भोग समाप्त नहीं हो लेता। इसके बाद एक शक्ति बरजोरी उसके स्वभावानुकूल

स्थान को ले जाती है। पर जिस आत्मा ने अपनी जिदगी सयम और पुण्य कार्य्य मे बिताई होती है, उसे देवता लोग अपने साथ ले जाकर राह बतलाते हैं, और स्वच्छ पवित्र स्वभावानुकूल उसे वैसा ही स्वच्छ पवित्र निवासस्थान प्राप्त होता है।

इसी कारण से मनुष्य को अपनी आत्मा के बारे में पूरा सतोष रखना चाहिए। यदि उसने शारीरिक और इद्रियजनित सुखों का भोग नहीं किया तो क्या हुआ, क्योंकि इनसे उसे सिवाय दु ख के कभी सुख नहीं मिल सकता, और यदि इन सुखों को तुच्छ जान कर वह विद्या और ज्ञान में लिप्त रहा, अपनी आत्मा का शृगार साहस, सत्य, न्याय और सयम से करता रहा, परलोक की यात्रा के लिये आनद से सदा तय्यार बैठा रहा क्योंकि उसने आत्मा को उपयुक्त खुराक दी है, तो उसे और चाहिए ही क्या। देखो भाई शिमी और शिबी, तुम लोगों को भी एक न एक दिन परलोक की बुलाहट आवेगी, पर मेरी पारी तो चटपट आ गई है और अब मुझे परलोक जाने के पहले स्नान भी कर लेना चाहिए, क्योंकि उसका समय भी हो गया है। विष पान करने के पहले नहा डालना अच्छा है क्योंकि अत को स्त्रियो को मेरे मृत देह को नहलाना पडे ही गा, इसलिये मैं चाहता हू कि पहले ही से स्नान करके, उनका काम निपटा रखू।

जब गुरु जी इतना कह कर चुप हो गए तो क्रटो बोला "खैर, तुम्हारी नहाने की मनसा है तो नहा डालो,

और अब यदि अपने किसी दोस्त, यार, स्त्री, पुत्र या मेरे बारे में तुम्हें कुछ कहना सुनना हो तो वह भी कहते जाओ। इस समय आपकी कौन सी सेवा हम करें जिससे आप सतुष्ट होंगे ?

सुक०—देखो भाई क्रटो ! मेरा संतोष तो इसी में है कि जैसा मैं कह चुका हूँ उसी पथ के अनुगामी बनो। अपने जीवन को उसी अनुसार सुधार के मार्ग में लगा दो। बस तुम्हारे ऐसा करने ही में मेरा पूरा संतोष समझो। चाहे तुम इस समय कुछ प्रतिज्ञा करो या न करो इसका मुझे कुछ ख्याल नहीं है, पर अब तक जो कुछ कहा सुना गया है और जिस प्रकार से मनुष्य जीवन का उद्देश्य स्थिर किया गया है, यदि उस राह पर तुम न चले तो हमारा लाख कहना सुनना और तुम्हारी सेवा करने की मनसा सब निष्फल ही समझनी चाहिए।

क्रटो—हम लोग अपने भरसक कुछ उठा नहीं रखेंगे। अच्छा अब आपकी समाधि किस प्रकार से की जायगी ?

सुक०—जैसी तुम्हारी मरजी, केवल तुम मुझे पहले ही से थाम लेना, जिसमें मैं भाग न जाऊँ।

यह कह कर गुरुजी ने हँस कर हमलोगों की ओर देखा और वे कहने लगे 'भाई साहबो, क्रटो को यह समझाना कठिन है कि मैं वही सुकरात हूँ, जो अब तक तुम लोगों से बात चीत कर रहा था और युक्तियों को नबर-वार बैठा रहा था। उसे अभी तक यही गुमान है कि

मैं केवल शरीर मात्र हूँ जिसे थोड़े ही देर में वह लाश के रूप में देखेगा और इसी लिये उसे केवल मेरी अत्येष्टि क्रिया ही की चिंता सर्वोपरि है। इतनी देर तक यह साबित करने के लिये कि 'विष पान कर मृत्यु के अनन्तर मैं उसके पास नहीं रहूँगा एक दूसरे अति आनद-दायक परलोक की यात्रा करूँगा' जो कुछ बहस और तर्क वितर्क हुआ है उसका असर उस पर तनिक भी नहीं हुआ। अच्छा क्या आपलोग इसकी जमानत देते हैं जैसा कि इसने मेरे मुकदमे में मेरी जमानत की थी। पर यह जमानत अन्य प्रकार की होगी। उसने मेरे मुकद्दमे में इस बात की जमानत दी थी कि मैं भागूँगा नहीं, रहूँगा, पर इस समय आपलोगों को इस बात की जमानत देनी होगी कि मैं मरने के बाद चला जाऊँगा और तुम लोगों के सग रहूँगा नहीं। शायद इससे मेरी मृत्यु का दु ख उसे कुछ कम होगा और जिस समय वह मेरे शरीर को जलते या मिट्टी में गडते देखेगा तो उसे कहीं यह समझ कर दु ख न हो कि मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है, इसी लिये मैं यह कह रहा हूँ कि जिसमे वह यह न समझे कि श्मशान भूमि में वह सुकरात ही को गाड रहा है या जला रहा है। मेरे प्यारे भाई क्रुटो, ये सब बातें, मैं इस लिये कह गया कि जिसमें तुम यह बात अच्छी तरह समझ लो कि इन सब बातों में भ्रमप्रमाद के वचनों का प्रयोग करना केवल एक अपराध ही नहीं है, वर इससे आत्मा पर भी

बुरा प्रभाव पडता है। तुम प्रसन्न हो जाओ और गाडते समय यही समझो कि तुम मेरे जड़ शरीर को गाड़ रहे हो और जैसा उचित समझो उसी प्रकार से इसे गाड दो। इसमें कुछ विशेष सोच विचार की जरूरत नहीं है।"

इतना कह कर वे दूसरे कमरे में स्नान के लिये चले गए। क्रूटो भी उनके सग गया और हम लोगों को बाहर ही ठहरा गया। अस्तु, हमलोग बाहर ही बैठे हुए गुरुजी की युक्तियों का जिकर कर रहे थे और इस पर आपस में तर्क वितर्क भी हो रहा था, पर सब ही की जबान पर आज की आनेवाली विपत्ति का जिक्र था। सब लोगो का दिल टूटा जा रहा था और ऐसा शोक छाया हुआ था मानों आज हम लोगों के पिता मर रहे हैं और हम फिर ससार में अनाथ रह जॉयगे। जब गुरुजी स्नान कर के बाहर आए तो उनके बालबच्चों से उन्हें मिलाया गया। एक तो बहुत छोटा था और दो लडके किशोर वय के थे। सग में उनके घर की स्त्रियाँ भी आई थीं। उन्होंने क्रूटो के सामने ही जो कुछ आखिरी बात कहनी थी सबों से कह दी और तब स्त्री और बच्चों को घर भेज कर वे हमलोगों की तरफ मुडे। इस समय सूर्यास्त होने ही को था, क्योंकि स्नानागार में उन्हें बडी देरी लग गई थी। इन सब कामों से निपट कर वे बैठ गए और इसके बाद फिर कुछ विशेष बातचीत नहीं हुई। थोड़ी ही देर में विषपान करानेवाला

जल्लाद आ पहुँचा और खड़ा हो कर कहने लगा "देखो भाई सुकरात, मुझे विश्वास है कि और लोगों की तरह तुम कुछ अनुचित कार्रवाई नहीं करोगे, क्योंकि जब मैं अधिकारियों के आज्ञानुसार अन्य लोगों को विषपान करने को कहता हू तो वे लोग गाली देने लगते हैं और जमाने भर का शाप देने लगते हैं पर तुम्हारे ऐसा भला मनुष्य, शिष्ट और सुशील कैदी मैंने आज तक नहीं देखा, इसलिये मुझे विश्वास है कि तुम मुझ पर नाराज नहीं होगे। यदि नाराज होना ही होगा तो उन्हीं पर होना जिन्होंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है। क्योंकि मैं तो हुक्म का बदा हूँ। अस्तु, अब मेरी आखिरी सलाम है और इस दु ख को जहाँ तक शाति से हो सके सह जाने ही मे उम्दगी है। तुम्हे यह कहने की तो कोई जरूरत ही नहीं कि मैं यहाँ क्यों आया हूँ।" इतना कह कर वह पीठ-मोड कर रोता हुआ चला गया।

गुरुजी (सुकरात) ने उसकी तरफ देख कर कहा "सलाम, भाई साहब, मैं आप ही के कहने मुताबिक करूँगा"। फिर हमलोगों की ओर मुड कर वे कहने लगे "देखो यह आदमी कैसा शिष्ट है! जब से मै यहाँ आया हूँ तब से बराबर यह मुझ से मिलने आया करता है और मेरे पास बैठ कर बात चीत किया करता है और आज देखो एक सगे सबधी की तरह मेरे लिये रो रहा है। अच्छा भाई क्रुटो, अब विलब केहि काज ? विष का प्याला तय्यार हो तो ले आओ। यदि तय्यार

न हो तो फौरन तय्यार कर लाओ।

क्रिटो—अजी भाई सुकरात! इतनी जल्दी क्या पड़ी है, अभी तो सूर्य्य बिलकुल अस्त हुआ ही नहीं है। देखो, और लोगों को मैंने देखा है कि खबर मिल जाने पर भी खूब मौज से खाते पीते और दोस्तों से मिलते जुलते और गप्प सप्प करते रहते हैं तथा बड़ी रात गए तक भी विषपान नहीं करते। अस्तु, बहुत समय है। अभी से इतनी हड़बड़ी की क्या जरूरत है।

सुक०—हाँ, उनलोगों का ऐसा करना स्वाभाविक है, क्योंकि वे समझते हैं कि इससे उन्हें कुछ लाभ होगा। पर मैं ऐसा क्यों करूँ जब कि मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि थोडी देर कर के भी विष पान करूँगा तो कुछ लाभ तो हो हीगा नहीं, सिवाय इसके कि उस प्राण को जकड़े बैठा रहूँ, जिसकी मियाद पूरी हो चुकी है, और अपने आप घृणा का पात्र बनूं। इसलिये ये सब बातें रहने दो और काम की बात करो।

इसके बाद क्रिटो ने अपने एक सेवक को इशारा किया। वह सेवक बाहर चला गया और थोड़ी देर में अपने साथ एक दूसरे मनुष्य को लेकर भीतर आया, जिसके हाथ में जहर का प्याला था। गुरुजी उसे देख कर कहने लगे " हाँ, भाई तुम तो सब ठीक ठीक जानते होगे। मुझे क्या क्या करना होगा ?" "केवल इसको पी कर इधर उधर टहलते रहना और जब पैर भारी मालूम पड़ें तो लेट जाना। शेष के कार्य सब यह स्वयं

कर लेगा।" यह कह कर प्याला उसने गुरुजी के हाथ में दे दिया। गुरुजी ने प्रसन्न चित्त से प्याला हाथ में लिया, वे जरा काँपे नहीं, न उनके चेहरे के रग मे कुछ फर्क आया, सानद उस प्याले को हाथ में ले कर उन्होंने उस आदमी से पूछा "अच्छा इसमें से थोड़ासा देवताओं को भी भोग लगा दूँ या नहीं ? ऐसा करने में कोई हानि तो नहीं ?" इसके उत्तर मे वह आदमी केवल इतना ही बोला, "हम लोग जितना काफी समझते हैं, उतना ही तय्यार करते हैं। कमोबेश नहीं।" गुरुजी बोले "ठीक हैं, मै समझ गया ' पर पीने के पहले मैं अपने देवता की प्रार्थना कर लेना अवश्य उचित समझता हूँ, जिस में मेरी यह महायात्रा निर्विघ्न समाप्त हो। बस यही मेरी अतिम प्रार्थना है।" इतना कह कर गुरुजी ने होठों से प्याला लगाया और वे बड़ी प्रसन्नता से सारा विष पान कर गए। अब तक तो हम लोग अपने शोक को दबाए हुए थे, पर जब हम लोगों ने देखा कि विष पान कर उन्होंने प्याला खाली कर दिया, तब तो हम लोगों का शोक रोके नहीं रुक सका। बहुत कुछ रोकने पर भी आँख से आँसू निकल पड़े और मैं मूँह ढाँप कर रोने लगा। क्रटो तो आँसू न रोक सकने के कारण, पहले ही से निकल कर बाहर चला गया था और अपोलोडोरा जो शुरू ही से आँसू बहा रहा था, इस समय चिल्ला चिल्ला कर रुदन करने लगा और उसके रोने चिल्लाने से हम लोगों का हियाव भी टूट गया। केवल गुरुजी,

ज्यों के त्यों शात थे। वे कहने लगे "वाह। भाई वाह। यह तुम लोग क्या करने लगे? इसी लिये तो मैंने स्त्रियों को यहाँ रहने नहीं दिया, जिसमें रो धो कर वे लोग बखेडा न मचावे और मैं शाति से मर सकूँ, क्योंकि मैंन सुना है कि मरते समय आदमी को सन्नाटे ही मे मरना चाहिए। इसलिये तुम लोग शात हो जाओ और धीरज धारण करो।" यह कह कर व पहले की तरह टहलते रहे और जब पैर बहुत भारी मालूम पडने लगे तो चित लेट गए। इसके बाद जो मनुष्य विष दे गया था, वह घडी घडी उनके हाथ पैर टटोलने लगा, फिर उनके पैरों को खून जोर से दबा कर उसने पूछा "क्यों कुछ पीडा मालूम पडती है' गुरुजी बोले "कुछ भी नहीं"। फिर जाघ पर और फिर इसके भी ऊपर दबा दबा कर उसने हम लोगों को दिखाया कि उनका शरीर सख्त और ठडा होता जा रहा है। गुरुजी स्वय भी इस बात का अनुभव कर रहे थे। वे कहने लगे "जब यह सर्दी कलेजे में पहुँच जायगी, तब मेरी मृत्यु होगी"। उनका शरीर कमर के ऊपर तक ठडा हो चुका था। इसी समय उन्होंने मुँह पर से कपड़ा हटाया (मुँह ढँका हुआ था) और ये अतिम वचन कहे "देखो भाई क्रटो, असक्लीपस को मुझे एक मुरगा चढाना है सो चढा देना। भूलना नहीं।" "अच्छा चढा देंगे" क्रटो ने जवाब दिया और पूछा कि "आप को और कुछ कहना है।" गुरुजी ने इसका कुछ जवाब नहीं दिया। थोड़ी ही देर में उनका

शरीर कुछ हिला और जब उनके मुँह पर से कपड़ा हटाया गया तो आँखें चढ़ी हुई दिखाई दीं। क्रटो ने उनकी आँखें और मुँह दोनों बंद कर दिए।

भाई इशक्रत! यही हमारे परम मित्र सुकरात की स्वर्ग-यात्रा की कहानी है। इसके ऐसा ज्ञानी, सज्जन और धर्मात्मा पुरुष होना दुर्लभ है।

सातवाँ अध्याय।

मृत्युंजय सुकरात के जीवन की एक झलक।

गीता में भगवान ने कहा है कि "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः, स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते"। श्रेष्ठजन जैसा आचरण करते हैं, साधारण मनुष्य भी उसी को प्रामाणिक मान कर उसी राह पर चलते हैं। इसीलिये महज्जनों की जीवनी लिखी पढ़ी और सुनी जाती है। धर्मशास्त्रों में सत्पुरुषों के जो लक्षण कहे गए हैं वही नमूना जब सामने आता है तो लोग सहज ही उस महात्मा के आगे सिर झुकाते हैं और उसे भगवान का अंश मान कर पूजते हैं। ऐसे लोग भगवत्प्रेम में तन्मय होते हैं। परमात्मा से उन तक हर घड़ी बेतार की तारवर्की (Wireless Telegraphy) काम करती रहती है। गीता में कृष्ण भगवान अपने प्यारे भक्तों के लक्षण का वर्णन यों करते हैं—

"अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १ ॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।

---

१ द्वेषहीन।
२ क्षमाशील।

मय्यर्पितमनो बुद्धिर्यो मे भक्त स मे प्रिय ॥ २ ॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नो द्विजते चय । *
इर्षामर्षभयोद्वगैर्मुक्तो य. स च मे प्रिय ॥ ३ ॥
अनपेक्ष शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथ ।
सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्त स मे प्रिय ॥ ४ ॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्य. स मे प्रिय ॥ ५ ॥
सम शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयो ।
शीतोष्णसुखदु खेषु सम सगविवर्जित ॥ ६ ॥
तुल्यनिंदास्तुतिर्मौनी सतुष्टो येनकेनचित् ।
अनिकेत स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नर ॥ ७ ॥

दो एक को छोड़ कर ये सारे लक्षण ही महर्षि सुकरात में पाए जाते हैं।

उन्होंने अपना सारा जीवन ज्ञानचर्चा ही मे बिताया। देह और इन्द्रियों के भोग की कुछ लालसा नहीं रक्खी, क्योंकि आत्मा के अवलोकन में ये बडे भारी विघ्न हैं ऐसा वे अपने शिष्यों को समझाते रहे। उनकी इसी सीधी सादी चाल और आडबरशून्य जीवन से उनके देशवासियों में से कुछ ओछे मनुष्यों ने उनका हर तरह से अपमान

---

* जिससे किसी मनुष्य को कभी उद्वेग प्राप्त न हो।
३ देह इन्द्रिय इत्यादि के भोगों की जिसे कुछ परवाह नहीं।
४ फल की इच्छा से किसी कर्म को आरंभ न करनेवाला।
५ जिसके मिलने का कोई नियत स्थान न हो।

किया। नाटक रच कर उनकी ज्ञानचर्चा की मसखरी उड़ाई और आम तौर पर वह नाटक खेल कर सर्वसाधारण के सामने उनको शेखचिल्ली बनाने की कोशिश की, पर जैसे मत्त वारण मक्खी के भनभनाने पर कान नहीं देता, वैसे ही उन्होंने देश के इन ओछे कुपूतों की करनी पर ध्यान ही न दिया, क्योंकि वे आज कल के सुधारकों में से तो थे ही नहीं जो बात बात पर अदालतों में इज्जत का दावा करने दौड़े जाते हैं। उन्हें निंदा, स्तुति, मान, अपमान, तुल्य था। इन बातों को वे नि सार समझते थे, क्योंकि उनकी आत्मा की डोर स्वर्गीय अलौकिक और दैवी शक्ति से बँधी हुई थी, सासारिक जाल के बधन से नहीं, क्योंकि सासारिक बधन में बँधे हुए लोग ही, मान, यश, पदवी, द्रव्य, ख्याति के पीछे हैरान रहते हैं और यों ही बधन पर बधन बढाते जाते हैं। भगवान के प्यारे जनों को ये चीजे निरी असार और दु खदाई बधनरूप जान पड़ती हैं, क्योंकि इन वस्तुओं के प्राप्त करने के लिये उन्हीं उपायों का अवलबन करना पड़ता है जो आत्मा को नीचे गिरानेवाले हैं। इसलिये सच्चे महात्मा इन बातों की ओर आँख उठा कर देखते भी नहीं और न आज कल की प्रथा के अनुसार एक दल बना कर धर्म का डका पीटते हैं और न अपने आप ही अपनी ढोल को अपने गले में लटकाए पीटते फिरते है। ये लक्षण सच्चे ज्ञानी या सच्चे महात्माओं के नहीं। बुद्धिमानों को इसी कसौटी से धार्मिक और अधर्मी की पहिचान कर लेनी चाहिए। यद्यपि सुकरात का

जीवन एक ज्ञानी का था, पर वे "सर्वारंभपरित्यागी" थे। फल की इच्छा से किसी कार्य्य का भी उन्होंने आरंभ नहीं किया। देश की ओर से जब इस ज्ञानी गृहस्थ फकीर को युद्धभूमि में जाने की आज्ञा हुई तो वह वहाँ भी गया और अपने भर सक युद्ध करने में भी उसने कोई कसर नहीं की। एक मौके पर अपने एक साथी को युद्ध में मरने से बचाया और एक खंडयुद्ध जीत कर उस यश को उसी बचाए हुए साथी को दिया। द्रव्य का दान, विद्या का दान तो बहुत देखा है। राजा हरिश्चंद्र ने राज्य और स्त्री पुत्र का दान भी कर दिया था, दधीचि ने शरीर का दान कर दिया था, पर अपने यश का दान दे देनेवाला दानशूर तो कोई विरला ही होगा। यह दान उसीसे संभव हो सकता है, जो भगवान के वचनानुसार "त्यक्त्वा कर्मफलासंग नित्यतृप्तो निराश्रय" हो। लोग कहते हैं कि "कर्म के फल की इच्छा को छोड कर कर्म किस तरह किया जाता है" यह समझ में नहीं आता। उन नासमझों को महात्मा सुकरात के इस दृष्टांत से गीता के निष्काम कर्म का रहस्य सीखना चाहिए। ऐसा कौन दानशूर निष्कामकर्मी होगा जो युद्ध में खून अपना बहावे और उसके यश का भागी अपने आश्रित को बनावे। निष्काम कर्म का ज्वलंत दृष्टांत देख लीजिए।

संसार में लोग मृत्यु ही को सब से भारी आफत या बला समझते हैं और जब अपने मन मुताबिक काम किसी पुरुष से नहीं करवा सकते तो अपनी समझ के अनुसार इसी

सब से भारी बला को उस पुरुष के सिर पर ढा देते हैं, पर इसमें उनकी कितनी नासमझी है यह बात सुकरात ने अपने तर्क वितर्क और स्वय अपने दृष्टात द्वारा दिखा दी कि–" मृत्यु ससार का एक साधारण स्वाभाविक नियम है। यह न तो कोई बला है और न कोई बवडर है। इससे डरना वैसा ही है जैसा जन्म से डरना, क्योंकि जन्म मरण दोनों एक के सग एक लगे हुए हैं"। अस्तु इसी मृत्यु का भय दिखा कर उसके देशवासी उससे अधर्म नहीं करा सके। ऐसे मौके पर उसने स्पष्ट कहा है कि—"मृत्यु भली है या बुरी यह तो हम नहीं जानते और न तुम ही जानते हो पर यह अधर्म का काम बुरा है यह सब ही जानते हैं और मै भी जानता हूँ, इसलिये मौत के डर से बुरा काम कभी भी नहीं करूँगा"।

यद्यपि इनकी तर्क प्रणाली बडी पुष्ट और स्पष्ट होती थी, पर जिस किसी से ये तर्क करते थे उसे अपने बराबर का या अपने से बडा समझ कर बडी अधीनता और नम्रता के साथ प्रश्न करते थे। आप शिष्यरूप से प्रश्न पर प्रश्न करते जाते थे, आपने कभी शिक्षक या बडा होने का दावा नहीं किया। उनके प्रश्नों ही से घबडा कर लोग अपनी मूर्खता स्वीकार कर लेते थे और यही बतला देना उन्होंने अपना एकमात्र लक्ष्य समझा हुआ था कि—" मूर्ख होकर अपने को बुद्धिमान मत समझो। वास्तव में ससार में इससे बढ कर दूसरी कोई भयानक चीज नहीं है। यही 'मिथ्या अभिमान और अविद्या की जड़ है जिसके बस हुआ आदमी कभी भी दु ख से छुटकारा नहीं पा सकता।" जिस समय मनुष्य

सच्चे मन से यह स्वीकार कर लेता है कि मैं मूर्ख हूँ और मुझे सीखना है उसी दिन समझिए कि सच्चे ज्ञान की पहली सीढी पर वह चढ गया और फिर क्रमश वह उन्नत होते होते अत को सब ही कुछ हो सकता है, और मनुष्य मात्र के इसी उपकार के लिये, उन्हें ' सच्चे ज्ञान की पहली सीढी पर चढाने ही के लिये ', महर्षि सुकरात ने अपने सारे जीवन की और अत को प्राणों की भी बाजी लगा दी । वे इसी लिये अपने को जगत् में आया समझते थे और इसी लिये उन्होंने अदालत के सामने स्पष्ट कह दिया कि–" भाइयो, मैं आप का सम्मान अवश्य करता हूँ, पर आपकी बात मान कर यदि अपनी तर्क करने की आदत को छोड दूँ तो इसमें परमात्मा की आज्ञा का भग होगा, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो कदापि मेरी बुद्धि ऐसी न होती कि यावत् सासारिक विषयों का ध्यान छोड कर इसी बात में मैं ऐसा लीन रहता कि सारे अपमान दु ख और प्राणों के भय से भी इस कार्य से नहीं टलता "। जैसे प्राणवायु नहीं रहने से मनुष्य जीता नहीं रहता, वैसे ही यह न्याय तर्क सुकरात की प्राण-वायु था जिसके बिना उसका जीना कठिन था, क्योंकि मरने के दो ही एक घड़ी पहले उन्होंने इस विषय की बात चीत को बद किया था । यद्यपि उनके बहुत से मित्र और शिष्य मौजूद थे पर किसी के सामने भी उन्होंने कभी अभिमान प्रगट नहीं किया । अदालत के सामने भी यही कहा कि ' डेलफी की देवी ने मुझे बुद्धिमान कहा और जब मुझे इसका पता नहीं लगा कि बुद्धि मुझ में कहा है तो मैंने

प्रसिद्ध प्रसिद्ध बुद्धिमानों से प्रश्न कर करके इस बात की जाँच की और मुझे पता लगा कि देवी जी का कहना सच है क्योंकि " मैं मूर्ख हूँ बुद्धिमान नहीं " पर अपने को वैसा ही मूर्ख समझता हूँ भी, पर ये लोग हैं मूर्ख और समझते हैं अपने को बुद्धिमान। इसी विषय में देवी जी ने मुझे बुद्धिमान कहा है, कुछ वास्तव में मैं बुद्धिमान नहीं हूँ। देखा पाठको ! " निर्ममो निरहकार " इसी को कहते हैं। अपने बचाव के बयान में एक बात और भी उन्होंने बड़े मार्के की कही है, खुशामद और सिफारिश से अपराधियों को क्षमा करने और अयोग्यों को योग्य पद पर अधिष्ठित कर देनेवाले अधिकारियों को ये शब्द हृदय पर अंकित कर रखने चाहिएँ। उसने कहा है कि —" अब तक तो मुझे निश्चय है कि मैंने कोई अपराध नहीं किया, पर यदि आप लोगों से हाथ पैर जोड कर माफी माँगू तो एक प्रकार से यह स्वीकार कर लेना कहलावेगा कि मैंने अपराध किया है और फिर अपराध स्वीकार करके दड से बचने के लिये आप लोगों की खुशामद करके आप को अपने उचित कर्त्तव्य से गिराने के लिये ललचा रहा हूँ। अर्थात् द्रव्य के बदले खुशामद और हाथ पैर जोड़ने की घूस दे कर दोहरा अपराध करूँगा। सो जानबूझ कर यह डबल अपराध करने के लिये मैं तैयार नहीं। आप यह न समझें कि अभिमान के कारण मैं हाथ पैर नहीं जोडता। मेरे ऐसा न करने का कारण धर्म विवेक है "। कैसी सच्ची सरल और उचित युक्ति है। इसीको कहते हैं " यतात्मा दृढनिश्चय "।

उन्हें कैदखाने से भगाने के लिये उनके मित्रों ने बहुतेरी चेष्टाएं कीं पर कैसी शांति और युक्तिपूर्वक उन्होंने इस काम की निंदा कर इसे अनुचित ठहराया है, यह पाठकगण उसी जगह देख लेंगे। देश के कानून को भंग करनेवाले शिक्षित मूर्खों को भी इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। " तुम्हें वर्तमान राजकीय कानून पसंद नहीं तो चले जाओ बाहर! निकल जाओ यहाँ से! तुम्हें कोई अधिकार नहीं कि इसका भंग करके अपने साथ अन्य न्यायप्रिय नगरवासियों की भी अशांति और दुःख के कारण बनो। वे लोग शायद अपनी इस करतूत को स्वधर्म और स्वदेश सेवा समझते हों, पर स्वधर्म और स्वदेश सेवा वही कहलाती है जैसी महर्षि सुकरात ने की। उसके लिये प्राण भी गए, फिर भी कानून भंग करने का दूसरा अपराध सिर पर नहीं लिया। उनके बंदीगृह की इस युक्ति को हमारे देश के मतभ्रांत युवकों को ध्यान से पढना चाहिए। सुकरात की इन युक्तियों से " यस्मान्नोद्विजते लोको, लोकान्नो द्विजते च य " साफ झलक रहा है। लोगों को क्षोभ में डालना धर्म नहीं, अधर्म है। वचन गीता का और दृष्टांत सुकरात का देख लीजिए।

महर्षि सुकरात ने अपनी युक्तियों में जितनी बातें कहीं हैं, उनमें पुनर्जन्म और आत्मा की नित्यतावाला सिद्धांत सर्व प्रधान है और इसकी सिद्धि में उन्होंने जैसी सरल, स्पष्ट और पूर्ण युक्ति दी है, वैसी शायद ही कहीं देखने में आती है, पर संभव है कि संदेह की जगह कहीं रह जाय क्योंकि आँख से परे जितनी बातें हैं वे इंद्रियगम्य नहीं हैं,

अनुभवगम्य हैं और इसके लिये विशेष विशेष साधन आर्ष ग्रंथों में लिखे हैं और सद्गुरु द्वारा लभ्य हैं। महात्मा लोग इंद्रियों द्वारा केवल इन सिद्धातों की महिमा का कीर्तन कर सकते हैं, किसी को दिखा नहीं सकते, क्योंकि ये अति सूक्ष्म पदार्थ हैं। स्थूल इंद्रियों की शक्ति कहाँ कि इनको देखें ? इस विषय पर तर्क बढाने की जरूरत नहीं, क्योंकि इसका सच्चा अनुभव कोरी बकवादों से कभी होने का नहीं। इसमें सारे जीवन की बाजी लगानी पड़ेगी। जिसे शौक हो " आवे मैदान में " नहीं तो जिसे जैसा रुचे विश्वास किए रहे ?

अंत को महात्मा सुकरात की मृत्यु का दृश्य अवश्य अलौकिक है, जिसने उन्हें सच्चे मृत्युंजय की पदवी दे दी है।

मरते मरते अपनी एक सामान्य मनौती की बात याद रखना और उसे चुका देने के लिये अपने मित्र के प्रति अनुरोध अवश्य ही 'स्थिरमति' का सच्चा दृष्टांत है। वास्तव में भगवान् कृष्ण का कहना सही है कि ऐसे ही सज्जन मेरे प्यारे होते हैं।

Printed by G K Gurjar at
The Shri Lakshmi Narayan Press, Jatanbar,
Benares City

मनोरंजन पुस्तकमाला।

अब तक निम्नलिखित पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं—

(१) आदर्श-जीवन—लेखक रामचद्र शुक्ल।
(२) आत्मोद्धार—लेखक रामचद्र वर्म्मा।
(३) गुरु गोविंदसिंह—लेखक वेणीप्रसाद।
(४) आदर्श हिंदू १ भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्म्मा।
(५) " २ " "
(६) " ३ " "
(७) राणा जगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(८) भीष्म पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा।
(९) जीवन के आनद—लेखक गणपत जानकीराम दूबे बी. ए.
(१०) भौतिक-विज्ञान—लेखक सपूर्णानद बी. एस-सी, एल.टी।
(११) लालचीन—लेखक वृजनदन सहाय।
(१२) कबीरवचनावली—सग्रहकर्त्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय।
(१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बी ए।
(१४) बुद्धदेव—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(१५) मितव्यय—लेखक रामचद्र वर्म्मा।
(१६) सिक्खों का उत्थान और पतन—लेखक नदकुमार देव शर्म्मा।
(१७) वीरमणि—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम ए. और शुकदेवविहारी मिश्र बी ए।
(१८) नेपोलियन बोनापार्ट—लेखक राधामोहन गोकुलजी।
(१९) शासनपद्धति—लेखक प्राणनाथ विद्यालकार।

(२०) हिंदुस्तान, पहला खड—लेखक दयाचद्र गोयलीय बी ए.
(२१) ,, ,, दूसरा खड— ,, ,,
(२२) महर्पि सुकरात – लेखक वेणीप्रसाद ।

